केन्ज़ गाईड
(A GUIDE TO KEYNES)

ऐल्विन एच० हैन्सन
(Alvin H. Hansan)
राजनीतिक अर्थशास्त्र के लूसियस एन० लिट्टयर प्रोफ़ेसर
हार्वर्ड विश्वविद्यालय

अनुवादक
गंगाराम गर्ग, एम० ए०

भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय की मानक ग्रंथों की
प्रकाशन-योजना के अंतर्गत प्रकाशित

इंटर यूनीवर्सिटी प्रेस (प्रा०) लिमिटेड
4273/3 एफ 1/16 अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली

प्रस्तावना

हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने के लिए यह आवश्यक है कि इनमें उच्चकोटि के प्रामाणिक ग्रंथ अधिक संख्या में तैयार किए जाएं। भारत सरकार ने यह कार्य वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के हाथ में सौंपा है और उसने इसे बड़े पैमाने पर करने की योजना बनाई है। इस योजना के अन्तर्गत अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रंथों का अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्रंथ भी लिखाए जा रहे हैं। यह काम अधिकतर राज्य-सरकारों, विश्वविद्यालयों तथा प्रकाशकों की सहायता से प्रारंभ किया गया है। कुछ अनुवाद और प्रकाशन-कार्य आयोग स्वयं अपने अधीन भी करवा रहा है। प्रसिद्ध विद्वान और अध्यापक हमें इस योजना में सहयोग दे रहे हैं। अनूदित और नए साहित्य में भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावली का ही प्रयोग किया जा रहा है ताकि भारत की सभी शिक्षा-संस्थाओं में एक ही पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

केन्ज गाईड नामक पुस्तक आयोग द्वारा प्रस्तुत की जा रही है। इसके मूल लेखक ऐल्विन एवं हैन्सन, अनुवादक गंगाराम गर्ग, एम० ए० तथा पुनरीक्षक (1) डा० के० सी० वरसरीया, एम०ए०, एल-एल० बी०, पी-एच० डी० और (2) डा० एम०एल० मिश्रा, रीडर, इन-कामर्स, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर हैं। आशा है भारत सरकार द्वारा मानक ग्रंथों के प्रकाशन संबंधी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जाएगा।

निहालकरण सेठी

अध्यक्ष

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

प्राक्कथन

यह पुस्तक मुख्यतया अर्थशास्त्र का उच्च अध्ययन करने वालों और प्रथम वर्ष के स्नातक विद्यार्थियों के लिये लिखी गई है। इस का उद्देश्य विद्यार्थियों को **जनरल थ्योरी**[1] के समझने में सहायता देना और उसे पढ़ने के लिये प्रेरित करना है। आजकल अधिकतर यह देखा गया है कि विद्यार्थी केन्ज **पर** लिखे गये साहित्य को तो खूब पढ़ते हैं किन्तु स्वयं **जनरल थ्योरी** को छूते तक नहीं।

यह मेरा अनुभव है कि अधिकांश विद्यार्थियों को **जनरल थ्योरी** एक कठिन पुस्तक प्रतीत होती है। यदि ठीक ठीक कहा जाए तो प्रस्तुत ग्रंथ का उद्देश्य एक उपाध्यक्ष की भांति मार्ग प्रदर्शन करना ही है। विद्यार्थियों को यह परामर्श दिया जाता है कि वे प्रस्तुत ग्रंथ के साथ साथ **जनरल थ्योरी** के सम्बद्ध परिच्छेदों को बार बार पढ़ें।

अब बहुत सी ऐसी पुस्तकें उपलब्ध हैं जो केन्ज को समझने में विद्यार्थियों का सरल मार्ग प्रस्तुत करती हैं। पर वर्तमान ग्रंथ इस श्रेणी में नहीं आता। इस पुस्तक की रचना केन्ज के ग्रंथ का स्थान लेने के लिये नहीं हुई है। विद्यार्थियों को **जनरल थ्योरी** के कठिन स्थलों को समझाने के लिये सरल मार्ग सहायक नहीं हो सकते। वस्तुतः केन्ज को सरल बनाने के प्रयास में विद्यार्थियों में अनजाने ही केन्ज के मूल विचारों के सम्बन्ध में निश्चित रूप से गलत धारणाएं उत्पन्न कर सकते हैं।

इस ग्रंथ में मैंने प्रारम्भ से ही **जनरल थ्योरी** के कठिन स्थलों को लेने का और विशेष कर केन्ज द्वारा विवादास्पद विषयों पर कही गई बातों को ठीक ठीक समझाने का प्रयत्न किया है। यदि एक बार यह स्पष्ट हो जाय कि वास्तव में केन्ज ने क्या कहा था तो विवाद सदा के लिये न सही पर बहुत हद तक समाप्त हो जाता है।

कोई भी केन्ज को दोबारा पढ़कर इस बात से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता कि केन्ज बहुत दूर तक अपने आलोचकों की टिप्पणियों का पहिले से ही

---

[1]—प्रस्तुत ग्रंथ में पुस्तक के नाम के महान ग्रंथ के पूरे शीर्षक के लिये जनरल थ्योरी आव एम्पलॉयमेंट, इंट्रेस्ट एण्ड मनि (**The General Theory of Employment Interest and Money**) प्रकाशक हारकोर्ट ब्रेस एण्ड कं० इं०(Harcourt Brace & Company Inc.) 1936 के स्थान पर ग्रंथ में छोटे शीर्षक जनरल थ्योरी का प्रयोग किया गया है।

जानने मे सफल हो गये थे। किन्तु उन का अनुमान सर्वथा ठीक नही था, और जहाँ पर ऐसी वात है, मैंने इसे निर्दिष्ट करने का प्रयत्न किया है। दूसरी ओर मैंने वाक्याशो (phrases) को समग्र पुस्तक की विशाल पृष्ठभूमि मे समझाने का प्रयत्न किया है, क्योकि यदि उन पर पृथक से विचार किया गया तो उनका गलत अर्थ लगाया जा सकता है। वहस करके कुछ बातो पर विवाद किया जा सकता है, किन्तु विद्वता की यह माग है कि पुस्तक पर समग्र रूप से विचार किया जाये।

इसमे कोई सदेह नही है कि अनुभवी पाठको को ऐसा प्रतीत होगा कि मैने यत्र तत्र अनेक वात ऐसी कही हैं जो बिल्कुल गलत है। वस्तुत इतने कठिन विषय पर अतिम रूप से कहने का दावा मूर्खता पूर्ण होगा और मुझे इस सबध मे कोई सदेह नही है। मैंने अपनी सपूर्ण पुस्तक म केन्ज के ग्रथ के अध्याय और पृष्ठ उद्धृत करने का सतत प्रयत्न किया है, ताकि यदि पाठक को मेरे द्वारा की गई किसी वात की व्याख्या पर सदेह हो तो वह सुगमता से स्वय मूल पुस्तक देख सके।

हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के ग्रेज्युएट स्कूल आव पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन (Graduate School of Public Administration) ने अनुसधान के लिये जो सुविधाए मुझे प्रदान की, तथा स्नातक विद्यार्थियो एव सहयोगियो ने विचार विमर्श का जो अवसर दिया उसके लिये म उनका आभारी हू। उपयोगी सुझाव देने के लिये डा० रिचर्ड गुडविन (Dr Richard Goodwin) और व्याज दर सिद्धान्त के अध्याय पर टिप्पणी करने के लिये प्रो० पाल सेम्युलसन (Professor Paul Samuelson) एव प्रो० अब्बा लर्नर (Professor Abba Lerner) का मै ऋणी हू। फिर भी मेरी भूलो का उत्तरदायित्व उनमे से किसी पर भी नही है। मुद्रण के लिये पाडुलिपि तैयार करने म सहायता प्रदान करने के लिये श्रीमती बरविन फ्रैगनर (Mrs Berwyn Fragner) एव श्री मती रावर्ट लिण्ड्से (Mrs Robert Lindsay) और सूचकाक (Index) बनाने के लिये श्रीमती लिण्ड्से का भी म कृतज्ञ हू।

खूब उद्धृत करने की जो मुझे स्वीकृति मिली है उसके लिये भी मैं आभार प्रदर्शित करना चाहता हू। ये स्वीकृतिया लेखको और प्रकाशको से ली गई हैं और पाद टिप्पणियो म उनका समुचित उल्लेख कर दिया गया है। क्योकि जनरल थ्योरी से बहुत ही अधिक उद्धरण लिये गये हैं इसलिये म केन्ज महोदय के न्यासधारियो (Trustees) और हरकोर्ट ब्रेस एण्ड क० ई० का विशेष कृतज्ञ हू।

ऐल्विन एच० हैन्सन

केम्ब्रिज, मेस०,
फरवरी, १९५३।

संपादक का परिचय

वर्षों से अर्थशास्त्र के बहुत से अध्यापकों और अन्य व्यवसायिक अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विषयों पर एक ऐसी ग्रंथमाला की आवश्यकता अनुभव की है, जोकि सामान्य पाठ्य पुस्तकों अथवा अत्यन्त गूढ़ ग्रंथों से पूरी नहीं होती।

प्रस्तुत ग्रंथ माला जोकि इकनॉमिक्स हैंडबुक सीरीज (Economics Handbook Series) व्यापक शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित की गई है, इन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए बनाई गई है। इस योजना को प्रधान रूप से विद्यार्थियों के लिये बनाया गया था, पर ग्रंथमाला के अन्तर्गत प्रकाशित पुस्तकें उच्चतर शिक्षा के निरन्तर बढ़ते हुए क्षेत्र में भी उपयोगी हैं और साथ ही सामान्य शिक्षित पाठकों के लिए भी लाभप्रद है।

पुस्तकें बहुत बड़ी नहीं हैं और कुछ ही सौ पृष्ठों में वे प्रतिपाद्य विषय के आवश्यक तत्वों का समावेश कर देती हैं। विषय की जटिलता के अनुरूप विस्तृत व्याख्या न करके वे मान्य सिद्धान्त और व्यवहार का सार ही प्रस्तुत करती हैं। प्रत्येक पुस्तक अपने आप में पूर्ण है।

सभी लेखक विद्वान् हैं और प्रत्येक ने उस विषय पर लिखा है जिस पर उन्हें अधिकार है। इस ग्रंथमाला में लेखक का पहला कार्य ज्ञान में महत्वपूर्ण योग देना नहीं है—यद्यपि बहुतों ने ऐसा किया है बल्कि अपने विषय को इस प्रकार से प्रस्तुत करना है, जिससे वे ग्रन्थ विद्यार्थियों के लिये कक्षाओं में, और बाहर जनता में, अपनी अधिकतम उपयोगिता सिद्ध कर सकें। समय आ गया है कि नए-नए विचारों के उत्पादन में जो शक्तियाँ लगती हैं उनमें तथा विचारों के प्रसार के बीच सतुलन स्थापित किया जाए। आर्थिक विचार यदि विद्वत मण्डली के क्षेत्र से बाहर नहीं जाते, तो उनका कोई लाभ नहीं है। विषय का ज्ञान न रखने वाले लोकप्रिय लेखक, पाठ्य पुस्तकों के अयोग्य लेखक और कभी-कभी तो झूठे विचारों के प्रवर्तकों का आर्थिक विचार के अधिकांश क्षेत्र में प्रभुत्व पाया जाता है।

यह आशा की जाती है कि शिक्षणालयों में इकनॉमिक्स हैंडबुक सीरीज, एक षाण्मासिक कोर्स के लिये संक्षिप्त सर्वेक्षण प्रारम्भिक पाठ्यक्रम के संपूरक अध्ययन तथा विषय से संबंधित अन्य पाठ्यक्रमों में अध्ययन का कार्य करेंगी।

१६३६ मे केन्ज ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *जनरल थ्योरी ऑव इम्पलॉयमेंट, इंट्रेस्ट एण्ड मनि* प्रकाशित की। शायद ही ऐसा कोई होगा जो आज भी १७ वर्ष बाद इस बात से इन्कार करेगा कि रिकार्डो की **पोलिटिकल इकनॉमी** (Political Economy) के उपरान्त ऐसी पुस्तक हो जिसने इस थोडे से समय मे आर्थिक विश्लेषण और नीति पर अधिक प्रभाव डाला हो। यह दावा करने का शायद अभी समय नही आया है कि डार्विन की **ऑरिजिन आव स्पीशीज** (Origin of Species) और कार्ल मार्क्स की दास **कैपिटल** (Das Capital) के साथ जनरल थ्योरी भी उन अति महत्वपूर्ण ग्रन्थो मे है जो गत 100 वर्षो मे प्रकाशित हुए हैं। (यद्यपि डार्विन की पुस्तक सामाजिक विषयो के अन्तर्गत नही आती, तथापि इसने उन्हे बहुत प्रभावित किया है।) जनरल थ्योरी की ठीक ठीक महत्ता चाहे कुछ भी हो—और हमारे युग के सैद्धान्तिक सघर्ष के परिणाम ही इसका दीर्घकालिक मूल्याकन कर सकते है—किन्तु यह स्पष्ट है कि इसके प्रकाशन पर जो समीक्षाएँ की गई, उनसे प्रतीत होता है कि 1936 मे प्रत्याशित प्रभाव की अपेक्षा अब इसका प्रभाव बहुत अधिक है। इस पुस्तक का महत्व बढता ही जा रहा है। यह कोई आश्चर्यजनक बात नही है कि केन्ज के निकटतम सहयोगियो को छोडकर शायद ही किसी को यह आभास हुआ हो कि जनरल थ्योरी का अर्थशास्त्र म क्या स्थान होगा। फिर भी जी० बी० शॉ (G. B Shaw) को लिखे एक पत्र मे केन्ज ने अपनी भावी क्रान्तिकारी पुस्तक जनरल थ्योरी के विषय मे डीग मारी थी।

नवीन दृष्टिकोण को अपनाते हुए केन्ज ने सभी प्रकार की कठिनाइयो का सामना किया। इस पुस्तक मे जो कमिया रह गई हैं, वे अशत इस कारण हैं कि उन्होने यह पुस्तक अपनी 50-60 वर्ष की आयु मे लिखी थी, जोकि अत्यत रचनात्मक कार्य के लिये उपयुक्त नही है। साथ ही वे विभिन्न प्रकार के कार्यों मे व्यस्त रहते थे। निश्चित रूप से ये तथ्य इस बात को समझने म सहायता देते हैं कि क्यो उनका अध्ययन विस्तृत नही था और उनकी मौलिकता कितनी थी, क्योकि जितना ही कम हम दूसरो के साहित्य को पढे गे उतना ही सुगम इस नवीन दृष्टिकोण को अपनाना सभव हो सकेगा। केन्ज की व्याख्या कठिन थी, बहुत से विचारो पर गहन चिन्तन नही किया गया, बहुत-सी भ्रान्तियाँ और यहाँ तक कि गलतिया भी रह गईं, जनरल थ्योरी का मान्य सिद्धान्त स क्या सम्बन्ध है, बिल्कुल भी स्पष्ट नही हो पाया, और बहुत से दूसरे नवीन अन्वेषको और विशेषकर जिन्होने साहित्य का गहन अध्ययन नही किया हैं, उनकी भाँति केन्ज की भी यह प्रवृत्ति थी कि वे अपने उपागम और विकास की नवीनता को बढा चढाकर कहे। जो लोग केन्ज की **इकानॉमिक कॉन्सीक्वेन्सज ऑव**

पीस ट्रैक्ट ऑन मोनेटरी रिफॉर्म, एसेज इन परस्युएशन (**Economics Consequences of Peace Tract on Monetary Reform, Essays in Persuasion**) और ट्रीटीज ऑन मनि (**Treatise on Money**) के कई पाण्डित्य पूर्ण भागों से परिचित हैं उन्हें इनके इन ग्रंथों से निराशा हुई, क्योंकि ये केन्ज की सामान्य चमत्कारपूर्ण साहित्यिक शैली के अनुरूप प्रतीत नहीं होते।

ऐसी पुस्तक थोडी ही होगी जोकि कठिन होते हुए भी (दास कैपिटल जिसके विषय में केन्ज की सम्मति थी कि यह अस्पष्ट ग्रंथ है भी ऐसा ही उदाहरण है।) जनरल थ्योरी के समान व्यापक सफलता पा सकी है। यह सफलता इस ग्रंथ के वास्तविक महत्व का सूचित करती है, क्योंकि थोडी ही पुस्तकों का उनके समर्थकों और उनके प्रबल आलोचकों द्वारा इतना गहन मंथन हुआ है।

दुर्भाग्य की बात है कि जनरल थ्योरी के प्रकाशन के बाद अपनी आयु के अंतिम दशक में केन्ज को अपने विचारों को स्पष्ट करने के लिये बहुत कम अवसर या अवकाश प्राप्त हो सका। अंतर्राष्ट्रीय संकट के कारण वस्तुतः उनकी सारी शक्तियाँ उन वर्षों में इस संकट पर लगी रही और भयंकर बीमारी ने उनके कार्य करने के समय को सीमित कर दिया। कम से कम उनकी पुस्तक हाउ टु पे फार द वार (**How to pay for the war**—1940) ने एक बात तो स्पष्ट कर दी कि उनकी पद्धति स्फीति और अवस्फीति दोनों ही कालों में लागू होती है। केम्ब्रिज में केन्ज के कई प्रतिभाशाली विद्यार्थी थे। उन्होंने दूसरे अनुयायियों ने और 1936 के पश्चात आने वाले अन्य अर्थशास्त्रियों ने और स्वयं केन्ज ने भी बहुत सी अस्पष्ट बातों को स्पष्ट कर दिया। साथ ही विभिन्न भागों में अधिक एकता ला दी और कई निश्चयात्मक गल्तियों को दूर कर दिया। स्वभावतः इससे केन्ज को ठीक ठीक प्रस्तुत करने में सहायता मिली।[1]

ईकनामिक्स हन्डबुक सीरीज़ में केन्ज पर ग्रन्थ लिखने के लिये प्रोफेसर हैन्सन ही सबसे उपयुक्त है। अमरीका के सबसे विख्यात केन्जवादी होने के कारण, हैन्सन ने केन्जवादी अर्थप्रणाली की अमरीकी विद्यार्थी और जनसाधारण के लिये व्याख्या की है, और उन्होंने इसको बहुत समृद्धि भी प्रदान की है।

[1]—द न्यू इकनामिक्स (**The New Economics**) विशेषकर उसके भाग 13 9। भूमिका के साथ इसका सम्पादन सीमूर ई० हैरिस (Seymour E Harris) ने किया है। प्रकाशक ऐल्फ्रेड ए० नाफ इ० (Alfred A Knoff Inc) 1947।

ए गाइड टु केन्ज लिखते हुए, प्रोफ़ेसर हैन्सन ने यह आशा प्रकट की है, कि विद्यार्थी और शिक्षित जनसाधारण **जनरल थ्योरी** को पढ़ते रहेंगे। 400 पृ० के **जनरल थ्योरी** नामक कठिनतम ग्रन्थ का पढ़ना शिक्षणात्मक प्रक्रिया का एक अंग है। जिस व्यवसायिक अर्थशास्त्री ने केन्ज की **जनरल थ्योरी** का गहन अध्ययन करने के लिये एक पूरी ग्रीष्म ऋतु नहीं लगाई, उसने बहुत कुछ खो दिया है।

किन्तु ऐसे बहुत-से हैं जो केन्ज को पढ़ने के लिए कुछ ही दिन या एक, दो या तीन सप्ताह का समय ही निकाल सकते हैं। यह उन बहुत-से स्नातकों पर लागू होता है जिन्हें अर्थशास्त्र में एक ही पाठ्यक्रम के अन्त के रूप में केन्ज के विषय में जानना है, या उन विद्यार्थियों पर भी लागू होता है जिन्हें अर्थशास्त्र के कई पाठ्यक्रमों को पढ़ना होता है और उन बहुत से सामान्य लोगों पर भी जो यह ज्ञान प्राप्त करना चाहते है कि केन्ज कहना क्या है। यहां तक कि जो **जनरल थ्योरी** को पढ़ने का कष्टदायक, पर लाभप्रद कार्य करना चाहते हैं, उन्हें भी प्रोफ़ेसर हैन्सन की नई पुस्तक से बहुत बड़ी सहायता मिलेगी।

एक-एक पृष्ठ और एक एक पंक्ति लेकर उन्होंने **जनरल थ्योरी** की अच्छाइयों का चयन किया है। उन्होंने समूचे खेत को निराया तथा कुरेदा नहीं है बल्कि भूमि को उपजाऊ भी बनाया है और उसका पुनःरोपण भी किया है, जिससे उस भूदृश्य को प्राप्त किया जा सके, जिसकी कल्पना केन्ज ने की थी।

परिणामस्वरूप जो कृति बन पाई है, वह अत्यन्त दुर्लभ है। उसकी उपेक्षा वे लोग नहीं कर सकते, जो केन्ज और आधुनिक अर्थशास्त्र को समझना चाहते हैं। प्रोफ़ेसर हैन्सन की पुस्तक का प्रत्येक पृष्ठ **जनरल थ्योरी** के प्रायः प्रत्येक पैरे के गहन निरीक्षण और यूरोपीय और अमरीकी साहित्य पर हैन्सन के अधिकार को सूचित करता है। पुस्तक से यह भी पता चलता है कि उसके लेखक ने वर्षों तक केन्ज के सिद्धान्तों, व्यवसाय चक्र, द्रव्य एवं बैंकिंग, और राज-कोषीय नीति सम्बन्धी पाठ्यक्रमों को स्नातकों और उपस्नातकों को पढ़ाया है तथा केन्जवादी अर्थप्रणाली से सम्बद्ध शोध प्रबन्धों का निर्देशन भी किया है। हैन्सन की गाईड यह भी प्रदर्शित करती है कि उन्होंने अर्थप्रणाली का बहुत सा योगदान दिया है, और जिसके विषय में वे सर्वोच्चतया मौन हैं (उदाहरणार्थ आर्थिक प्रौढ़ता—Economic Maturity—उपभोग कार्य, अन्तर्राष्ट्रीय असन्तुलन—disequilibrium—घाटे की वित्तीय व्यवस्था से सम्बद्ध समस्याएं, पूर्ण रोज़गार नीति के पृष्ठों के रूप में स्थानीय, राजकीय और संघीय वित्त के एकीकरण के सम्बन्ध में उनका अपना प्रतिपादन।) अन्त में पुस्तक एक ओर तो अवस्फीति और बेरोज़गारी और दूसरी ओर पूर्ण रोज़गार और स्फीति के बीच

डोलती हुई अर्थव्यवस्था से सम्बद्ध नीति-विषयक समस्याओ पर केन्जवादी अर्थव्यवस्था को लागू करने के कई वर्षो के परिणाम को सूचित करती है।

स्थानाभाव से यह सभव नही है कि केन्जवादी अर्थप्रणाली के उन सभी पहलुओ को यहा लिखा जा सके जिनपर प्रोफेसर हैन्सन ने इस पुस्तक मे प्रकाश डाला है। इनमे से कुछ ही को कहना पर्याप्त होगा—"से' के बाजार नियम की वैधता, पूंजी की सीमात कार्यकुशलता, उपभोग कार्य, और व्याजदर का रोजगार के स्तर से सम्बन्ध, बचत और निवेश का सम्बन्ध, केन्ज के सिद्धान्त से सम्बन्ध स्थैतिक सामयिक, और गत्यात्मक (static, periodic, and dynamic) पहलुओ का मूल्याकन; गुणक के तीन रूप, ब्याज की अपनी दरें (The own rates of Interest), केन्जवादी ब्याज के नकदी सिद्धान्त (liquidity theory of interest); कर्जा निधि (loan fund) और हिक्सवादी सिद्धान्त का समाधान, समर्थ माग, द्रव्य और मूल्यो का सम्बन्ध, वे सकल्पनाए जिनके आधार पर केन्ज ने अपने विश्लेषण को विकसित किया, इत्यादि।

हैन्सन, केन्ज के बडे भक्त हैं पर इससे वे यथास्थान प्रशसा या आलोचना करने से नही चूकते। उदाहरणार्थ वे केन्ज की इस बात की आलोचना करते हैं कि उन्होने महाद्वीपीय अर्थशास्त्रियो और बहुत से अग्रेजी अर्थशास्त्रियो को, जिनमे प्रोफेसर डी० एच० राबटसन और प्रोफेसर पीगू विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, उनके अपने योगदान के लिए पर्याप्त महत्ता प्रदान नही की। जब केन्ज अपने योगदान को बहुत बढाते चढाते है तो हैन्सन अपने पाठको को धीरे से सावधान कर देते है। गल्तिया भ्रान्तियाँ असगतिया युक्ति को पूर्णतया प्रयोग करने का अभाव, उत्तरदायित्वहीन कथन—इन सब पर केन्ज के सहृदय किन्तु दृढ आलोचक का ध्यान गया है। किन्तु इस से भी महत्वपूर्ण तो यह है हैन्सन ने केन्ज द्वारा अर्थशास्त्र को दिये गये अपूर्व योगदान को आका है।

मेरी भविष्यवाणी है कि प्रोफेसर हैन्सन की पुस्तक के परिणामस्वरूप केन्ज की अर्थप्रणाली और केन्जवादी अर्थव्यवस्था को लोग पहिले से ज्यादा समझेगे। साथ ही जनरल थ्योरी पहिले की अपक्षा बहुत अधिक पढी जायेगी।

सीमूर ई० हैरिज

पृष्ठ संदर्भो, शब्दावली, और नामकरण पर टिप्पणी

इस पुस्तक मे प्रत्येक अध्याय के ऊपर, जनरल थ्योरी मे उस अध्याय या उन अध्यायो का निर्देश किया गया है,जिन पर यहा विचार किया गया है। प्रत्येक अध्याय मे जहा वहा, जनरल थ्योरी के पृष्ठो का निर्देश किया गया है। जब तक कि अन्यथा सूचित न किया गया हो, सभी पृष्ठ निर्देश जनरल थ्योरी के हैं।

बहुधा, मैंने एक ही विस्तृत शीर्षक के अन्तर्गत केन्ज के दो या अधिक अध्यायो पर विचार किया है। इसलिये हम इस पुस्तक मे केवल तेरह अध्याय है, जबकि जनरल थ्योरी मे चौबीस हैं।

फिर भी मैंने सामान्यत्त विषयो के उस क्रम का अनुसरण किया है, जोकि केन्ज के ग्रथ मे पाया जाता है। निस्सदेह इससे अधिक युक्तिसगत क्रम भी अपनाया जा सकता था, किन्तु क्रम मे मूलभूत परिवर्तन, मेरे मुख्य उद्देश्य, अर्थात् विद्यार्थी को पढने के लिये प्रेरित करने और उसको केन्ज को समझने मे सहायता देने, को असफल बना देता। अत जनरल थ्योरी और प्रस्तुत ग्रन्थ सुविधाजनक रूप से साथ-साथ पढे जा सकते हैं।

अधिकाश मे, मैंने केन्ज की शब्दावली और उनके नामावली का प्रयोग किया है, फिर भी, निम्न अपवाद है, जिन्हे विद्यार्थी को ध्यान से देखना चाहिये :

1—पू जी की सीमात कुशलता इसके लिये मैंने चिह्न r का प्रयोग किया है। केन्ज ने इसके लिये किसी चिन्ह का प्रयोग नही किया है।

2—ब्याज-दर इसके लिये मेने चिह्न 2 का प्रयोग किया है, केन्जने चिह्न r का प्रयोग किया है।

3—नक्दी तरजीह कार्य

क—कुल नक्दी तरजीह कार्य जिसमे लेन-देन (*transactions*) माग और द्रव्य के लिये परिसपति(asset)माग दोनो सम्मिलित हैं। इस कार्य को मैंने इस प्रकार लिखा है

$L=L\ (Y, i)$, केन्ज का नामकरण है—$M=L\ (Y, r)$

ख—लेन-देन माग कार्य। मैंने इसे इस प्रकार लिखा है $L'=L'(Y)$; केन्ज ने इसे इस प्रकार लिखा है $M_1=L_1\ (Y)$

ग—परिसपत्ति माग कार्य। मैंने इसे इस प्रकार लिखा है : $L''=L''(i)$, जबकि केन्ज ने इसे इस प्रकार लिखा है $M_2=L_2\ (r)$

विषय-सूची

भाग 4—निवेश लगाने को प्रेरणा

भाग 5—नकद मजदूरी और मूल्य

भाग 6—जनरल थ्योरी द्वारा सुझाई गई संक्षिप्त टिप्पणियां

अध्याय 1

संस्थापित (Classical) अर्थशास्त्र के आधार-तत्त्व और समर्थ माँग (Effective Demand) का सिद्धान्त

[जनरल थ्योरी, अध्याय 1-3]

केन्ज के पूर्व भिन्नमतावलम्बी (Pre-keynesian Dissenters)

यदि कोई भी आर्थिक सिद्धात ऐसा है, जिसे सुयोग्य अर्थशास्त्रियो का कोई यथेष्ठ वर्ग दीर्घकाल तक मानता रहा हो, तो यह कहना निरापद है कि वह सिद्धान्त कभी भी पूर्णतया गुण-शून्य नही था। यद्यपि ऐसे सिद्धान्तों को बाद मे त्याग दिया गया, तथापि आर्थिक प्रणाली के सचालन को प्रथम बार निकट रूप से समझने मे इन सिद्धान्तो ने बहुधा महत्वपूर्ण अन्तर्दृष्टि प्रदान की। उदाहरणार्थ, यह बात उस मजदूरी-निधि-सिद्धान्त (Wages fund Theory) के लिये सत्य है जिसे बहुत समय से दोषयुक्त मान लिया गया है, और यही बात 'से" के बाजार नियम (Say's Law) के लिये लागू होती है। छोटे-छोटे और प्राय निष्फल विवादो के कारण, दोनो ही सिद्धान्त मे अनम्य (rigid) एव कट्टर नियमनो (formulations) अर्थात् ऐसे रूढिगत "नियमो" का प्रादुर्भाव हुआ, जो अत्यन्त जटिल विषय को एक अनम्य साँचे मे ढालना चाहते थे। परन्तु ऐसे विद्वानो के हाथो मे, जिनका दृष्टिकोण सकुचित तथा अनम्य नही था, ये ही सिद्धान्त ज्ञानवर्धक और उपयोगी सिद्ध हो सकते थे और प्राय ऐसा हुआ भी।

यदि विस्तृत रूप से देखा जाये, तो "से" का बाजार नियम एक मुक्त-विनिमय अर्थव्यवस्था (free exchange economy) की ही व्याख्या है। यदि इस नियम को इस दृष्टिकोण से मान लिया जाये, तो इससे यह सत्य सिद्ध होता है कि

माग का मुख्य स्रोत (source) उपादान आय (Factor-income) के उस प्रवाह मे है जो उपादन प्रक्रियाओ (process) द्वारा उत्पन्न होते हैं। अब तक उपयोग मे न लाये गये साधनो को कार्यो पर लगाने से उत्पादन बढता है और आय मे भी वृद्धि होती है। इस प्रकार से आय और निपज (output) का एक चक्रीय प्रवाह (circular flow) बन जाता है। इस प्रवाह मे वृद्धि होने से जिन साधनो को कार्यों पर लगाया जाता है, उनका खर्च स्वय ही निकल आता है। इसका कारण यह है कि सतुलित अवस्थाओ मे आय प्रवाह (income stream) की राशि मे उतनी ही वृद्धि हो जाती है जितनी राशि उपज (products) की बिक्री के कारण आय-प्रवाह मे से निकल आती है। कोई भी नवीन उत्पादन प्रक्रिया इस प्रकार कार्यों पर लगे उपादानो (Factors) को आय प्रदान करके उतनी ही माग उत्पन्न कर देती है, जितना कि उस प्रक्रिया से सम्भरण (Supply) बढता है।

"से" के बाजार नियम के सस्थापित (classic) कथन ने इस विचार की पुष्टि की स्वतत्र-मूल्य-पद्धति (free price-system) मे बढती हुई जनसख्या के लिये व्यवस्था हो जाती है और पूँजी मे वृद्धि होती है। किसी विकासशील समाज मे, नयी फर्मे तथा नये कर्मचारी दूसरो को बिना निष्कासित किये ही अपनी उपज के बदले मे उत्पादन प्रक्रिया मे अपना स्थान बना लेते है। इस अवस्था मे बाजार को ऐसा स्थिर तथा सीमित नही मान लिया जाता, जिसमे विस्तार की क्षमता न हो। बाजार उतना ही बडा बन जाता है, जितनी कि बाजार मे बिक्री के लिये आये हुए उपज की माना होती है। सम्भरण अपनी माग स्वय ही बना लेता है। यदि व्यापक रूप से देखा जाये तो यह कथन मुख्यत विनिमय अर्थ व्यवस्था को चित्रित करता है।

परन्तु आर्थिक विचारो का इतिहास इस बात को बारम्बार प्रदर्शित करता है कि किस प्रकार एक महान् जीता-जागता सिद्धान्त, जब विवाद के सागर मे उछाला जाता है, तो अपनी चैतन्यता गवा बैठता है। कई बार ऐसा होता है कि इन सिद्धान्तो को ऐसी जटिल समस्याओ का विश्लेषण करने के लिये प्रयोग मे लाया जाता है, जिनके लिये ये सिद्धान्त अनुपयुक्त होते है। जब भी ऐसा किया जाता है तो निश्चित रूप से भ्रान्तिजनक निष्कर्ष निकलते है। यही बात "से" के बाजार नियम के विषय मे हुई।

ऐसे प्रारम्भिक विद्यार्थियो पर जो 'केन्जवादी क्रान्ति' पर वर्तमान साहित्य को पढते हैं, ऐसा प्रभाव पडने की सभावना है कि 1936 तक जब केन्ज की जनरल थ्योरी नामक पुस्तक प्रकाशित हुई, सभी छोटे-बडे अर्थशास्त्रियो ने एक दृढ परम्परा-निष्ठ सस्थापक मोर्चा (Orthodox classical front) सा बना लिया था। परन्तु यह बात सत्य नही है। प्रथम विश्व-युद्ध के आस पास जिन अर्थशास्त्रियो

की पीढी ने अपने पेशावर जीवन मे प्रवेश किया, वे तत्कालीन आर्थिक विश्लेषण पद्धति के विषय में अत्यन्त असन्तुष्ट थे। उस समय का मान्य सिद्धान्त स्पष्ट रूप से तर्कसंगत तो था, पर वह वास्तविक स्थिति को समझने मे असमर्थ रहा। अत बहुत-से अर्थशास्त्रियो ने वर्णनात्मक एव सस्थानिक (institutional) अध्ययन प्रारम्भ कर दिये।

उपरोक्त काल मे परम्परानिष्ठ सिद्धान्तो के प्रति यह अविश्वास निस्सन्देह कोई निराली बात नही थी। इसके विपरीत, कुछ बहुत थोडे समय को छोडकर, यह स्थिति 'रिकार्डो'' (Ricardo) के समय से चली आ रही थी। आर० एल० मीक (Meek) ने अपने लेख "द डिकलाइन ऑफ रिकार्डियन इकनामिक्स इन इग्लैंड"[1] (The Decline of Ricardian Economics in England) मे जो पोलिटिकल इकॉनमी क्लब की कार्यवाही मे से कुछ ऐसे प्रमाण उद्धृत किये है, जिससे ज्ञात होता है कि रिकार्डो के कुछ मूल सिद्धातो का बहुत तीव्र गति से पतन होने लगा था। 1823 से 1833 तक रिकार्डो की व्यापक एव कटु आलोचना हुई। हेनरि सिजविक (Henry Sidgwick) ने अपनी पुस्तक प्रिंसिपल्स ऑफ पोलिटिकल ईकॉनमी (1883) मे, माल्थस (Malthus) द्वारा 1827 मे (रिकार्डो की मृत्यु के केवल चार वर्ष उपरान्त) कहे गये इस कथन को उद्धृत किया है कि कुछ समय से "राजनीतिक अर्थशास्त्रियो मे विचार वैषम्य बार-बार शिकायत का विषय"[2] बन गये हैं।

जे० एस० मिल (Mill) ने इस स्थिति को सुधारने का प्रयास किया और कुछ समय तक उनकी पुस्तक प्रिंसिपल्ज (1848) का पर्याप्त मान्यता मिली। सर जेम्ज स्टीवन (Sir James Stephen) के 1861 के एक कथन के अनुसार विज्ञान को समझने वाले लोगो के निष्कर्ष जिस विश्वास से स्वीकार कर लिये जाते हैं और उन पर अमल भी किया जाता है, उतना मानवीय बातो से सम्बन्ध रखने वाले अन्य सैद्धान्तिक परिकल्पनाओ (speculations) के विषय मे नही कहा जा सकता है।[3] मिल की प्रभावशाली साहित्यिक सत्ता पर टिप्पणी करते हुए, सिजविक लिखते हैं—"अर्थशास्त्र का विषय जिस घोर विवाद से हाल मे ही गुजर चुका था, उस विवाद के विषय मे उस पीढी के वे लोग अधिकाशत अभिज्ञ थे, जिन्होने अर्थ-

[1]—इकानामिका (Economica) फरवरी, 1950

[2]—एच० सिजविक की पुस्तक, द प्रिंसिपल्स आव पोलिटिकल इकॉनमी (The Principles of Political Economy) तृतीय सस्करण, मेकमिलन ऐण्ड कं० लदन, पुनर्प्रकाशित, 1924, पृष्ठ 2।

[3]—वही पृष्ठ 3।

शास्त्र विषय का अध्ययन लगभग 1860 से आरम्भ किया था।[1] फिर भी 1869 से पहले की मजदूरी निधि सिद्धान्त (wages fund dogma) के विषय पर मिल ने अपने आप को लान्ज (Longe) और थॉर्नटन (Thornton) के आक्षेपो के सम्मुख समर्पित कर दिया था। उसके बाद 1871 मे तत्कालीन सिद्धान्तो की जेवन्ज (Jevons) ने घोर आलोचना की। लेकिन मार्शल (Marshall) ने 1890 मे अपनी पुस्तक प्रिंसिपल्ज मे आस्ट्रिया की (और जेवन्ज की) पद्धति के साथ सस्थापित प्रणाली का समन्वय करके एक नवीन परम्परा निष्ठता की पुनर्स्थापना की।

फिर भी भिन्नमतावलम्बियो की सख्या बहुत अधिक थी।[2] अमरीका मे सस्थावादक वेबलेन (Veblen) कामन्ज (Commons) मिचल (Mitchell) और उनके अनुयायी— विशुद्ध सिद्धान्त (pure theory) मे बहुत सदेह करते थे। उनके द्वारा समाजशास्त्रीय, कानूनी, और साख्यकीय (statistical) तथ्यो को अधिकाधिक प्रस्तुत किया गया, जिनसे प्राय यह प्रतीत होता था कि परम्परानिष्ठ सिद्धान्त के परिणाम वास्तविक जगत् के साथ मेल नही खाते। तब भी परम्परा-निष्ठ सिद्धान्त पर ये आक्षेप मुख्य रूप से असफल ही रहे। प्रेजिडेण्ट कोनण्ट (President Conant) का यह कथन ठीक ही प्रतीत होता है कि 'किसी पुरानी योजना को त्यागने के लिये एक नवीन प्रत्ययात्मक योजना (new conceptual scheme) चाहिये। 'नवीन प्रयोगो से मेल बिठाने की दृष्टि से विचार मे सशोधन करने के लिये[3] मनुष्य सदा घोर प्रयत्न करता रहा है। केवल तथ्य ही किसी सिद्धान्त को नष्ट नही कर सकते।

---

[1]—वही।

[2]—केंज इस बात से पूर्ण अवगत थे कि विगत कई दशियों से अर्थशास्त्र एक स्थिर और निर्विवाद विषय न रहा था। वे स्वय भी सैद्धान्तिक विवाद में सबसे आगे थे। बहुत लम्बे समय तक उन्होंने आधुनिक जगत् के एक बहुत गहरी नाम वाले और विस्मय जनक स्तम्भ, अर्थात स्वर्णमान पर सीधा आघात किया। इस सग्राम में उनके कई साथी अर्थशास्त्रियों ने उनकी सहायता की और अन्ततोगत्वा केन्ज के शासन, उद्योग और वित्त में कार्यशील ब्रिटिश लोगों की एक बहुसख्या को बदल भी दिया था। जहा तक केन्ज के रोजगार सिद्धान्त और नीति का सम्बन्ध है, 'साथी अर्थशास्त्रियों के बीच गहरा मत भिन्नता' रही। केन्ज का विश्वास था कि इन भिन्नताओं ने आर्थिक सिद्धान्त के क्रियात्मक प्रभाव को प्राय नष्ट कर दिया था कि और यह ऐसा ही होता रहेगा जब तक कि इन मतभेदों का समाधान नही हो जाता (जनरल थ्योरी प्राक्कथन)।

[3]—जेम्ज बी० कोनण्ट (James B Conant) की पुस्तक आन अण्डरस्टैडिंग साइंस (*On Understanding Science*) येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1947, पृष्ठ 89, 90।

आर्थिक सिद्धात के इस रूप के प्रति जो इतना व्यापक असतोष था, उसी के कारण "से" के बाजार नियम पर भी अत्यन्त गहरी आशका प्रकट की गई। लेकिन इस आधारभूत तथ्य के विरुद्ध कि मूल्य पद्धति (price-system) स्वत ही पूर्ण रोजगार (full-employment) को जन्म दे देती है, कोई भी—अनेक प्रयत्नो के बावजूद—शक्तिशाली सैद्धातिक तथ्य स्थापित करने में सफल न हो सका। जिस किसी ने इस आधारभूत धारणा (conception) को चुनौती दी, उसके विरुद्ध सदैव ही दो मजबूत अवरोध खड़े कर दिये जाते थे —(1) कि नम्य ब्याज दर पूर्ण रोजगार की स्थिति होने पर बचत और निवेश मे समानता निर्धारित कर देगी, (2) कि नम्य मजदूरी और मूल्यो की प्रणाली के अन्तर्गत कुछ अस्थायी अव्यवस्थाओ को छोड कर, पर्याप्त बाजार यथेष्ट उपलब्ध रहेगा।

1900 से लेकर 1936 तक के साहित्य मे अनेक ऐसे प्रयास मिलते हैं (जिनमे से कुछ तो महत्वपूर्ण हैं और बहुत से अत्यत त्रुटिपूर्ण है), जो तत्प्रचलित परम्परानिष्ठ स्वत समजन (automatic adjustment) सिद्धात को चुनौती देते हैं। सब बातो को देखते हुए कहा जा सकता है, कि इन प्रयत्नो का कोई अधिक प्रभाव न पडा, अत इस साहित्य का यहा पर प्रचार करने से कोई लाभ न होगा। अधिकाश अवस्थाओ मे तो आलोचक के पास कोई शक्तिशाली तर्क नही था तथा वे कमजोर सिद्धात की ही आड लेते रहे। प्रबल तर्क द्वारा एक चतुर रुढवादी सैद्धातिक ऐसे आलोचको को गलत सिद्ध कर सकता था। इस ओर सबसे शक्तिशाली प्रयत्न हाबसन (Hobson) ने किया। परन्तु वे मुख्यत असफल ही हुए, क्योकि वास्तव मे उनके साधन इस कार्य के लिये पर्याप्त न थे।

फ्रास मे एफ्टेलियन (Aftalion) ने अपने लेख ला रियलिटी सरप्रोडक्शन्ज जेनरल्स (La Realite des surproductions generales) (1909)[1] मे "से" के बाजार नियम की खुले रूप से आलोचना की लेकिन उनके सिद्धात के इस भाग की इगलैण्ड और अमरीका[2] दोनो के समीक्षाकारो ने हँसी उडायी, (यद्यपि अब यह स्पष्ट हो गया है कि वे ठीक मार्ग पर थे)। इससे अधिक ध्यान तो ऐफ्टेलियन ने जो कुछ दोलनाश्रित (oscillation perse) नाम सिद्धात पर लिखा, उसपर दिया गया और विशेष कर इस बात पर कि उन्होने अर्थमिति व्यवसाय चक्र ढाँचे (econometric business cycle models) से सम्बन्धित कुछ मार्ग दिखलाये।

---

[1]—रेव्यू ड इकॉनमी पालिटीक (Revene d' economie Politique) 1909।

[2]—देखिये मेरी पुस्तक बिजनेस साइकल्स एण्ड नेशनल इन्कम, डब्ल्यू० डब्ल्यू० नॉर्टन एण्ड क०, 1951, अध्याय 18।

स र बाजार नियम पर जो भी उन्होंने कहा या तो उसे गलत समझा गया या उसकी उपेक्षा कर दी गई।

अमरीका में आर्थिक परम्परानिष्ठता के सबसे अधिक कटु आलोचक जे० एम० क्लार्क (Clark) थे। उन्हें इस बात में सदेह था कि आर्थिक व्यवस्था में इतनी सामर्थ्य है कि उसके अन्तर्गत इस प्रकार स्वतः समंजन हो सकता है कि पूर्ण रोजगार की स्थिति आ जाय। उन्हें इस बात की भी आशंका थी कि क्या इस बात पर निर्भर किया जा सकता है कि उत्पादक साधनों का पूर्ण उपयोग करने में मूल्यों की नम्यता, मजदूरी दर या ब्याज दर सहायक सिद्ध हो सकती है।

हाब्सन से विपरीत क्लार्क ने से क बाजार नियम और उसके सहायक सैद्धांतिक उपकरणों पर कोई भारी और व्यापक आक्षेप नहीं किया। स्वयं एक श्रेष्ठ नवसंस्थापक (neo classical) विचारक होने के कारण वे सैद्धांतिक विश्लेषण के तत्प्रचलित साधनों के प्रति सहानुभूति रखते थे और उन्होंने सैद्धांतिक विश्लेषण के साधनों में योगदान भी किया। लेकिन वे सिद्धांतों की त्रुटियों से अवगत भी थे और उन्होंने अत्यावश्यक और उलझी समस्याओं को जब सामने देखा तो सिद्धांतों के समर्थकों की गर्वित आत्म तृप्ति की भावना को चुनौती दी। अपनी पुस्तक **ईकनामिक्स आफ ओवर हेड कास्टस** (**Economics of Overhead Costs**) में उन्होंने नये विषयों और सिद्धांतों का गहराई से अध्ययन किया है।

1935 में क्लार्क की **स्ट्रटेजिक फक्टर्स इन बिजिनिस साइकल्स** (**Strategic Factors in Business Cycles**) नामक पुस्तक प्रकाशित हुई और उसी वर्ष उनका **प्रोडक्टिव कपेसिटी एण्ड इफक्टिव डिमाण्ड** (Productive Capacity and Effective Demand) नामक लेख सामने आया जो **कोलम्बिया यूनिवर्सिटी कमीशन आन ईकनामिक रिकंस्ट्रक्शन** की रिपोर्ट का एक विशेष अध्याय था। यह अध्याय असाधारण दिलचस्पी वाला है क्योंकि यह एक ऐसे अत्यंत योग्य सैद्धांतिक की शंकाओं को प्रदर्शित करता है जिनके विचार तत्प्रचलित परम्परानिष्ठता के साथ कट्टरता से मेल नहीं खाते थे। इनमें से कुछ सम्बद्ध अंशों की सूक्ष्म व्याख्या से ज्ञात हो जायगा कि उनके विचार किस प्रकृति के थे और किस दिशा में जा रहे थे।

अपने उत्पादन सामर्थ्य और समर्थ माँग नामक अध्याय में उन्होंने इस प्रश्न को उठाया कि क्या समर्थ माँग के परिसिमित होने के कारण उत्पादन चिरकाल तक सीमित रहता है[1]। इसका उन्होंने एक अपूर्वाग्रही (non dogmatic) और अ न

---

[1]—इकनामिक रिकंस्ट्रक्शन, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस (Columbia University Press) 1935 पृ० 105।

शिचत-सा उत्तर दिया। उनका इस बात पर बल देना सही था कि इस समस्या का अब तक स्पष्ट विश्लेषण नहीं हुआ है। इस कारण उन्होंने इस बात का सुझाव दिया कि "उस व्यवस्था की प्रकृति का अस्थायी रूप से विश्लेषण किया जाये, जिससे उत्पादन की सभाव्य (potential) शक्ति वास्तविक उत्पादन (realized production) मे परिणत हो जाती है और यह उत्पादन इस बात से सतुलित और सक्रिय हो जाता है कि जो भी उपज तैयार होती है, उसके बराबर एक समर्थ माँग भी उत्पन्न हो जाती है'।[1]

उन्होने अपने विश्लेषण को इस पूर्वधारणा (assumption) से आरम्भ किया कि यह बहुत अच्छी तरह से सिद्ध हो चुका है कि ऐसी उत्पादन शक्ति बहुत सीमा तक पाई जाती है, जिसका उपयोग नही किया गया है, और इसका कारण उस स्थिति मे पाया जाता है, जिसको सामान्य रूप से सीमित समर्थ माँग कहा जाता है[2] फिर भी आर्थिक प्रणाली ने गत 150 वर्षों मे उत्पादन शक्ति की महान वृद्धि को अपने मे खपा लिया था। "यह एक आधारभूत तथ्य है, जिसपर इस प्रस्ताव विवरण के साथ विचार किया जा सकता है कि आर्थिक प्रणाली उत्पादन शक्ति को अपने अन्दर इतनी तीव्रता से नही खपा पाई है जितनी तेजी से यह शक्ति उत्पादन हुई है"[3]। उन्होने यह प्रश्न उठाया कि आर्थिक प्रणाली अपनी समस्त उत्पादन शक्ति को क्यो नही खपा पाई और जितनी भी मात्रा मे उत्पादन शक्ति को खपा पाई है, उसका कारण क्या है ?

क्लार्क ने विचारार्थ दो परिकल्पनाएँ (hypotheses) प्रस्तुत की जिनमे पहली का सम्बन्ध दीर्घकालिक प्रवृत्तियो (trends) से था और दूसरी तेजी और मदी के चक्रो (cycles of b om and depression) से सम्बन्धित थी।

क्रियात्मक रूप से क्लार्क चक्र को पहले स्थिर करना चाहते थे। जब तक औद्योगिक उतार-चढाव पर काबू नही पा लिया जाता, "हम पहली परिकल्पना की यथार्थता को नही आंक सकते।"[4] पहली परिकल्पना का सम्बन्ध "दीर्घकालिक प्रवृत्तियो" से है और यह इस बात को मानकर चलती है कि क्रय शक्ति की वृद्धि पर कोई-न-कोई सीमा लागू हो जाती है या उस गति की दर पर भी ऐसी सीमा लागू हो जाती है,

---

[1]—वही।

[2]—वही, पृ० 106।

[3]—वही, पृ० 107।

[4]—वही, पृ० 114।

जिससे आर्थिक प्रणाली ऐसा आवश्यक समजन स्थापित कर सके[1] ताकि यह गति हमारी उत्पादन शक्तियो की वृद्धि की गति से कम हो जाये[2]। माल पैदा करने की बढी हुई शक्ति के खपत के लिए जो आवश्यक समजन स्थापित नही हो पाता, उसकी असफलता का मूल कारण वह प्रवृत्ति है, जिससे हम अपनी बढती हुई आय के साथ साथ बचत भी अधिकाधिक दर से करते है।[3] यह बात (विशेषकर ऐसी पुस्तक मे जिसमें केन्ज के सिद्धान्तो का ठीक प्रतिपादन हो) स्पष्ट रूप से हमारा ध्यान आकृष्ट करती है और यहा क्लार्क द्वारा बनाये गये उन विभिन्न नियमनो (formulations) को उद्धृत करना उपयुक्त भी होगा, जिनको आजकल उपभोग कार्य (consumption function) के नाम से पुकारा जाता है।

निम्नलिखित बात विशेषकर ध्यान देने योग्य है —"एक अन्य तथ्य यह है कि शिखर पर ऐसे लोग जिनके पास साधारण से अधिक आय है, वे सामान्यत आय का साधारण से अधिक प्रतिशत बचाते है और आय मे से जो उपभोक्ता माल (consumer's goods) पर व्यय करते है उसकी प्रतिशत कम होती है। अत. सामान्य रूप से उपभोक्ता माल की माँग उतनी तेजी से नही बढती जितनी तेजी से उत्पादन शक्ति बढती है ।"[4] अपनी पुस्तक स्ट्रैटजिक फेक्टर्स इन बिजनेस साइकल्ज मे वे फिर इस बात को दृढ रूप से कहते है कि इस बात की सभावना है (नैतिक दृष्टि से इसे निश्चित बात भी कहा जा सकता है) कि जैसे व्यवसाय चक्र (business cycles) के उत्क्षेप (upswing) मे राष्ट्रीय आय बढती है, उपभोक्ताओ के व्यय मे

---

[1]—उस व्यवस्था प्रणाली (mechanism) में, जिसके द्वारा निजी व्यवसाय (Privatebusiness) प्रक्रिया से सबधित बातों का ध्यान रखता है, क्लार्क ने निम्नलिखित मुख्य बातें सम्मिलित की है—(1) माग की प्रत्याशा में उत्पादन, (2) एक नम्य साख पद्धति (credit system), (3) घटी हुई एकाश लागत (unit costs) पर पैदा किये हुए माल के घटाये हुए मूल्य, (4) विस्थापित कर्मचारियों की खपत के सहायनार्थ मजदूरी में कटौती, (5) कम ब्याज-दरें, (6) आशिक रूप से निवेश व्यय (investment outlays) और आशिक रूप से व्यावसायिक आय (business earnings) के विस्तृत वितरण (distribution) के कारण बढा हुआ उपभोक्ता व्यय (consumer spendings)।

[2]—वही, पृ० 113।

[3]—वही, पृ० 109।

[4]—वही, पृ० 115 116।

होने वाली वृद्धि की भाँति कुल आय की वृद्धि की गति की अपेक्षा कम होती है, तथा उत्पादन माल (producer's goods) के व्यय के लिए [स्थायी उपभोक्ता माल के निर्माणार्थ अग्रिम धन (advances) के लिये] जो बचत उपलब्ध हो सकती है, वह अधिक तेजी से बढती है।[1]

क्लार्क कहते हैं कि यदि समस्त बचत किसी न किसी पूँजीगत व्यय (Capital outlays) "पर तुरन्त और स्वत खर्च" हो जाये, तो "माल की कुल माँग वही रहेगी, चाहे बचत अधिक हो या कम।" "पर ऐसा" स्वत घटित नही होता।[2]

क्लार्क ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि पहले हमे चक्र को स्थिर करने का प्रयत्न करना चाहिये और तब हम "इस अगली समस्या पर सोच-विचार कर सकते हैं कि लोग उपभोग के लिए बहुत कम खर्च करते है, और बहुत अधिक बचाते हैं'''और यह कि आय के वितरण मे किये गये परिवर्तनो से सतुलन को सुधारने मे कुछ मदद मिल सकती है।"[3]

स्थिरता प्रयोग (stabilization Experiment) की बिना प्रतीक्षा किये ही वे निम्नाकित विचार व्यक्त करते है —"यह असंदिग्ध तथ्य है कि वर्तमान प्रणाली समजन के इस कार्य को सफलतापूर्वक पूरा नही कर सकती है और यह शकास्पद है कि केवल तेजी मदी के हटा देने से ही बाकी सभी समजन समस्याओ का हल स्वत ही नही निकलेगा। यदि हम व्यष्टि सिद्धात (Individualistic theory) की पूर्णता अनन्य स्वतत्र प्रतियोगिता मूलक प्रणाली (completely fluid freely competitive system) को स्थापित कर सके तो क्या समस्या का हल हो

---

[1]—स्ट्रटजिक फैक्टर्स इन बिजनेस साइकल्स, नेशनल ब्यूरो आफ इकनामिकल रिसर्च।(National Bureau of Economical Research) 1934, पृ० 78। पाठकों के लिये ध्यानार्थ है कि उपभोक्ता का आय से जो कार्यात्मक सबध (functional relation) है, उसके विषय में जो नियमन बतलाये गये है, उन्हें इसी सबध में केन्स द्वारा बनाये गये जो नियमन हैं उनसे कम सतर्क कहा जा सकता है। केन्स ने अपने विचार को इसी बात तक परिसीमित रखा कि सीमात उपभोग प्रवृत्ति (marginal propensity to consume) एक से भी कम है। दूसरे शब्दों में, सामुदायिक दृष्टि से हम आय की बढोतरी का कुछ भाग बचा लेते है। पर क्लार्क इससे भी आगे बढ गये और उन्होने यह तर्क प्रस्तुत किया कि हम बढती हुई आय का बढता हुआ तुलनात्मक अश (proportion) बचाते हैं।

[2]—वही, पृ० 136।

[3]—इकनामिक रिकन्स्ट्रक्शन पृ० 120।

जायगा ? 'इस प्रश्न का कोई वैज्ञानिक ढग से सिद्ध किया हुआ उत्तर नही दिया जा सकता । लेकिन उनका विचार था कि इस बात की "पूर्ण सभावना है" कि इस प्रकार की प्रणाली मे भी तेजी व मदी आती रहेगी और "चाहे कितनी भी स्वतन्त्र प्रतियागिता व्यवस्था क्यो न हो उसके अन्तर्गत भी समजन की प्रक्रिया मे समय लगेगा और अनिश्चितताएँ, गल्तिया रहेगी और हानिया भी उठानी पडेंगी" स्वतन्त्र प्रतियोगिता का अर्थ उस प्रतियोगिता से है जिसके अन्तर्गत असीमित हानिकारक पराकाष्ठा (unlimited cut-throat lengths) तक भी पहुँचा जा सकता है ।' निस्सदेह इस व्यवस्था मे वर्तमान समय से अधिक नम्यता (flexibility) वाछनीय है परन्तु "ऐसा नही सोचा जाता कि यह नम्यता आदर्श स्वतन्त्र प्रतियोगिता व्यवस्था को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त होगी, विशेषकर जब कि इस बात का कोई निश्चित आश्वासन न हो कि उन सब बातो का कोई अतिम परिणाम यह होगा कि समस्त दृष्टि से हम सब अधिक निधन होने की अपेक्षा अधिक धनी हो जायेगे ।"[2]

इस व्यवस्था के विशेष दोषो मे उन्होने 'आय के अनुचित सकेन्द्रीयकरण और सभवत उसके कारण अधिक बचत (over savings) की प्रवृत्ति (यद्यपि पिछली बात की पूण खोज करने की आवश्यकता है) को उदाहरण रूप मे प्रस्तुत किया "यदि बचत इस प्रकार बढ जाती है कि उसके एक पर्याप्त भाग का अपव्यय होता हो, तो मुख्यत इस बचत की राशि को कम करके जो' अधिक समान वितरण "प्राप्त किया जाये तो ऐसा परिवर्तन स्पष्ट रूप से लाभप्रद होगा ।'[3]

अपने विशिष्ट रूप मे क्लार्क का गहन चिन्तन नवसस्थापित परम्परा निष्ठता (Neoclassical orthodox) मे केन्ज से पूर्व जो अविश्वास या उसको प्रदर्शित करता है पर कुछ ही लोगो का ध्यान इस ओर गया । उस समय इस बात की आवश्यकता थी कि किसी ऐसे सामान्य सिद्धान्त का आविर्भाव हो जो स्वत समजन के परम्परानिष्ठ सिद्धान्त का स्थान ग्रहण करने के लिए पर्याप्त तथा व्यापक हो। निस्सदेह यह एक अत्यन्त कठिन कार्य था जिसे केन्ज ने अपनी जनरल थ्योरी नामक पुस्तक मे पूर्ण करने का प्रयास किया ।

व्यवसाय-चक्र (Business cycles) और 'से' का बाजार नियम—हम ऊपर देख ही चुके है कि परम्परानिष्ठ सिद्धात के प्रति असतोष इस कारण उत्पन्न

1—वही, पृ० 122 ।
2—वही, पृ० 122-123 ।
3—वही, पृ० 125 ।

हुआ कि इस सिद्धात के परिणाम प्राय वास्तविक जगत से मेल न खा पाये। अतः बहुत से अर्थशास्त्री परम्परानिष्ठ तर्क का खडन न कर पाने पर भी इस सिद्धात से असन्तुष्ट रहे और उन्होंने जानबूझकर अपना ध्यान अधिक ठोस समस्याओं की ओर केन्द्रित किया। ऐसा ही एक क्षेत्र व्यवसाय चक्र का था जो 1900 से लेकर 1936 तक लगातार महत्ता प्राप्त करता रहा किन्तु यहा इस बात को ध्यान मे रखना आवश्यक है कि इस क्षेत्र मे कार्य करने वाले अर्थशास्त्रियो मे परम्परानिष्ठ सिद्धात की स्वत. समजन रूढी को मानने वाले और न मानने वाले दोनो ही सम्मिलित थे। प्राय यह कहा जाता है कि उपरोक्त काल मे व्यवसाय चक्र की समस्याओं के सैद्धातिक पक्ष मे बहुत अधिक उलझा रहना इस बात को पर्याप्त रूप से सिद्ध कर देता है कि कोई भी अर्थशास्त्री (यदि कोई थे भी) "से" के बाजार नियम के सिद्धात के अब समर्थक नही रहे। पर मेरा विश्वास है कि साहित्य के समालोचनात्मक अध्ययन से इस मत की पुष्टि न हो सकेगी।

जे० एस० मिल (Mill) पहिले ही इस प्रश्न का उत्तर दे चुके थे कि "से" का बाजार नियम मदी (*Depression*) के तथ्य से कहा तक सगति खाता है। उनकी प्रिंसिपल्ज नामक पुस्तक के तीसरे भाग के 14वें अध्याय मे 'से' के सिद्धात का समर्थन किया गया है। फिर भी मिल ने बाजार की उस मदी अवस्था को स्वीकार किया, जो वाणिज्य सकट (commercial crisis) के साथ-साथ आती है। उनका कथन है कि ऐसी अवस्थाओ मे "द्रव्य माँग" (money demand) कम हो जाती है और "कोई भी नकद रुपये (ready money) को देना नही चाहता, और बहुत से तो किसी भी तरह इसे प्राप्त करने को आतुर हो जाते है।" "मिल" आगे कहते हैं कि मदी को "माल की भरमार" (glut of commodities) या मुद्रा की दुलर्भता" भी कहा जा सकता है। तब भी उनका विचार था कि मदी का कभी-कभी आ जाना किसी भी तरह "से" के बाजार नियम का खण्डन नही करता है। मदी तो केवल "बाजारो की अल्पकालिक अव्यवस्था" ही है। मदी "सट्टा-क्रय की अति" का परिणाम है। इसका तात्कालिक कारण "साख का आकुचन" (contraction of credit) और इसका उपचार "विश्वास की पुनःस्थापना" है।[1] मिल का मत था कि इस प्रकार की अव्यवस्थाए किसी तरह भी यह सिद्ध नही करती कि पूर्ण रोजगार

---

[1]—ये सभी उद्धरण जे० एस० मिल की पुस्तक प्रिंसिपल्ज ऑव पालिटिकल इकॉनमी पृ० 561 (प्रथम बार 1848 में प्रकाशित) के ऐश्ले (Ashley) के नवीन सस्करण (न पुनः मुद्रित जनवरी 1920) से लिये गये है।

के सतुलन को फिर से लाने की दिशा मे कोई दृढ अर्न्तनिहित शक्तिया काम नही करती।

मिल से के बाजार नियम को अत्यन्त महत्वपूर्ण समझते थे। "यह तो एक मौलिक तथ्य है। इस पर मतभेद का मतलब होगा राजनीतिक अर्थशास्त्र के और विशेषकर इसके व्यवहारिक रूपो के सम्बन्ध मे आमूल परिवर्तनीय दूसरी अवधारणाओ का रखना'[1] वे कहते है कि यदि 'से" के बाजार नियम को स्वीकार नही किया जाता तो राजनीतिक अर्थशास्त्र का सम्बन्ध केवल (1) उत्पादन के नियमो और (2) वितरण (distribution) के नियमो से ही नही, बल्कि (3) इस समस्या से भी होगा कि किस प्रकार उपज के लिये बाजार उत्पन्न किया जा सकता है।" अन्य शब्दो मे पर्याप्त समस्त माँग का समस्या से भी सम्बन्ध होगा। मार्शल ने भी अपनी पुस्तक प्रिंसिपल्ज (1890) मे दृढतापूर्वक मिल की बात का समर्थन किया। वास्तव मे उन्होने "से के बाजार नियम के सम्बन्ध मे मिल के कथन का अनुमोदन करते हुये उसे उद्धृत ही नही किया, बल्कि व्यवसायिक मंदियो (business depressions) का विश्लेषण मिल द्वारा किये गये विश्लेषण के समरूप ही दिया है। उनके विचार मे मदी का मुख्य कारण अविश्वास है, जो साख की अधाधुन्ध स्फीति (reckless inflation of credit) से उत्पन्न होता है। जब विश्वास डगमगा जाता है 'तो लोगो के पास क्रय शक्ति होते हुए भी वे उसका उपयोग करना नही चाहते।[2]

एफ० एम० टेलर ने जो एक कठोर विचारक थे 1920 29 के प्रारम्भिक वर्षों मे पूर्ण विकसित अमरीकी परम्परानिष्ठ अर्थशास्त्र का प्रतिनिधित्व करते हुए अपनी पुस्तक प्रिंसिपिल्ज (1921) मे से के बाजार नियम और उसका व्यापारिक मदी से सम्बन्ध की व्याख्या ठीक उसी प्रकार की है जैसे मिल और मार्शल ने की। टेलर ने अपनी पुस्तक का एक संपूर्ण अध्याय 'से' के बाजार नियम के जोरदार समर्थन मे और विशेषकर उस सिद्धान्त के व्यापारिक मन्दी से सम्बन्ध पर लिखा। उनके मतानुसार व्यापाररिक मदिया 'से" के नियम को असत्य सिद्ध नहीं

1—वही, पृ० 562।

2—ऐल्फ्रेड मार्शल प्रिंसिपल्ज ऑव ईकनामिक्स, सप्तम सस्करण, मैकमिलन ऐण्ड क० लि०, (लदन) पृ० 710। निम्नलिखित पर भी ध्यान दीजिये।
बेरोजगारी का एकमात्र "प्रभावपूर्ण उपचार साधनों का सायों से इस प्रकार निरतर समजन है कि साख (credit) को नहुन कुछ ठीक ठीक पूर्वानुमान की ठोस नीव पर आधारित किया जा सके" (पृ० 710)

करती। उन्होंने बाजार नियम को एक मान्य और चिरकालिक सिद्धान्त माना है। परन्तु उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि अल्पकाल में उत्पन्न वस्तुओ का विनिमय इन दो भागो मे विभक्त हो जाता है। पहले उत्पन्न वस्तुओ का विनिमय द्रव्य से होता है और फिर द्रव्य का विनिमय उत्पन्न वस्तुओ से किया जाता है। मार्शल के कथनानुसार मनुष्यो के पास क्रय शक्ति तो होती है किन्तु वे अस्थाई अव्यवस्थाओ और कुसमजनो के कारण जिमसे उनका विश्वास नष्ट हो जाता है, उसका प्रयोग नही करते। ये अस्थायी अव्यवस्थाए किसी भी तरह से उन दृढ आधारभूत शक्तियो को (जिन्हे "से" का बाजार नियम प्रकाश मे लाना चाहता था) जो स्वत ही पूर्ण रोजगार को लाने मे प्रवृत्त होती हैं असत्य सिद्ध नही करती। व्यवसाय चक्रो पर लिखने वाले नव सस्थापक लेखको ने सामान्यतया एक मात्र उच्चावचनो (fluctuations) पर ही ध्यान दिया। साधारणतया उन्होने यह गम्भीर प्रश्न नही उठाया कि क्या अर्थव्यवस्था इन उच्चावचनो के होते हुए भी पूर्ण रोजगार की ओर प्रवृत्त होती है या नही।[1] विशेष बात तो वह है कि यह स्वचालित प्रवृत्ति (automatic tendency) वास्तव मे बिना किसी शका के मान ली गई थी। व्यवसाय-चक्र के सिद्धान्त में विश्वास करने वाला कोई भी व्यक्ति "से" के आधारभूत बाजारनियम के सिद्धान्त को दृढतापूर्वक स्वीकार कर सकता था।

प्राय अर्थशास्त्रियो ने "से' के बाजार नियम का स्पष्ट उल्लेख नही किया। लेकिन जब ऐफ्टेलियन जैसे लोगो ने इस सिद्धान्त का खडन करने का साहस किया तो उन्हे स्वत समजन के सिद्धान्त का समर्थन करने वाले प्रबल परम्परानिष्ठ तर्क द्वारा बुरी तरह दबा दिया गया। डी० एच० रोबर्टसन (Robertson) (ये कुछ हद तक जे० एम० क्लार्क के अग्रेजी प्रतिरूप थे) जैसे अन्य लेखको ने तत्प्रचलित परम्परा-निष्ठता पर कोई सामान्य सैद्धान्तिक आक्षेप न किया, पर वे फिर भी उस प्रबल सदिग्ध आलोचक बने रहे। रोबर्टसन ने यह दावा नही किया कि वे सब प्रश्नो का उत्तर दे सकते हैं, लेकिन उन्होने बेढब और कठिनाई मे डालने वाले प्रश्न उठाये। स्वत समजन सिद्धान्त का खुशी-खुशी अनुयायी होना तो दूर, उन्होने उस समय पाये जाने वाले कुसमजनो के कारणो की गहन, तीक्ष्ण तथा कठोर एव अविराम छान-बीन

1—जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, जे०एम० क्लार्क ने (और निस्संदेह दूसरों ने भी) इन प्रश्न को उठाया था।

की ।[1] हमे निमचय (hoarding) तथा उसकी वचत-निवेश समस्या की महत्ता पर लिखे गए प्रवनक ग्रन्थ पर विशेप ध्यान देना चाहिये ।

तुगन-वरनाउस्की (Tugan Baranowsky) ने पहिले ही अपनी पुस्तक (**Studien fur Geschichte der Handelskrisen in England,** 1901) मे इस उग्र मत का प्रतिपादन किया था कि वचत और निवेश मे असगति होने से आधारभूत कुसमजन उत्पन्न हो सकता है। इस मत का विक्सल द्वारा **लेक्चर्ज ऑन मनि** (Lectures on Money) (1906) नामक पुस्तक मे और अधिक स्पष्टीकरण किया गया। साथ ही उन्होंने इस मत को अपने पहिले वाले उन नियमो (**इटरेस्ट ऐण्ड प्राइसज** 1898) से जोड दिया जो स्वाभाविक दर (natural rate) और द्राव्यिक दर (money rate) मे भिन्नता स्थापित करते है। उसके वाद कम-से-कम यूरोपीय महाद्वीप मे तो व्यवसाय-चक्र सिद्धान्त का सम्बन्ध केवल साख और विश्वास की अव्यवस्थाओ तक ही सीमित न रह कर, कई और अधिक महत्व-पूर्ण विपयो से हो गया। आगे से, निवेश के गतिशील कार्य (dynamic role) से सम्वद्ध विश्लेपण वचत और निवेश के सम्बध नूतन प्रक्रिया (innovational process) अचल पूंजी (fixed capital) के उपयोग करते समय आने वाली समय-पश्चता (time lags) और व्युत्पन्न (derived) माग के सिद्धान्त (तुगन-वरनाउस्की विक्सल स्पीथॉफ (Spiethoff) शुम्पीटर (Schumpeter), एफ्टेलियन) ने न केवल चक्र सिद्धात के विशिष्ट क्षेत्र मे प्रत्युत सामूहिक रूप से मूल आर्थिक कार्य प्रणाली से सम्बद्ध सामान्य सैद्धान्तिक विचारो पर भी गहरा प्रभाव डाला। जितनी ही अधिक गहराई से व्यवसाय-चक्र सिद्धान्त ने निर्दिष्ट समस्याओ पर छान-बीन की उतना ही मुद्रा एव चक्र सिद्धान्त का मूल्य पद्धति के सामान्य सिद्धान्त के साथ एकीकरण का कार्य आवश्यक वन गया।

पीगू (Pigou) और स्वत समजन का सिद्धान्त

महाद्वीप निवेश विश्लेपण ने ही अग्रेजी विचारधारा पर सभवत कोई प्रभाव नही डाला। यह वात पीगू पर विशेपकर सत्य सिद्ध होती है। साथ ही यह वात

---

[1]—देखिये लनार्क द्वारा लिखित ए स्टडी आफ इण्डस्ट्रियल फ्लक्चुएशन, प्रकाशक पी० एस० किंग ऐण्ड स्टेप्लन लि० (लदन), 1915, वैकिंग पालिसी ऐण्ड द प्राइस लेवल, पी० एस० किंग ऐण्ड स्टेप्लन, लि० 1926, और 1920 39 में इकनामिक जर्नल इकनामिका (Economica) और अन्य स्थलों पर लिखे गये अनेक लेख।

[2]—देखिये मेरी बिजनिस साईकल्स ऐण्ड नेशनल इन्कम, भाग तीसरा।

उनके रोजगार सिद्धान्त के लिये भी बहुत महत्व रखती है, क्योंकि इसी सिद्धान्त ने केन्जवादी विचारधारा को सबसे अधिक महत्वपूर्ण चुनौती दी और अब भी दे रहा है। पीगू अपनी पुस्तक इंडस्ट्रियल फलकच्युएशन्ज (Industrial Fluctuations) में स्वत प्रेरित (autonomous) निवेश के कार्य के सम्बन्ध मे सदिग्ध रहे और इस बात का कोई प्रमाण नही मिलता कि निवेश माग के महाद्वीपीय विश्लेषण (विक्सल, तुगन, बरनाउस्की, स्पीथाफ) उनकी विचारधारा का कभी भी अभिन्न अ ग बना हो। निवेश के स्वत प्रेरित कार्य को माग के उच्चावचन के लिये मुख्य निर्धारक न मानते हुये, उन्होने कभी भी यूरोप महाद्वीप मे होने वाले बचत-निवेश विश्लेषण से सबद्ध घोर वादविवाद मे कोई रुचि न ली। यद्यपि मिल और मार्शल की भांति उन का भी मत था कि औद्योगिक उच्चावचन मुख्यत साख तथा विश्वास की अवस्थाओ के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं, तथापि यह विश्लेषण पूर्ववर्तियो की अपेक्षा अधिक सशक्त था, विशेषकर इसलिए कि उन्होंने व्युत्पन्न मांग के सिद्धान्त का प्रयोग किया।

बचत और निवेश पर महाद्वीपीय विचारधारा के समर्थकों (continental school) द्वारा किये गये आधारभूत कार्य की उपेक्षा करके, पीगू व्यवसाय-चक्र का एक ऐसी अस्थायी अव्यवस्था समझने में समर्थ हुये जो साधारणतया ऐसी शांत व्यवस्था में घटित होती है, जो पूर्ण रोजगार की ओर स्वत ही प्रवृत्त हो। उन्होंने यह स्वीकार किया कि माग मे निस्सन्देह अल्पकालिक उच्चावचन बारम्बार होते रहते हे। किन्तु उनका विचार था कि उनके द्वारा रोजगार में उच्चावचन केवल इस लिये हैं कि मजदूरी दरें पर्याप्त रूप मे सुनम्य (plastic) नही होती। जितनी अधिक मात्रा मे मजदूरी अनम्य होगी, उतनी ही अधिक मात्रा मे रोजगार मे भी उच्चावचन होगा। उनकी पुस्तक इंडस्ट्रियल फलकच्युएशन्ज के पहले भाग का 19वा अध्याय "मजदूरी दर की अनम्यता का योगदान" (The Part Played by Rigidity in Wage-rates) इस बात को स्पष्ट करता है कि यदि "मजदूरी दर पूर्णत सुनम्य हो, तो काम मे लगे हुये श्रमिको की सख्या मे कोई भी परिवर्तन नही होगा।"[1]

उन्होंने अपनी पुस्तक थ्योरी ऑफ अनइम्प्लायमेंट (1933) मे इसी सिद्धान्त को इन शब्दो में फिर दोहराया कि "पूर्ण स्वच्छद प्रतियोगिता मे मजदूरी दरो का माग से इस प्रकार सम्बन्धित हो जाने की प्रबल प्रवृति जिससे प्रत्येक को रोजगार मिल जाए...सदा ही कार्य करती रहेगी। इसका आशय यह है कि बेरोजगारी जो किसी भी समय पाई जाती है, उसका एक मात्र कारण यह है कि घर्षण प्रतिरोध

---

[1]—इंडस्ट्रियल फलकच्युएशन्ज, मैकमिलन एण्ड क० लि० (लदन) 1927, पृ० 176।

(frictional resistances) समुचित मजदूरी समझनो को तुरन्त घटित होने से रोकते है'[1] अपनी पुस्तक इंडस्ट्रियल फलकच्युएशन्ज (भाग दूसरे अध्याय 9वें) मे उन्होने निस्सकोच यह मत व्यक्त किया है कि पूर्णतः सुनम्य मजदूरी नीति "रोजगार की घटी बढी को" बिल्कुल "समाप्त" कर देगी।[2]

पीगू का मत था कि पूर्णत सुनम्य मजदूरी (completely flexible wages) (जिसमे सभवत शून्य (zero) मजदूरी और "ऋणात्मक (negative) मजदूरी "भी सम्मिलित है)' सभी उद्योगो मे सदा ही पूर्ण रोजगार बनाये रहेगी, चाहे माग मे कुछ भी परिवर्त्तन होते रहे" (पृ० 284)। शून्य या ऋणात्मक मजदूरी की अवस्था मे निस्सदेह यह स्वीकार करना पडेगा कि "श्रमिक अपने पास माल का भारी भडार रखते है।" किन्तु उस निपज को खरीदगा कौन ? पीगू ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नही दिया।

इसलिये पीगू ने इस मत का प्रबल समर्थन किया कि यह पद्धति स्वत ही पूर्ण रोजगार की ओर प्रवृत्त होती है। हमारी उत्पादक शक्ति को पूर्ण रूप से उपयोग मे न ला सकने का एकमात्र कारण घर्षण कुसमझन है। पीगू को नवसस्थापक सतुलन सिद्धात (neoclassical equilibrium theory) की परिपूर्णता के विषय मे तनिक भी सदेह न था।

जहाँ तक मुझे ज्ञात है, पीगू ने कभी भी 'से" के बाजार नियम का स्पष्ट उल्लेख नही किया। पर इसका यह कारण नही था कि उनको इस सिद्धात की आधारभूत मान्यता मे कोई सदेह था, बल्कि यो समझना चाहिये कि यह इस बात पर आधारित था कि पुरानी नियम-व्यवस्था (जे० बी० से, डेविड रिकार्डो, जेम्ज मिल, जे० एस० मिल आदि) ऐसे सामाजिक सगठन के सदर्भ मे बनाई गई थी, जो अब अधिकाश मे नहीं पायी जाती। यह एक ऐसा समाज था जिसमे विशेष बात यह थी कि अधिकाश उत्पादक अपने धधो के अपने आप स्वामी थे, चाहे वे किसान हो या कारीगर। चाहे वे खेती करके उपज प्राप्त करते थे या वस्तुओ का निर्माण[3] करते थे, उनकी आय उन्ही के द्वारा उत्पादित माल की बिक्री से होती थी। रोजगार का अर्थ था केवल खेती करना या दुकान खोलना, और अपनी-अपनी उपज को बाजार मे बेचना। जो आय प्राप्त होती थी, वह औजारो पर, खेत पर, गृह निर्माण पर तथा उपभोक्ता माल को खरीदने मे खर्च की जाती थी। जो भी कुछ बच रहता था वही निवेश का काम करता था, निवेश की अपने आप मे स्पष्ट तथा पृथक प्रक्रिया नही

---

[1]—थ्योरी ऑव अनइम्प्लॉयमेंट, मैक्मिलन ऐण्ड क०, लि० (लदन) 1933, पृ० 252।

[2]—इंडस्ट्रियल फ्लक्चुएशन्स, पृ० 284। वास्तव में पीगू ने सामाजिक और व्यावहारिक कारणों से पूर्ण मजदूरी नम्यता का समर्थन नहीं किया, पर उन्होंने, अवश्य ही इस बात पर बल दिया, कि अधिक सुनम्य मजदूरी नीति अपनायी जानी चाहिये।

[3]—"निर्माण" का वास्तविक अर्थ मूल शब्दों के अनुसार "हाथ द्वारा बनाये हुए माल से था।"

थी। उत्पादक अपनी उपज को बेचता था न कि अपने श्रम को। जितने ही अधिक उत्पादक होते थे, उतना ही बाजार का क्षेत्र विस्तृत हो जाता था। उपज का विनिमय उपज से होता था। सभरण स्वय माग को उत्पन्न कर लेती थी।

पर यह बात आधुनिक अर्थ-व्यवस्था पर ठीक नही बैठती, क्योकि बचत और निवेश दो भिन्न भिन्न क्रियाएँ हो गई हैं। अब रोजगार "दुकान खोल कर नही" बल्कि श्रमिक बनने से मिलता है। "से" के बाजार नियम का पुराना सूत्र आज के समाज मे होता प्रतीत नही होता। पीगू के अनुसार समस्या का सम्बन्ध श्रम की समस्त माग से था। इसलिये पीगू द्वारा "से' के बाजार के नियम का निरूपण (स्वच्छद प्रतियोगिता की दशा मे) अर्थव्यवस्था की उस प्रवृत्ति से था, जो श्रम बाजार मे पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करती है। और इसी रूप मे उन्होने इस सिद्धात का वर्णन अपनी इडस्ट्रियल फलक्च्युशन्ज (1927) व थ्योरी ऑव अन-इम्पलायमेट (1933) ईकनामिक जर्नल (सितम्बर 1937, दिसम्बर 1943) मे प्रकाशित लेख, इम्पलायमेट एड इक्विलिब्रियम (1941), और लेप्सज फ्राम फुल इम्प्लायमेंट (**Lapses from full Employment**) (1945) नामक रचनाओ में वर्णन ही नही किया बल्कि बारम्बार उन्हे भी दोहराया।

अपनी पुस्तक थ्योरी ऑव अनइम्प्लायमेंट मे उन्होने यह युक्ति प्रस्तुत की कि स्वच्छद प्रतियोगिता मे मजदूरी दरो की माग से इस प्रकार के सम्बन्ध होने की प्रवृत्ति होगी कि प्रत्येक व्यक्ति को रोजगार मिल जाय।[1] इन दो बातो पर ध्यान अवश्य दिया जाना चाहिये—(1) श्रम की द्रव्य-माग अनुसूची और (2) नकद मजदूरी दर।

पीगू निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचे[2]—

> '''श्रम की माग की अवस्था का जो कि श्रम की माग की अवस्था के परिवर्तनो से भिन्न है रोजगार से कोई सम्बन्ध नही है, क्योकि मजदूरी दरें स्वय ही इस ढग से समजन कर लेती हैं, कि जब माग की विभिन्न अवस्थाएँ एक बार स्थापित हो जाती हैं, तो वे बेरोजगारी की वैसी ही औसत दरो के समान होती हैं। इसका मतलब यह हुआ कि दीर्घकालीन दृष्टिकोण से, वे असल मजदूरी दरें, जिन्हे लोग ठहराते हैं, माग कार्य से अत्यन्त मुक्त होकर भी, एक विशेष प्रकार से उस मांग कार्य की क्रिया है'' इसका आशय यह

[1]—पीगू थ्योरी ऑव अनइम्प्लॉयमेंट, पृ० 252।
[2]—वही।

है कि किसी समय होने वाली बेरोजगारी का एकमात्र कारण यह है कि माग की स्थितिया मे निरतर परिवर्तन होते रहते हैं और घर्षण प्रतिरोध उचित मजदूरी समजन को तुरन्त स्थापित होने से रोकते हैं।

यह कथन बहुत महत्वपूर्ण है। इसका यह अर्थ हुआ कि माग की चाहे कुछ भी दशा हो मजदूरी समजन के द्वारा, पूर्ण रोजगार की ओर सदैव ही प्रवृत्ति बनी रहगी। अत कोई भी माग अवस्था यदि एक बार दृढता से स्थापित हो जाये, तो वह उतनी ही उत्तम है जितनी कि कोई अन्य अवस्था। "यदि इस विस्तृत निष्कर्ष को स्वीकार कर लिया जाये, तो इससे यह परिणाम निकलेगा कि दीर्घकालीन सरकारी नीतिया (जो श्रम माग की अवस्था को स्थायी रूप से अधिक अच्छा या अधिक बुरा बनाती है, अपेक्षा उसके जो इस प्रकार की नीतियो के अभाव मे होती), जब एक बार स्थापित हो जाती है, तो वे न तो बेरोजगारी का कारण ही है और न ही उनका उपचार।'[1]

यही था वह स्वत समजन का सिद्धान्त जो पीगू द्वारा प्रस्तुत प्रचलित परपरा-निष्ठता मे प्रमुख था और जिस पर केन्ज ने अपनी जनरल थ्योरी नामक पुस्तक मे आक्षेप किया है। इस पुस्तक (भाग प्रथम) की भूमिका को "से" के बाजार नियम और विशेषकर जिसको मैंने ऊपर पीगू द्वारा निरूपित "से" का नियम कहा है, के कथन तथा समीक्षा मे ही लगाया है।

केन्ज ने यह कहने मे सावधानी का परिचय दिया कि वे मूल्य और वितरण के नवसस्थापक सिद्धान्त पर आक्षेप नही कर रहे हैं। उनका कहना था कि सस्थापित सिद्धान्त का यह भाग तो "बडी सावधानी" से प्रतिपादित किया गया था, जिससे कि "तर्क सगत बन सके'। यदि नियोजित साधन (Employed resources) का परिमाण ज्ञात हो तो नवसस्थापित सिद्धान्त यह स्पष्ट कर सकता है कि उपज किस प्रकार उपादानो म विभाजित हो जाती है। इसके, प्राप्य साधनो (जनसख्या, प्राकृतिक पदार्थ, पूँजी पदार्थों का स्टाक) के परिमाण का उपयोगी और विस्तृत अध्ययन किया गया है। उनके मतानुसार एक ऐसे विशुद्ध सिद्धान्त की जो प्राप्य साधनो के ठीक ठीक नियोजन के उपादानो को निर्धारित कर सके कमी थी।

वास्तव मे, पीगू ने अपनी पुस्तक थ्योरी ऑव एम्प्लॉयमेंट मे माग की अवस्था और माग मे परिवर्तनो के बीच अनर दिखलाया है। जैसा हम पहले ही देख चुके हैं, पीगू का विश्वास था कि जहाँ तक रोजगार का सबध है, माँग की अवस्था जैसी चीज का काई प्रभाव नही पडता है। किन्तु केन्ज इस बात को स्वीकार नही करते।

[1]—वहा, पृ० 248 249।

यही से मतभेद का आरम्भ होता है। विवाद उन आधार तत्वो के सबन्ध मे था जो पीगू के 'से" के बाजार नियम के निरूपण म निहित थे, या यो कहिये कि विवाद अभिकथित पूर्ण रोजगार की ओर स्वत प्रवृत्ति मे मजदूरी समजन के योग के विषय मे था। केन्ज कहते हैं कि "विवादास्पद विषय इतने महत्वपूर्ण हैं कि उनको बहुत बढा-चढा कर कहने की आवश्यकता ही नही है" (जनरल थ्योरी प्राक्कथन, पृ० VI)[1]

मैं यह पुन कहता हूँ कि तत्प्रचलित परम्परानिष्ठता पर किसी भी आक्षेप को निष्फल बनाने के लिए दो प्रबल युक्तियाँ थी—(1) ब्याज की दर पर यह विश्वास किया जा सकता है कि वह निवेश और बचत मे समजन इस प्रकार स्थापित कर सकती है जिससे कि साधनो का (अस्थायी अवयवस्थाओ को छोड कर) पूरा-पूरा उपयोग किया जा सके, और (2) माग की अवस्था चाह कुछ भी हो, मजदूरी समजन सदा ही (अस्थायी अव्यवस्थाओ को छोडकर) पूर्ण रोजगार को सुनिश्चित कर देगी।

ये हैं वे दो सिद्धान्त जिन पर केन्ज ने अपनी पुस्तक के अध्याय 2 और 3 मे गहरा आक्षेप किया है। यह एक प्रकार का गहरा पैंतरा था। पुस्तक के शेष भाग मे, भारी भरकम और नई-नई पलटनो को इस वाद विवाद रूपी युद्ध म झोक दिया गया।

जनरल थ्योरी के दूसरे अध्याय मे, परिच्छेद 1 से 5 का सबन्ध मजदूरी माग समजन विचारधारा पर लिखे गए हैं और परिच्छेद 6 इस सिद्धान्त पर लिखा गया है कि ब्याज-दर समजन स्वय ही बचत निवेश समस्या को हल करने म प्रवृत्त है। दोनो ही विचारधारायें "से" के बाजार नियम के निरूपण के रूप मे मानी जा सकती हैं, और दोनो ही साथ साथ खडी रहती हैं, और साथ ही साथ गिरती हैं। "से" के बाजार नियम के स्थान पर केन्ज का उपयोग कार्य सिद्धान्त (देखिये जनरल थ्योरी अध्याय 3) मजदूरी माग विश्लेषण पर आक्षेप करने के लिए उतना ही आवश्यक था जितना कि सस्थापक बचत निवेश सिद्धान्त पर।

नम्य मजदूरी और स्वत समजन प्रक्रिया

जो कुछ मैंने ऊपर कहा है, उसमे मैंने विद्यार्थियो द्वारा बहुधा पूछे जाने वाले

---

[1]—इस सपूर्ण पुस्तक के मूल पाठ में जो पृष्ठों का सदर्भ दिया गया है, वह अपरिवर्तनीय रूप से जनरल थ्योरा ऑव इम्प्लायमेंट, इटरेस्ट ऐण्ड मनि (प्रकाशक), हरकार्ट ब्रेस ऐण्ड क० इ० के 1936 के सस्करण से लिया गया है। जहा पर ऐसा नहीं है, वहा उल्लेख कर दिया गया है।

इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न किया है कि 'केन्ज ने मजदूरी से सबन्ध आधार तत्वों से ही क्यों प्रारम्भ किया ? इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि सस्थापक (या नवसस्थापक) विश्लेषण में मजदूरी दर समजन एक आवश्यक प्रक्रिया थी, जिसके द्वारा ऐसा माना जाता है कि 'से का बाजार नियम अपना कार्य करता है। जनरल थ्योरी के प्रकाशन के एक वर्ष उपरान्त पीगू ने कहा था 'अभी तक किसी भी अर्थशास्त्री ने इसमे सदेह नही किया था कि नकद मजदूरी दर मे सर्वागीण वृद्धि होने से रोजगार के परिमाण मे कमी की आशा की जा सकती है।[1]

यही कारण था कि केन्ज (अध्याय 2 म) मजदूरी दरो से सम्बन्ध सस्थापित आधारतत्वो के विवेचन म सीधे ही कूद पडे। उन्होने प्रारम्भ से ही (पृ० 5) मजदूरी के दो आधार तत्व माने हैं। इनमे से पहला, जिसे उन्होने तर्कसगत माना मजदूरी का सीमात उत्पादकता सिद्धान्त (Marginal productivity theory of wages) है अर्थात मजदूरी सीमा त उत्पादन के बराबर होती है।" अब यदि हम अल्पकाल मे दी गई व्यवस्था साधन और तकनीक को मान ले, तो जैसे ही रोजगार बढेगा सीमा त उत्पादन (पृ० 17) कम हो जायेगा। ऐसा ह्रासमान सीमांत उत्पादकता (diminishing marginal productivity) नियम के कारण होता है। अत मजदूरी दर और रोजगार अद्वितीय रूप से एक दूसरे से सबन्धित है। सतुलन अवस्थाओ म रोजगार मे वृद्धि से असल मजदूरी दरें कम हो जायेंगी।[2]

इस बात पर केन्ज ने बहुत बल दिया है। उन्होने मजदूरी के सीमात उत्पादकता सिद्धात को स्वीकार किया। यदि उद्योग मे ह्रासमान प्रतिफल (decreasing returns) (बढती हुई सीमात लागत) का नियम लागू हो रहा है, तो जब रोजगार म वृद्धि होगी, तो (अल्पकालीन अवस्था मे) मजदूरी दरें अवश्य ही गिर जायेंगी।[3]

---

[1] – इकनामिक जनल (Economic Journal) सितम्बर 1937, पृ० 405।

[2] —केन्ज ने यह मानने से कुछ उतावलापन दिखाया कि आधुनिक उद्योग सदैव बढती हुई सीमान्त लागत की अवस्थाओं में काय करता है। (देखिये मेरी पुस्तक मानिटरी थ्योरी ऐण्ड फिस्कल पालिसी, मैक्ग्राहिल बुक क० न० 1949, पृ० 107 110)। तब भी यह ध्यान में रखना चाहिये कि वहा पर दी गई समालोचना किसी भी प्रकार से केन्ज के मूल सिद्धात को गलत नहीं ठहराती। वह सिद्धात इस प्रकार है कि सस्थापक सिद्धात यह स्पष्ट कर सकता है कि किस प्रकार उपज, श्रम प्रतिफल (return to labour) आदि उपादानों में बट जाती है। यह आपको सूचित कर देगा कि रोजगार के किस परिमाण में असल मजदूरी दर क्या होगी, परन्तु यह रोजगार के परिमाण को स्पष्ट नहीं कर पाता।

[3] —केन्ज के सीमात लागत वक्र के सबध में विचारों पर मैंने अपनी पुस्तक, मानिटरी थ्योरी ऐण्ड फिस्कल पालिसी के सातवें अध्याय में समालोचनात्मक ढग से विचार किया है। इस पुस्तक का 11वा अध्याय भी देखिये।

उपर्युक्त सबन्ध इस परिणाम की ओर सकेत करते प्रतीत होते हैं कि बेरोजगारी इसलिए होती है कि श्रमिक "उस मजदूरी (*reward*) को स्वीकार नहीं करते जो उनकी सीमात उत्पादकता के अनुरूप होती है।" (पृ० 16)। केन्ज ने इसे स्वीकार नहीं किया। इसके स्थान पर उनका कथन यह था कि अपर्याप्त समस्त माग ही बेरोजगारी का कारण है। यदि रोजगार का स्तर दिया हुआ हो, तो सीमात उपज और इसलिए असल मजदूरी भी अनोखे ढग से (यदि व्यवस्था की दी हुई स्थिति साधन और तकनीक स्वीकार कर ली जाये) निर्धारित होती है। माग रोज़गार को निर्धारित करती है और रोजगार सीमात उपज (अर्थात असल मजदूरी) को निर्धारित करती है, पर इसकी विपरीत स्थिति मे ऐसा नही होता।

अब हम दूसरे सस्थापक आधारतत्व (पृ० 5) पर आते हैं। यह आधारतत्व इस कारण अनावश्यक रूप से धूमिल पड गया है कि केन्ज ने इसको उस मजदूरी से तुष्टिगुण (*अर्थात् असल मजदूरी*) से सबन्ध श्रम की सीमात तुष्टिहीनता (*Marginal disutility of labour*) के रूप मे प्रस्तुत किया है, जो रोजगार की किसी निश्चित मात्रा से जुडी हुई है। केन्ज ने जिस मूल तत्व पर आक्षेप किया, वास्तव मे उसमे दो सीधी-सादी प्रस्थापनाऐं विद्यमान हैं—(1) यदि असल मजदूरी दर, प्रचलित असल मजदूरी से कम कर दी गई, तो श्रमिक रोजगार की नियुक्ति प्रस्ताव को स्वीकार नही करेंगे, (2) असल मजदूरी दरो को कम करने के लिए द्रव्य मजदूरी-दरो मे कटौती करना एक प्रभावपूर्ण साधन है। इन दोनो प्रस्थापनाओ का इस कथन मे समावेश हो गया है कि वर्तमान असल मजदूरी रोजगार की सीमान्त तुष्टिहीनता के बराबर है। केन्ज ने इस आधार तत्व के औचित्य को स्वीकार नही किया (पृ० 5-13)।

यह बात अवश्य स्मरण रखनी चाहिए कि केन्ज का (जैसे अन्य सस्थापको का भी) यह विश्वास था कि असल मजदूरी तथा रोजगार विलोमत किन्तु अनोखे ढग से सबद्ध हैं। यदि इसको ठीक मान लिया जाये, तो इससे यह परिणाम निकलता है कि जब तक बेरोजगार लोग प्रचलित नकद मजदूरी पर नौकरी करने के लिए *तैयार न हो*, चाहे इससे असल मजदूरी दरो मे कटौती ही क्यो न होती हो, तो केन्ज की अपनी ही नीति के अनुसार माग को घटाने बढाने से कोई लाभ न होगा। यदि उद्योग बढती हुई सीमात लागत अवस्थाओ मे कार्य कर रहा है और यदि मजदूर इस बात पर आग्रह करें कि मूल्यो मे प्रत्येक वृद्धि के साथ नकद मजदूरी मे भी तदनुरुप वृद्धि हो, तो बढ़ती हुई माग का एकमात्र प्रभाव यह होगा कि रोजगार मे वृद्धि हुए बिना ही मूल्यो मे स्फीति (inflation) हो जायेगी। यदि प्रचलित असल मजदूरी का तुष्टिगुण, श्रम की सीमात तुष्टिहीनता के ठीक बराबर

है, तो समस्त माग को बढाकर रोजगार मे वृद्धि करना सभव न होगा। इस कारण केन्ज के सिद्धान्त के लिए यह आवश्यक था कि वह इस बात को स्वीकार न करे कि जब भी उपभोक्ता मूल्यो मे वृद्धि हो जायेगी, श्रमिक प्रचलित नकद मजदूरी पर कार्य करना स्वीकार नही करेगे। केन्ज की दृष्टि मे वर्तमान असल मजदूरी सदा ही श्रम की सीमात तुष्टिहीनता के बराबर नही होती। अत यह सभव है कि अतिरिक्त रोजगार को प्रचलित नकद मजदूरी पर प्राप्त करने के लिए श्रमिक तैयार हो जाये, चाहे ऐसा करने से उन्हे अपेक्षाकृत कम असल मजदूरी प्राप्त हो।

केन्ज ने कहा कि श्रमिक (किसी सीमा तक) प्रचलित नकद मजदूरी को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेगे। यदि उस पर अधिक रोजगार प्रदान किया जाता है, यद्यपि बढती हुई सीमात-लागत अवस्थाओ मे, रोजगार मे ऐसी वृद्धियो से कुछ मूल्य बढ जाते हैं तो इस प्रकार असल मजदूरी दरे घट जाती है। उनका ऐसा विश्वास था कि यह एक प्रेक्षणीय एव निर्विवाद तथ्य है और इसके अतिरिक्त वह श्रमिको के दृष्टिकोण से इसका तर्क विरुद्ध अथवा अनुचित नही समझते। उनका यह भी मत था कि श्रमिक नकद मजदूरी दरो मे कटौती को इच्छा से स्वीकार नही करेंगे (पृ० 8-10)।

केन्ज का यह विचार था कि दूसरे सस्थापित आधारतत्व का दूसरा भाग (अर्थात् यह कि मजदूरो द्वारा नकद मजदूरी मे कटौती की स्वीकृति, असल मजदूरी दरो को कम करने का प्रभावपूर्ण साधन सिद्ध होगी) अपेक्षाकृत अधिक आधारभूत सिद्धान्त है। इस कथन को उन्होने इस आधार पर स्वीकार न किया कि मजदूरो की नकद आय प्रधानतया उपभोक्ता माल की कुल माग को नियन्त्रित करती है। अत यदि नकद मजदूरी दरें (श्रम बाजार मे निष्ठुर प्रतियोगिता के कारण) वह और गिर जाये, तो माल के लिये द्रव्य-माग का कार्य (और इसलिये श्रम के लिये माग का कार्य) भी गिर जायेगा।

इसलिये उनका यह विचार था कि रोजगार बढाने के लिये मजदूरी दरो मे घटा-बढी कोई प्रभावपूर्ण ढग नही है। माग की घटा-बढी की नीति कही अधिक प्रभावी है। रोजगार को पर्याप्त स्थिर नकद मजदूरी दरो से बढाया जा सकता है और परिणाम स्वरूप असल मजदूरी दरें (बढती हुई सीमात लागत की अवस्थाओ मे) उस स्तर तक गिर जायेंगी जो रोजगार के बढे हुए परिमाण के अनुरूप हो। अत असल मजदूरी मे कटौती करने से रोजगार मे वृद्धि नही होती। बल्कि वास्तविक स्थिति तो ठीक इसके विपरीत है—असल मजदूरी दर तो इसलिये गिर जाती है क्योकि माग मे वृद्धि के होने से रोजगार मे भी वृद्धि हो जाती है। मजदूरी के मोलभाव (wages bargain) से असल मजदूरी दरें निर्धारित नही होती, इस ढग से तो केवल नकद मजदूरी ही निर्धारित होती है। "ऐसा कोई कार्य-साधक (expedient) विद्यमान होता प्रतीत

नही होता, जिससे समग्र रूप मे श्रमिक उद्यमकर्त्ताओ (entrepreneurs) के साथ संशोधित नकद सौदे (money bargains) करके असल मजदूरी को किसी निश्चित सख्या तक घटा सकें" (पृ 13)। असल मजदूरी के स्तर को तो समस्त माग और रोजगार को निर्धारित करने वाली अन्य शक्तिया निर्धारित करती है। सस्थापक अर्थशास्त्र ने ठीक ढग से उन शक्तियों का स्पष्टीकरण किया है, जो यह निर्धारित करती हैं कि दी हुई निपज और रोजगार की स्थिति मे उपज किस प्रकार उपादानो मे विभाजित हो जाती है।

पीगू के इस समीकरण[1] $N = \frac{qY}{W}$ पर विचार कीजिये, जिसमे N रोजगार को प्रदर्शित करता है, q राष्ट्रीय आय के उस भाग को प्रदर्शित करता है जिसे मजदूरी और वेतन के रूप मे उपार्जित किया जाता है, Y राष्ट्रीय आय को (जो सतुलन की अवस्था मे निपज की समस्त माग के बराबर होती है), और W नकद मजदूरी दर को प्रदर्शित करते हैं। अब केन्ज द्वारा किये गये विश्लेषण के उस भाग का सार (यदि इसे पीगू के समीकरण पर लागू किया जाये) यह है कि यदि W मे कटौती की जाये, तो Y भी लगभग उसी अनुपात से गिर जायेगा इसका N पर भी कोई प्रभाव न पडेगा, जबतक कि q मे परिवर्तन न हो (उदाहरणार्थ नकद मजदूरी मे गिरावट के कारण अन्य उपादानो के स्थान पर श्रम के प्रतिस्थापन के प्रभाव की अवस्था मे)।

इससे स्पष्ट है कि केन्ज किसी ठीक परिणाम पर नही पहुँच पाये और बाद मे उन्होंने उस सारी जटिल समस्या पर 11वे अध्याय मे पुन विचार किया। तब भी दूसरे अध्याय मे दिया गया विश्लेषण इस तथ्य पर अवश्य बल देता है कि मजदूरी मे कटौती का प्रभाव प्रधानत समस्त माग को कम करना है, जिससे अपनी उच्चतम स्थिति म रोजगार पर सब कछ होते हुए अपेक्षाकृत कोई प्रभाव न पडेगा, पर जैसा हमे आगे पता चलेगा, इस कथन का विस्तृत अध्ययन तथा इसे मान्यता देने की आवश्यकता है।

एक आरेख (diagram) सम्भवत इस विलेपण को स्पष्ट कर सके। जैसा कि चित्र न० 1 मे दिखाया गया है, N (अर्थात् रोजगार को) पडी रेखा (horizontal axis) पर मापा जाता है, जबकि W (अर्थात् नकद मजदूरी दर को) खडी रेखा (vertical axis) पर मापा जाता है। L श्रम का माग कार्य है, वह चक्र है जो N के W से कार्यात्मक सवध को सूचित करता है।

अब, जैसे-जैसे समस्त माग Y बढती या घटती है, वैसे ही वैसे ϕL (अर्थात्,

---

[1]—ए. सी. पीगू, ऐजण्डा (Agenda) अगस्त 1944।

श्रम के लिये द्रव्य-मान कार्य) स्पष्टतः ऊपर अथवा नीचे चला जायेगा। इसलिये यदि W में कटौती से Y भी उसी अनुपात में गिर जाये, तो N स्थिर रहेगा। चित्र न० 1 के ही अनुसार, W_1 से W_2 तक की मजदूरी में कटौती से Y_1 से लेकर Y_2 तक के वक्र δL में समानुपात गिरावट आ जायगी। इसी कारण Na पर N अपरिवर्तित रह जायगा। किन्तु यह तभी सम्भव है जब W में परिवर्तन से Y में भी उसी अनुपात में परिवर्तन आ जावें और q में कोई परिवर्तन न हो। वास्तव में भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में क्या घटित होगा, यह एक अत्यन्त जटिल समस्या है और हमें इसके सबंध में 10वें अध्याय में बहुत-कुछ कहना होगा।
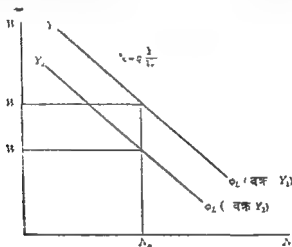
चित्र न० 1 मजदूरी दरें और रोजगार

प्रभावी (Effective) माग का सिद्धान्त

केन्ज़ की युग प्रवर्तक पुस्तक, जनरल थ्योरी का तीसरा अध्याय अत्यन्त महत्व पूर्ण है। इस अध्याय का विशेष महत्व इसलिये है कि इसमें अनेक असफलताओं के पश्चात् "से" के बाजार नियम पर अनतोगत्वा प्रभावशाली प्रहार किया गया है। किन्तु यदि निश्चल की समस्त माग के पीछे उपादानों को एक नवीन दृष्टिकोण से देखने का विकास न हुआ होता तो यह अध्याय लिखा ही नहीं जा सकता था। समस्या को समझने के इस नवीन दृष्टिकोण को विकसल (Wicksell) (1898), तुगन-बरना-वस्की (Tugan-Baranwsky) (1901), और स्पीथॉफ (Spiethoff) (1902) ने जन्म दिया।[1]

---

[1]—देखिये मेरा पुस्तक, [illegible] का दूसरा भाग।

समस्त माग की समस्या के समाधान के लिये मूल रूप से दो उपागम हैं—MV उपागम और I+C उपागम ।[1] दोनो मे जो मूलभूत भिन्नता है, उसे सक्षेप मे इस प्रकार कहा जा सकता है—MV उपागम, स्वतन्त्र रूप से निर्धारित सघटक मागों (Component parts) के समूह रूप मे न मानकर माग को विश्व मात्रा (global quantity) के रूप मे मानती है । यदि MV मौद्रिक माग की निश्चित मात्रा दी हुई हो, तो जिस प्रकार की वस्तुएँ खरीदी जायेगी, वे केवल सापेक्षिक तुष्टियो (relative utilities) और विभिन्न प्रकार के माल के मूल्यो पर आश्रित होगी । यदि एक वस्तु की आवश्यकता नही है, तो दूसरी की हो जायेगी । एक सुनम्य मूल्य एव मजदूरी प्रथा मे, उस अवस्था मे उत्पन्न किए हुए माल मे स्वत ही अपना बाजार ढूढने की प्रवृत्ति होगी । यह भी बात ध्यान मे रहे कि MV के परिमाण (**magnitude**) को पर्याप्त बाजार के निश्चयात्मक प्राप्ति या साधनो का पूर्ण उपयोग की दृष्टि से महत्वपूर्ण नही माना जाता । MV के परिमाण का महत्व तो इसी मे है कि वह नकद मजदूरी दरो और मूल्यो के स्तर को निर्धारित करता है । जो लोग इस समस्या को MV के चश्मे द्वारा ही देखने के अभ्यस्त हो गये है, उनके लिये अपर्याप्त समस्त माग की किसी भी समस्या की कल्पना करना अत्यन्त कठिन है ।

I+C उपागम इस बात पर बल देती है कि वह समाज, जिसमे अचल पूँजी की बडी बडी राशियो का उपयोग होता है (आधुनिक समाज मे स्टाक-पूँजी वार्षिक निपज का लगभग तीन गुणा होती है), मूल रूप मे भिन्न सिद्धान्तो पर कार्य करता है । ऐसे समाज मे उपभोक्ता माल को उत्पन्न करने के लिये श्रम का (यद्यपि इसमे साधारण हाथ के औजारो को काम मे लाया जाता है) सीधा उपयोग होता है । पूँजीवादी समाज मे, माग को दो बिल्कुल विभिन्न प्रकार की उपजों की ओर निर्दिष्ट कर दिया जाता है—(1) उपभोक्ता माल, और (2) निवेश माल । निवेश माल की माँग को निर्धारित करने वाले तत्व, उपभोक्ता माल की माग निर्धारित करने वाले तत्वो से बहुत भिन्न होते हैं । उपभोक्ता माल की माग को मुख्यत उपभोक्ताओ की क्रय-शक्ति (अर्थात् आय) पर आधारित है, जबकि निवेश माल की माग लाभ प्राप्ति की प्रत्याशाओ पर आधारित है, यह माग कम भी हो सकती है, चाहे उसके क्रय की प्रचुर निधि भी उपलब्ध हो । दूसरी ओर, चाहे निधि इस समय कम भी हो,

---

[1]—MV का अर्थ है परिमाण सिद्धान्त की उपागम (Quantity theory approach), जो M नामक परिमाण और V नामक द्रव्य के वेग पर बल देती है । I+C का आय-व्यय की उपागम, जो I नामक निवेश परिव्यय और C नामक उपभोग परिव्यय के कार्यों पर बल देती है ।

यदि प्रत्याशाएँ निवेश के लिये अनुकूल है, तो लोचदार द्रव्य (elastic money) और साख पद्धति वाले समाज मे क्रय के साधन शीघ्र ही उपलब्ध किये जा सकते हैं। विक्सल ने इस तथ्य को इन शब्दो मे व्यक्त किया है—"द्रव्य की प्रचुरता या दुलभता, और विशेषकर बैंको म उपलब्ध नकदी की मात्रा की महत्ता तो केवल अब गौण रह गई है। [1]

आय का विश्लेषण करने के उद्देश्य से समस्त माग के निवेश परिव्यय और उपभोग परिव्यय मे विभाजन विचारा मे एक क्रान्ति का निरूपण करता है। विक्सल द्वारा किये गये निवेश माग के विश्लेषण का केन्ज ने अपनी पद्धति मे समावेश ही नही किया, किन्तु उन्होने एक और महत्वपूर्ण तत्व, अर्थात् ब्याज दर के निर्धारण मे नकदी तरजीह के काय को उसमे और जोड दिया।

केन्ज की सबसे प्रसिद्ध देन उनका उपभोग कार्य है। उन्होने यह तर्क दिया कि उपभोक्ताओ की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियाँ और समुदाय के सस्थानिक व्यवहार प्रतिरूप (institutional behaviour patterns of the community) (विशेषकर व्यावसायिक फार्मों के) इस प्रकार के होते है कि (१) आय का कुछ भाग (अत्यन्त निम्न स्तरो को छोडकर) बच जाता है और (२) असल आय के किसी निवल योग (**net addition**) मे से वृद्धि का कुछ अश बच जाता है। तदनुसार समुदाय के व्यवहार प्रतिरूप ऐसे होत है कि इन दो—वह राशि जो समुदाय उपभोग करना चाहता है और वह निपज जो समुदाय उत्पन्न करने मे समर्थ है, के बीच अतर विद्यमान रहता है और जैसे जैसे असल आय मे वृद्धि होती जाती है यह अन्तर निरपेक्ष रूप मे बढता जाता है। यदि उपभोग का आय से कार्यात्मक सबध दिया हुआ हो, तो किस परिमाण म प्रणाली अपनी सभाव्य निपज के लिए बाजार प्राप्त कर सकती है, यह निवेश की उस मात्रा पर आश्रित है, जो निवेश व्यय को नियत्रित करने वाले विशेष उपादानो द्वारा निर्धारित होती है।

यह विश्लेषण "से' के बाजार नियम पर मूलभूत आक्षेप है। निस्सदेह एपटेलियन ने यह कहा था कि उपभोग (ह्रासमान सीमात तुष्टिगुण नियम (Law of diminishing marginal utilities) के कारण) निपज से निरपेक्ष रूप मे कम बढता है, और *जे० एम० क्लार्क ने सामान्य ज्ञान एव अवलोकन पर आधारित* अपने निष्कर्षों मे इस सम्बन्ध की सुनिश्चित एव स्पष्ट व्याख्या की थी। किन्तु दोनो ही

[1]—नट विक्सल (**Knut Wicksell**), इन्टरेस्ट ऐण्ड प्राइसेज, द मेकमिलन कं०, 1936, पृ० 167।

अपनी बातो को प्रत्ययात्मक ढग से स्पष्ट करने मे असफल रहे। केन्ज प्रधाननया इस कारण गहरा प्रभाव डाल सके कि उन्होने, आय और रोजगार के एक सामान्य सिद्धात को प्रतिपादित करने के लिये, विश्लेषण के इस नये साधन, अर्थात् उपभोग कार्य को, अन्य सबद्ध कार्यों से जोड दिया।

केन्ज के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि "से" के बाजार नियम मे वास्तविक दोष यह है कि यह असदिग्ध प्रस्थापना (**Indubitable** proposition) अर्थात् कि आय सब उत्पादक उपादानो द्वारा पैदा की हुई निपज की बिक्री से उत्पन्न होती है (पृ 20) और इस अमान्य (invalid) प्रस्थापना (अर्थात् यह कि इस कारण निपज की सारी लागत आवश्यक रूप से बिक्री से प्राप्त हो जायेगी) से भ्रान्ति उत्पन्न कर देता है। दूसरी प्रस्थापना भी भूल से पहली प्रस्थापना से प्राप्त कर ली गई है। वर्तमान आय निस्सदेह वर्तमान बिक्री से प्राप्त होती है और सभी प्रकार की लागत (जिसमे सामान्य लाभ भी सम्मिलित है) को पाटने के लिये वर्तमान उपज पर्याप्त बिक्री की इस आशसा से हाथ मे ली जाती है कि बिक्री आय सब प्रकार की लागत को पूरा कर देगी। किन्तु बिक्री आगम उपभोक्ता माल की और निवेश माल की मागो के योग से निर्धारित होती है। समस्त माग I+C, समस्त सभरण मूल्य (निपज की समस्त लागत) के बराबर भी नही हो सकती है। इसके कारण ये हैं—(1) जबकि वास्तव मे उपभोक्ता माग मुख्यतया वर्तमान आय का कार्य है यह उतनी ही नही बढती जितनी कि आय, और (2) निवेश माल की माग मुख्यत उन उपादानो (औद्योगिक (technological) विकास आदि) से निर्धारित होती है जिनका वर्तमान आय से सबध नही होता। उद्यम-कर्त्ताओ का अपनी बिक्री-आशसाओ को वर्तमान माग पर आधारित करना स्वाभाविक ही है। अत वे केवल इतनी बिक्री की प्रत्याशा करते हैं, जो निपज की समस्त लागत के बराबर हो पर यह आशसा उन बहिर्जात (exogenous) उपादानो के कारण झूठी सिद्ध हो सकती है, जो निवेश माल की माग को स्वतत्र रूप से निर्धारित करते हैं।[1]

---

[1]—सम्भवत यह कहा जा सकता है कि स्वत प्रेरित और प्रेरित (induced) निवेश के बीच जो पारस्परिक अतर है, वह केवल कृत्रिम द्विभाजन (dichotomy) है, पर वास्तव में स्थिति तो यह है कि अन्तत आय में वृद्धि से सम्बन्ध सभी निवेश, मूल रूप से आशसाओं से जुडा हुआ है। इसमें कोई सदेह नहीं कि सारा उत्पादन उपभोग के लिये किया जाता है और निवेश का उपभोक्ता माल प्रदान करने के अतिरिक्त अन्य कोई प्रयोजन नहीं है। इसलिये सम्पूर्ण निवेश बढती हुई अमल आय का एक कार्य माना जाता है। इस दृष्टिकोण से देखा जाये

किसी प्रगतिशील समाज की बढी हुई आवश्यकताओ से सबद्ध बढी हुई स्टाक पंजी निम्नलिखित बातो से निर्धारित की जाती है—(1)उस तकनीक के विकास से, जो उत्पादन कारको के तकनीकी के गुणाको (*technical coefficients*)[1] और प्रति-कर्मचारी उत्पादकता को प्रभावित करती है, और (2) श्रमशक्ति मे विकास से यदि उपभोग कार्य दिया हो, तो इस प्रकार से निर्धारित निवेश माल की माग पूर्ण रोजगार दिलाने मे शायद समर्थ न हो सक। उपभोग निर्धारक तथा निवेश निर्धारक इस ढग से अन्त सम्बद्ध नही होते जिससे प्रर्याप्त समस्त माग इस प्रकार निश्चित हो जाये कि बिक्री आगम अवश्य ही बढती हुई पूर्ण रोजगार निपज की समस्त लागत के बराबर होने की प्रवृत्ति रखे।

सबधित अनुसूचियां इस प्रकार है—(1) समस्त सभरण मूल्य की निपज से सम्बन्धित अनुसूची और (2) बिक्री आगम की निपज से सम्बन्धित अनुसूची। पहली को समस्त सभरण अनुसूची और दूसरी को समस्त माग अनुसूची कहा जा सकता है। इन दो अनुसूचियो का प्रतिच्छेद निपज की उस निश्चित मात्रा को निर्धारित करेगा, जिस पर बिक्री आगम समस्त लागत के बराबर होती है। किन्तु यह पूर्ण रोजगार-निपज नही भी हो सकती है।

समस्त माग की अनुसूची मे प्रत्येक बिन्दु पर, D (अर्थात् कुल माग) मे D_1 (उपभोग माल की माग) और D_2 (निवेश माल की माग) नामक दो अवयवो (elements) से मिलकर बनती है। जैसा हम ऊपर देख ही चुके हैं कि केन्ज ने D_1 अवयव के लिये इस परिकल्पना को स्थापित किया कि उपभोग (वास्तविक शब्दो मे) असल आय का कार्य है। पर क्योकि अल्पकाल मे (यदि व्यवस्था, साधन और तकनीक की अवस्था दी हुई हो) असल आय (या निपज) रोजगार के परिमाण के साथ बदलती रहेगी, इसलिये यह भी कहा जा सकता है कि उपभोग रोजगार का एक कार्य है। उपभोग परिव्यय के रोजगार से सम्बन्धित इस कार्य (अनुसूची या वक्र) को उन्होने $\times(N)$ का नाम दिया है। समस्त माग के D_2 भाग पर शीघ्र ही विचार किया जायेगा।

तो यह परिणाम निकलेगा कि समस्त माग का I+C में विभाजन अपेक्षाकृत कम महत्व इसलिये रखता है कि I का C से अधिक निकट सम्बन्ध है। लेकिन फिर भी ऐसा मानने का कोई कारण प्रतीत नही होता कि निवेश माग कार्य और उपभोग माग कार्य आवश्यक रूप से इतने हों कि निवेश माल और उपभोक्ता, माल की सीमान्त-क्रय प्रवृत्तियों का योगफल इकाई (unity) हो। वास्तव में, केन्जवादी विश्लेषण तो बिल्कुल भिन्न निष्कर्ष की ओर ले जाता है।

[1]—उत्पादन की दी हुई तकनीकी अवस्थाओं में, निश्चित माल या पदार्थ को किसी भी दी हुई मात्रा को उत्पन्न करने के लिये, "तकनीकी गुणाकों" का निर्देश विभिन्न कारकों की मात्राओं के लिये हुआ है।

केन्ज ने उस बिक्री आगम अनुसूची को जो विभिन्न मात्रा मे श्रम लगाकर निपज के उत्पादन की लागत (अर्थात् सामान्य लाभ सहित सभी उपादानो का भुगतान) को पूरा करने के लिये अपेक्षित है Z नाम से पुकारा जाता है। सारणी न० 1 वह दृष्टान्त सारिणी है, जो O (निपज) और N (रोजगार) की विभिन्न मात्राओ के लिये Z की सख्यात्मक मूल्यो को प्रदर्शित करती है। N कर्मचारियो को काम पर लगाकर Z निपज का समस्त सभरण मूल्य है। इस प्रकार Z=N है।

सारणी न० 1

Z निपज का समस्त सभरण मूल्य *अचल-मूल्य डालरो* मे अरबो मे	O *निपज* आधार वर्ष=100	N नौकर रखे हुए *कर्मचारियो की सख्या* लाखो मे
300	100	600
270	90	540
240	80	500
200	67	400

इस प्रकार हमने देखा कि उपभोग, असल आय अर्थात् निपज O का कार्य है, और इसलिये किसी दी हुई किसी निपज से सबद्ध रोजगार का भी कार्य है। अत $D_1=x(N)$। किसी निश्चित उपज O और उससे सबद्ध रोजगार N को प्राप्त करने के लिये, समस्त माग, D (अर्थात D_1+D_2 जिसमे D_1 उपभोग के लिये और D_2 निवेश परिव्यय के लिये प्रयुक्त हुए हैं) को इतना पर्याप्त होना पडेगा कि जिससे बिक्री आगम निपज की लागत को पूरा कर सके। अत O (और N) के प्रत्येक स्तर पर D_1+D_2 अवश्य ही Z के बराबर होगे। इस प्रकार यदि, $Z=\phi(N)$ और $D_1=x(N)$, ये दो अवस्थाए दी हो, तो यह परिणाम निकलेगा कि निपज O और रोजगार N के प्रत्येक स्तर को प्राप्त करने के लिये D_2 की जो विभिन्न मात्राएँ अपेक्षित हैं, वे अनुसूचिका मे प्रत्येक विन्दु पर Z और D_1 के बीच का अन्तर है। इसलिये $D_2=\phi(N)-x(N)$। चित्र न० 2 मे, निपज और रोजगार के प्रत्येक स्तर के लिये

निवेश D_2 की जो मात्रा अपेक्षित है, वह वक्र ϕ और वक्र के बीच x का अंतर होता है।
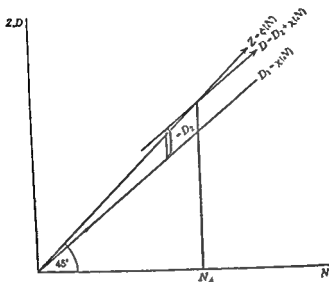
चित्र न० 2 समस्त मांग व सभरण। टिप्पणी—समस्त मांग कार्य $D_2 + x(N)$ और समस्त सभरण कार्य ϕ (N) के प्रतिच्छेदन से प्राप्त रोजगार (N_A) निर्धारित होगा।

अतः निपज और रोजगार के प्रत्येक प्राप्त स्तर के लिये $D_1 + D_2 = D = Z$ अब यह परिणाम निकला कि D_2 मुख्यतः बहिर्जात उपादानों (औद्योगिक और जनसंख्या) का कार्य है और O और N से निर्धारित नहीं होता, और क्योंकि D_2, N द्वारा निर्धारित नहीं होता, इसलिये N से D निर्धारित नहीं होता। यह सत्य है कि जब तक $D = Z$ के न हों, अनुसूचिका Z में प्रतीयमान (virtual) बिन्दुओं की प्राप्ति न होगी, (अर्थात् वे "प्रेक्षण योग्य" बिन्दु बन जायें)। यदि $\phi(N)$ और x (N) कार्य दिये हुए हों, तो यह जानते हैं कि निपज और रोजगार के किसी निश्चित परिमाण को प्राप्त करने के लिये D_2 की कितनी मात्रा अपेक्षित है।

केन्ज भूल करते हैं (पृ 29) जब वे कहते हैं कि $D = \phi N$ है। निस्सदेह D और Z दोनों में ही प्रेक्षण योग्य बिन्दु सदा बराबर रहते हैं, पर यह कहना भूल होगी कि D_1=N का एक कार्य है। N का कार्य Z है, न कि D। अर्थात् $Z = \phi N$, और क्योंकि D_1, N का कार्य है, इसलिये $D_1 = x(N)$। इस प्रकार

$D_2 = \phi(N) - \chi(N)$ हुआ। जब $Z = \phi(N)$ है, तो $D = \phi(N)$ ऐसा ही होगा जैसा कि यह कहना कि समस्त मांग कार्य, समस्त सभरण कार्य के समरूप हैं, अन्य शब्दो मे यह "से" का बाजार नियम ही है। पर वास्तव मे केन्ज का तर्क ठीक इसके विपरीत है। जो वे कहना चाहते हैं, वह बिल्कुल स्पष्ट होना चाहिये और व्याख्या का यह भाग निश्चय ही भ्रान्तिजनक है।

वास्तव मे समस्त माँग कार्य इस प्रकार लिखा जाना चाहिये $D = D_2 + \chi(N)$। यह तो हम देख ही चुके हैं कि D_2 मुख्यत स्वतन्त्र रूप से निर्धारित होता है यद्यपि N मे परिवर्तनो का यह आशिक कार्य है।[1]

ऐसा विश्वास करने का कोई अतर्निहित कारण प्रतीत नही होता कि निवेश परिव्यय और उपभोग परिव्यय का समयोग सदा ही किसी निश्चित निपज की लागत के बराबर होने के ओर प्रवृत्त होगा, यह भी निश्चित नही है कि माग किसी निश्चित सभरण के बराबर होने की ओर प्रवृत हो। इस परिणाम पर पहुँचने का कारण यह है कि $\chi(N)$ अनुसूचिका और $\phi(N)$ अनुसूचिका के बीच जो अतर है, वह निवेश परिव्यय के अपेक्षित परिमाण द्वारा स्वत ही पूरा नही हो जायेगा। निवेश का अधिकतम प्रतिपालनीय परिणाम, अर्थव्यवस्था के विकास के नियमो से निर्धारित किया जाता है। (अर्थात् बढती हुई प्रति व्यक्ति उत्पादकता और बढती हुई श्रम शक्ति वाले किसी प्रगतिशील समाज की औद्योगिकी ढग से निर्धारित पूंजी आवश्यकताओ द्वारा निर्धारित होती है)। आधारभूत रूप से D_2 अर्थात् निवेश माल की माग, औद्योगिकी एव जनसख्या वृद्धि मे परिवर्तनो, और अल्पकाल मे सभी प्रकार की आशसाओ से निर्धारित होती है। यह आवश्यक नही है कि इस प्रकार से निर्धारित निवेश माँग, $\phi(N)$ और $\chi(N)$ के बीच के अतर को पूरा कर देगी। किन्तु सस्थापित सिद्धात के अनुसार "इस क्रिया मे कुछ बल है कि जब रोजगार मे वृद्धि होती है, तो यह D_2 को सदा इतना बढा देती है कि वह Z और D_1 के बीच बढते हुए अतर को पाट सके" (पृ. 30)।

निस्सदेह यह तर्क दिया जा सकता है कि $\chi(N)$ कुछ समय मे उस स्तर तक पहुचने मे प्रवृत्त होगा कि जब पूर्ण रोजगार की अवस्था मे $D_2 + \chi(N)$, Z के बराबर X हो जाये, ऐसी दीर्घकालीन समजन प्रक्रियाओ का अध्ययन अभी अपने

[1]—यह सभव है कि (निम्न—के मुकाबले में) उच्च आय स्तरों पर नई तकनीकों का अधिक उपयोग किया जाये। इन अर्थ में, स्वत प्रेरित निवेश को सभवत आय के स्तर का एक कार्य माना जा सकता है। देखिये इकनॉमिकल जर्नल (**Economical Journal**) के जून 1951 के अक में प्रकाशित हेरड (Harrod) का लेख।

शैशवकाल म है और अभी तक हमे इसके विषय मे बहुत कम ज्ञात है। हम जानते हैं कि दीघकालीन समजन कुछ साकल्पिक (volitional) (भारी कुसमजनो को ठीक करने के हेतु जानबूझकर किये गये सामाजिक सुधार) और कुछ स्वत प्रेरित होते हैं। दीघकालीन स्वत समजनो का ऐतिहासिक अध्ययन कभी भी निर्णायक नही माना जा सकता क्योकि ऐसे समजन सदा ही सचेत समजन प्रक्रियाओ से मिले रहते है। अत यह स्पष्ट है कि द्वितीय विश्व युद्ध के पूव और पश्चात सभी प्रगतिशील लोकतत्रो मे हितकारी राज्या (जो भली भाति और जानबूझकर स्थापित किये गये थे) का विकास आय मे इस प्रकार का पुनर्वितरण ला रहा था जो उपयोग कार्य $x(N)$ को बढान म प्रवृत्त था। यह कि इस गति के अतिरिक्त पूण रोजगार की अवस्था मे $D_2+x(N)$ को Z के बराबर करने की ओर प्रवृत कोई दीर्घकालीन स्वत समजन भी हो रहा था, एक ऐसा विषय है जिसके सम्बन्ध म निश्चित रूप से कुछ भी कहना सभव नही है। जो भी कुछ हो यह हो सकता है कि दीर्घकालीन समजनो के इस क्षेत्र मे केन्जवाद और नवसस्थापित अथशास्त्र के बीच किसी हद तक समाधान सभव हो सके। केन्ज समुदाय के उन व्यवहार प्रकारो (behaviour patterns) (सामाजिक सस्थाओ एव मनोवैज्ञानिक नियमो) पर ध्यान दे रहे थे, जो सापेक्षिक रूप से थाडे समय अर्थात् दस बीस, तीस वर्षों म पर्याप्त स्थिर रहते हैं। उन्होने यह दावा नही किया कि ये व्यवहार प्रकार सदा के लिये स्थिर हो गये हैं और विशेषकर यह कि उन्हे जानबूझकर बदला नही जा सकता। दीघकालीन समजन प्रक्रियाओ (जिसम सचेत और विशुद्ध रूप से स्वत प्रेरित दोनो सम्मिलित है) के क्षेत्र का अथशास्त्रियो द्वारा पहले की अपेक्षा और अधिक अध्ययन किया जाना चाहिये।

अब सपूण विषय का सार यह है कि 'से" का बाजार नियम इसलिये मान्य नही हो सकता कि वास्तव म उपभोग निपज या असल आय (अर्थात् उपभोग की सीमान्त प्रवत्ति[1] $\frac{\Delta C}{\Delta Y}$ इकाई से कम है) से निरपेक्ष रूप से कम बढ़ती है, और यह बढता हुआ अतर उस निवेश द्वारा भरा भी जा सकता है और नही भी, जो उन उपादानो की प्रचलित दोक्ति (औद्योगिकी एव जनसख्या वृद्धि पर) आश्रित है जो निवेश परिव्यय के परिमाण को निर्धारित करत है।

---

[1]—यहा हम कुछ आगे बढ़ कर यह मान लेते है कि क्योकि रोजगार N और (निपज, या असल आय) अल्पकाल में एक साथ घट बढ़ सकते हैं इसलिये कार्यात्मक सबध $(D_1=x(N))$ को $C=C(Y)$ के रूप में भी व्यक्त किया जा सकता है।
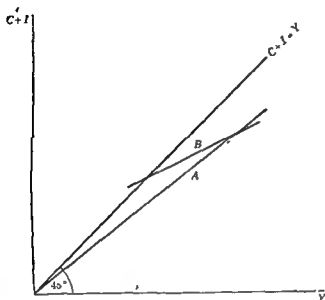
चित्र न० 3 A और B दो उपभोग कार्य

"से" के बाजार नियम को रद्द करने के लिये, उपभोग कार्य का ढलान (अर्थात् सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति का इकाई से अधिक या कम मे होना) निस्सदेह एक आवश्यक स्तम्भ है, पर यह पर्याप्त नही है। इसके अतिरिक्त, यह भी अवश्य जताना चाहिये कि ऐसी परिकल्पना करने का कोई कारण नही है कि मूल्य पद्धति इस ढग से कार्य करेगी जिससे कि निवेश परिव्यय निरपेक्ष रूप से उपभोग और निपज के बीच बढते हुए अतर को भरने के लिये अपने आप ही प्रवृत्त हो।

इस सबध मे इस बात पर बल देना आवश्यक है कि केन्ज ने यह नही कहा कि उपभोग निपज से कम अनुपात मे बढता है। केन्जवादी शर्त की पूर्ति उपभोग कार्य का उद्गम के बिन्दू (जैसे चित्र न० 3 मे वक्र A मे O पर दिखाया गया है) से प्रारभ होने से ही जायेगी। यदि कार्य रेखीय (linear) है तो इसका अर्थ यह होगा कि उपभोग की सीमात प्रवृत्ति सभी आय स्तरो पर औसत उपभोग प्रवृत्ति के बराबर है *यद्यपि वक्र, 45° कोण वक्र से कुछ नीचे स्थित होता है। तब भी केन्ज का यह* विश्वास था (और अनुभव दत्तसामग्री इस मत का समर्थन करने मे प्रवृत्त भी है) कि कार्य का ढलान (जैसा कि चित्र न० 3 के वक्र B मे दिखाया गया है), कम से कम वक्र के विस्तृत क्षेत्र मे तो, वास्तव मे अपेक्षाकृत चौडा है। इस दशा मे, सीमात उपभोग प्रवृत्ति, औसत उपभोग प्रवृत्ति से भिन्न होगी।

तीसरे अध्याय म हम "चिरकालिक" (secular) उपभोग कार्य के ढलान के विषय मे तथा चक्रीय उपभोग काय से उसका क्या सम्बन्ध है इस विषय मे कुछ कहेंगे ।[1]

1—केन्ज एक और भूल कर बैठे । यह पृ० 31 पर एक छोटी सी बात है । इसका सबध धनी समुदाय में उपभोग प्रवृत्ति से है । केन्ज उपभोग कार्य के स्तर को कार्य के ढलान से मिला देते हैं । अत्यत निर्धन देश पूर्ण रोजगार आय का भी बहुत थोडा प्रतिशत बचाने (और धन लगाने) में समथ है, बचत की औसत प्रवृत्ति बहुत कम है । धनी (औद्योगिक रूप से विकसित) देश पूर्ण रोजगार आय की एक बडी प्रतिशत बचाने और धन लगाने में समर्थ है, बचत की औसत प्रवृत्ति अपेक्षाकृत ऊँची है । पर इससे अनिवायत यह परिणाम नहीं निकलता कि धनी देशों में सीमात उपभोग प्रवृत्ति निर्धन देशों की अपेक्षा कम है । निस्स देह यह तभी तक सभव है, जब तक कि कार्य रेखीय न हों और मूल बिन्दु से प्रारम्भ नहीं होते । ऐसी स्थिति हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती । यहा पर केन्ज पर्याप्त रूप से सावधान न थे जैसा अन्य स्थानों पर है) जब उन्होंने उपभोग की औसत और सीमात प्रवृत्ति के बीच अतर स्थापित किया ।

है)। दूसरे शब्दो मे B नामक वक्र यह सूचित करता है कि यदि नकद मजदूरी दरें स्थिर रहती तो राष्ट्रीय आय के द्रव्य मूल्य मे क्या परिवर्तन होता। यदि नकद मजदूरी दर स्थिर हो तो डालरो के रूप मे दी गई राष्ट्रीय आय स्थिर रहती जब तक कि ये परिवर्तन घटित न होते—(1) रोजगार N मे या (2) आय के उस अनुपात मे जो मजदूरी और वेतन अर्थात q मे भुगतान किया गया, या दोनो मे। यदि मजदूरी और वेतन के रूप मे प्राप्त हुई कुल आय के प्रतिशत मे कोई परिवर्तन न माना जाये (प्राय q लगभग 65 प्रतिशत के आसपास रहता है, और साथ ही मजदूरी दरो को स्थिर माना जाये तो कुल राष्ट्रीय आय मे परिवर्तन वक्र

चित्र न० 5 $\frac{Y}{W}$ = रोजगार। टिप्पणी—यहा मजदूरा आय की समस्त द्रव्य आय का सतत अश माना गया है।

N मे दिखाये गये रोजगार मे परिवर्तनो को सूचित करेगा। सक्षप मे यदि Y q और W ज्ञात हो तो N को $WN = qY$, अथवा $N = q\frac{Y}{W}$ नामक समीकरण से प्राप्त किया जा सकता है।

अत मूल्य परिवर्तनो को ठीक करके अपस्फीत राष्ट्रीय आय के आकडे निपज मे (अर्थात असल आय) परिवनन दर्शायेंगे। परन्तु मजदूरी दरो मे परिवर्तनो को ठीक करने से अपस्फीत राष्ट्रीय आय के आकडे रोजगार मे परिवर्तन को दिखलायेंगे।

केन्ज ने (स्पष्ट व्यक्त करने की दृष्टि) से एक ऐसे अल्पकालीन विश्लेषण को अपनाया जिसमे व्यवस्था, उपकरण तथा तकनीक दिये हुये मान लिये गये हैं। इस आधार पर रोजगार तथा निपज के सन्निकट उच्चावचन होने की आशा की जा सकती

अध्याय 2

सामान्य संकल्पनाएं

1. इकाइयों का विकल्प (The choice of units)
[जनरल थ्योरी, अध्याय 4]

जनरल थ्योरी पुस्तक का दूसरा भाग चक्करदार मार्ग (detour) के समान है। प्रथम भाग मे जो विवेचन प्रारम्भ किया गया था, उसे यहां बीच मे ही रोक दिया गया है और फिर जाकर तीसरे भाग मे पुनरारम्भ किया गया है। मध्यवर्ती अध्याय 4 से 7 मे प्रारम्भिक परिभाषाएं और सकल्पनाएं ही दी गई हैं, जिन्हे वैज्ञानिक दृष्टि से अच्छा होता यदि पुस्तक के प्रारम्भ मे दिया गया होता। किन्तु केन्ज पाठक को पहिले ही से बतला देना चाहते थे कि क्या आने वाला है।

अत उन्होने आने वाले विवेचन मे प्रयुक्त उन सकल्पनाओ और पारिभाषिक शब्दो (terms) के बारे मे शुष्क और अपेक्षाकृत अरुचिकर विचार को दूसरे भाग तक स्थगित रखा। लेकिन आशसाओं और गतिशीलता (expectations and dynamics) से सबद्ध अकेला पाचवा अध्याय निश्चय ही असामान्यतया रुचिकर एव महत्वपूर्ण है।

वे 'इकाइयो के विकल्प' नामक अध्याय से प्रारभ करते है। वास्तव मे सभी आधुनिक आर्थिक व्यवस्थाओ मे, बाजार मे मुद्रा इकाई (Monetary Unit) को माप-मान समझा जाता है। किन्तु आर्थिक विश्लेषण मे मुद्रा इकाई से काम नही चलेगा। और इसका कारण यह है (जिसे अर्थशास्त्र विज्ञान के प्रारम्भिक व्यक्तियो ने भी पूर्णतया स्वीकार किया है) आर्थिक विश्लेषण, चरो (variables) के बीच कार्यात्मक सबन्ध स्थापित करके आगे बढ़ता है। यदि अब द्राव्यिक मूल्यो मे दी गई अनुभवाश्रित दत्तसामग्री उस अवधि पर लागू होती है, जिसमे द्रव्य-मूल्य या प्रतिलोमत. मूल्य का स्तर पर्याप्त मात्रा मे बदल गया हो, तो सवद्ध चरो मे कृत्रिम सम्बन्ध दृष्टिगोचर होंगे। यह इसलिये सत्य है क्योंकि यदि सारे मूल्य दुगुने हो जाएँ (द्रव्य मूल्य दो भागो मे बट जायें), तो इन दोनो मे से केवल एक चीज घटित होगी।

1—संक्रमण म चरो के बीच एक ऐसा पश्चायित समजन प्रतीत होगा जो चरो के 'वास्तविक सामान्य सम्बन्ध को विकृत करता है, उदाहरणार्थ उपभोक्ता मूल्य की गति के पीछे मजदूरी की पश्चता,

2—उसी अनुपात म समस्त चर (जब यह मान लिया गया हो कि पश्चताओ को निष्प्रभावित कर दिया हो) बदल गये होगे। उदाहरणार्थ यदि द्रव्य के रूप मे आय दुगुनी हो गई है तो उपभोग (द्रव्य के रूप मे) भी दुगुना हो जायेगा। यहा पर पश्चताओ को पूण कर लिया होगा ।

इस लिय आय के साथ उसी अनुपात म उपभोग भी बढ गया होगा। किन्तु ये दोनो वद्धिया माप की इकाई म परिवर्तन के कारण ही हुई है। वास्तविक अर्थ मे न तो आय और न ही उपभोग मे अन्तर आया है। पर जब हम उपभोग के आय से सम्बन्ध पर विश्लेषणात्मक रूप से विचार करते है तो हम यह जानने के उत्सुक होते है, कि जब वास्तविक रूप मे आय बढती है तो उपभोग कैसे बदल जाता है। यदि हम अल्पकालीन पश्चताओ की अपेक्षा कर सकते है तो आय मे विशुद्ध नाममात्र वृद्धियो से उपभोग के आय से सम्बन्ध मे परिवतन लाने की आशा नही की जा सकती, पर असल आय म किसी भी परिवर्तन से उपभोग और आय के सम्बन्ध म परिवर्तन की आशा की जा सकती है।

आर्थिक चरो के बीच कार्यात्मक सबध का कोई अभिप्राय या महत्व नही है, जब तक चरो को वास्तविक अथ मे मापा नही जाता। माप की मुद्रा इकाइया ये काम नही कर पायेंगी। किन्तु दत्तसामग्री को आवश्यक रूप से मुद्रा बनाया गया है। इस लिये यह आवश्यक हो जाता है कि मैद्रिक परिमाणो को वास्तविक राशि मे परिवर्तित किया जाये; दूसरे शब्दो म नाममात्र परिवतनो को सुधारा जाये अर्थात द्राव्यिक परिमाणो को असल परिमाणो म परिवर्तित किया जाये।

इस समस्या के सम्ब ध मे कि कौन सा सर्वोत्तम ढग है, जिसमे आर्थिक मूल्यों को जो द्राव्यिक इकाइयो मे दर्शाए गए है, वास्तविक मूल्या मे परिवर्तित किया जाये, आर्थिक साहित्य मे दा मुख्य दृष्टिकोण पाये जाते हैं। एक मत के अनुयाइयो ने यह सुझाव दिया है कि माप के सम्बन्ध मे द्रव्य की क्रय-शक्ति मे परिवर्तन के कारण नाममात्र मूल्यो अथवा द्राव्यिक मूल्या का सुधार कर लिया जाये। अत माल के मूल्य स्तर मे परिवर्तनो के लिये नाममात्र दत्तसामग्री (दत्तसामग्री से सबद्ध अवधि मे चालू द्रव्य इकाइयो के रूप मे कहा हुआ) को सुधार करके असल राशि परिवर्तित किया जाता है। तब जो डालर उपयोग किये जाते है, वे नाममात्र डालर नही होते, वे 'स्थिर मूल्य' (constant-value) डालर होते हैं।

दूसरे मत के मानने वालो का यह विचार है कि नकद मजदूरी दरो मे परिवर्तनो के लिये नाममात्र अको को ठीक कर के असल मूल्यो को सर्वोत्तम ढग से प्राप्त किया जा सकता है। जब यह हो जायेगा, तो दत्तसामग्री को "स्थिर मजदूरी" डालरो मे वर्णित किया जायेगा।

इन दोनो विधियो मे से जो मुख्य भेद है उसको चित्र सख्या 4 और 5 से स्पष्ट किया जा सकता है।

चित्र सख्या 4 मे A और B दो चार्ट दिये गये हैं। चार्ट A उस राष्ट्रीय आय Y की वृद्धि को जो चालू डालरो के रूप मे मापी गई है और वक्र P को जो मूल्यो की गति को दिखलाता है, दर्शाती है। B चार्ट आय मे उस वृद्धि को दर्शाता है जो स्थिर मूल्य डालरो मे मापा गया है। (अर्थात अपस्फायक (Deflator) के रूप मे मूल्यो के समुचित रूप से सुभारित सूचकाक का प्रयोग करके नाममात्र मूल्य के डालर परिमाणो को सधारा जाता है)। इससे जो वक्र बनता है वह असल आय की
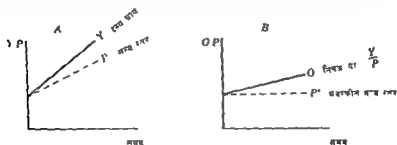
चित्र न० 4 $\frac{Y}{P}$ = निपज अथवा वास्तविक आय

गति अथवा निपज को दर्शाता है। दूसरे शब्दो मे O नामक वक्र यह दिखलाता है कि यदि मूल्य स्थिर होते तो राष्ट्रीय आय क्या होती। यदि P और Y ज्ञात हो तो $PO = Y$ नामक इस समीकरण या $O = \frac{Y}{P}$ से O को प्राप्त किया जा सकता है।

उसी तरह से चित्र सख्या 5 मे भी A और B दो चार्ट दिये गये हैं। पहिले की भाँति A चार्ट राष्ट्रीय आय Y के चालू डालरो मे और साथ मे नकद मजदूरी दरो W की गति को भी दर्शाता है। B चार्ट स्थिर नक्द मजदूरी के रूप मे मापी गई राष्ट्रीय आय को दर्शाता है। (अर्थात् अपस्फायक के रूप मे नक्द मजदूरी दरो के सूचकाक का प्रयोग करके नाममात्र मूल्य के डालर परिमाणो का सुधार किया जाता

है)। दूसरे शब्दो मे B नामक वक्र यह सूचित करता है कि यदि नकद मजदूरी दरें स्थिर रहती तो राष्ट्रीय आय के द्रव्य मूल्य मे क्या परिवर्तन होता। यदि नकद मजदूरी दर स्थिर हो तो डालरो के रूप मे दी गई राष्ट्रीय आय स्थिर रहती जब तक कि ये परिवर्तन घटित न होते—(1) रोजगार N मे या (2) आय के उस अनुपात मे जो मजदूरी और वेतन अर्थात q मे भुगतान किया गया, या दोनो मे। यदि मजदरी और वेतन के रूप मे प्राप्त हुई कुल आय के प्रतिशत मे कोई परिवर्तन न माना जाये (प्राय q लगभग 63 प्रतिशत के आसपास रहता है, और साथ ही मजदूरी दरो को स्थिर माना जाये तो कुल राष्ट्रीय आय मे परिवर्तन वक्र
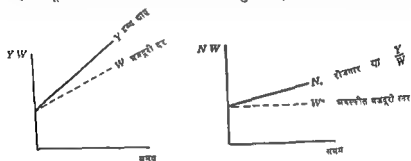
चित्र न० 5 $\frac{Y}{W}$ = रोजगार। टिप्पणी—यहा मजदूरा आय को समस्त द्रव्य आय का सतत अश माना गया है।

N मे दिखाये गये रोजगार मे परिवर्तनो को सूचित करेगा। सक्षप मे यदि Y q और W ज्ञात हो तो N को $WN = qY$, अथवा $N = q\frac{Y}{W}$ नामक समीकरण से प्राप्त किया जा सकता है।

अत मूल्य परिवर्तनो को ठीक करके अपस्फीत राष्ट्रीय आय के आकडे निपज मे (अर्थात असल आय) परिवर्तन दर्शायेंगे। परन्तु मजदूरी दरो मे परिवर्तनो को ठीक करने से अपस्फीत राष्ट्रीय आय के आकडे रोजगार मे परिवर्तन को दिखलायेंगे।

केन्ज ने (स्पष्ट व्यक्त करने की दृष्टि) से एक ऐसे अल्पकालीन विश्लेषण को अपनाया जिसमे व्यवस्था, उपकरण तथा तकनीक दिये हुये मान लिये गये हैं। इस आधार पर रोजगार तथा निपज के सन्निकट उच्चावचन होने की आशा की जा सकती

है, इसी प्रकार से मजदूरी दरें और मूल्य भी सम्भवत. एक होकर सन्निकट रूप से गतिशील होंगे। अत वास्तव मे केन्ज की दृष्टि मे इसमे कोई विशेष अन्तर न होगा चाहे उसमे नाममात्र मुद्रा परिमाणो को मूल्य सूचकाक से अथवा मजदूरी सूचकाक द्वारा ठीक किया जाये। पर यदि अधिक दीर्घकालीन दृष्टिकोण अपनाया जाये तो रोजगार और निपज की गतियो मे पर्याप्त विषमता होने की आशका की जा सकती है। समयोपरि मनुष्य घण्टे की उत्पादकता की प्रवृति के कारण निपज रोजगार की अपेक्षा तेज गति से बढ़ेगी और मजदरी दरो की गति के सापेक्ष मूल्य गिर जायेंगे। अत अधिक दीर्घकालीन दृष्टिकोण से अपस्फायक (Deflator) का विकल्प अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यदि मूल्यों मे परिवर्तन से साकेतिक दत्तसामग्री को ठीक किया जाता है, तो अपस्फीत आकडे निपज मे परिवर्तन प्रदर्शित करेंगे। और यदि मजदूरी-दर-परिवर्तनो के लिए इस प्रकार की उस दत्तसामग्री को ठीक किया जाता है, तो अपस्फीत आकडे रोजगार मे परिवर्तनो को प्रकट करेंगे।

दोनो ही विधिया क्रियाविधि के रूप मे स्वीकार्य हैं जिनसे साकेतिक द्रव्य परिमाणों मे वर्णित दत्तसामग्री को असल राशि मे परिवर्तित किया जा सकता है। पर केन्ज ने अपने अपस्फायक के रूप मे नकद मजदूरी-दर[1] सूचकाक को प्रयोग करने के लिये चुना।

उन्होने यह इस लिये किया क्योकि उनका विश्वास था कि रोजगार और मजदूरी के मापने मे जिन इकाइयो का प्रयोग हुआ है, उन इकाइयो से कम सदिग्ध है, जो निपज और मूल्यो को नापने के लिए बनाये गये हैं। उन्होने सुझाव दिया कि रोजगार को श्रम-इकाइयो के रूप मे मापा जा सकता है। एक 'श्रम इकाई" को एक साधारण या सामान्य मजदूर के एक घटे के काम के बराबर माना जा सकता है। उनका विचार था कि साधारण श्रम के पारिश्रमिक तथा कुशल श्रम के पारिश्रमिक के अनुपात मे एक घण्टे के कुशल श्रम को भारित किया जा सकता है। अत यदि कुशल श्रम को प्रति घण्टे के हिसाब से सामान्य श्रम के अपेक्षा दुगुना पारिश्रमिक दिया जाता है, तो मात्रानुसार एक घण्टे का कुशल श्रम दो श्रम इकाइयो के बराबर माना जा सकता है। इस प्रकार एक श्रम इकाई के लिये जितनी नकद मजदूरी दी जाती है वह मजदूरी इकाई (wage unit) कहलायेगी।

वास्तव मे किसी ऐसे देश के रोजगार के परिमाण को मापने वाली केन्ज की श्रम-इकाई विधि जहा के लोगो मे अत्यधिक विभिन्न प्रकार की कुशलता हो और

---

[1]—केन्ज की 'मजदूरी इकाई' वह नकद मजदूरी दर है, जो एक घटे के सामान्य श्रम के लिये देनी पड़ती है।

जहा व्यवसाय तथा नौकरियो के ढांचे तथा गठन मे वृहत् परिवर्तन हो रहे हो, और जब साथ ही मजदूरी अन्तरो (differentials) मे सरचनात्मक परिवर्तन भी हो रहे हो, सदिग्ध हो सकती है। यह विधि उन विधियो से कोई अधिक सन्तोपजनक नही है, जिन्हे साधारणतया अर्थशास्त्री मूल्यो, निपज, या पूँजी के स्टाक की गतियो को मापने के लिये सूचक अको के निर्माण मे प्रयोग करते हैं। केन्ज ने कारणात्मक विश्लेपण के हेतु इन बाद वाली विधियो को पर्याप्त मात्रा मे परिशुद्ध नही माना है (पृष्ठ 37-39)। किन्तु उनकी युक्तियाँ ऐसी नही हैं जो हृदयग्राही हो सकें। सूचक अको की समस्या के सम्बन्ध मे विस्तृत विवादास्पद और बहुत ही तकनीकी साहित्य विद्यमान है। ये साहित्य और वे विधियाँ जो खोजे गए है, वे अर्थशास्त्र के विषय-सामग्री की अत्यन्त जटिलता को प्रकट करते है। प्रकरण के स्वभाव से ही असदिग्ध साख्यकीय परिणाम नही प्राप्त किये जा सकते। अति विशुद्धिवादी के लिए यह अधिक अच्छा होगा कि वह अर्थशास्त्र के क्षेत्र का अध्ययन न करे, किन्तु इसमे व्यापक मतैक्य है कि विश्लेपणात्मक और व्यवहारिक उद्देश्यो के लिए जो विधियाँ निकाली गई हैं, और जिन परिणामो पर पहुँचा गया है, वे बहुत कुछ सन्तोपजनक हैं। "निपज" "पूँजी स्टाक" तथा "सामान्य मूल्य स्तर" व्यवहार मे लाने योग्य सकल्पनाएँ है, और इनके परिणाम बहुत हद तक मापे भी जा सकते हैं।

केन्ज का विश्लेपण बहुत ठीक सिद्ध हो सकता था यदि वे अपनी मजदूरी इकाई के स्थान पर मूल्य सूचकाक को अपने अपस्फायक के रूप मे अपना लेते। उनके उद्देश्य पूर्ति के लिए तो कोई भी विधि ठीक थी, चाहे स्थिर मूल्य डालरों या स्थिर मजदूरी इकाई डालरो का प्रयोग किया जाये। कोई-सी भी विधि साकेतिक (अर्थात् द्राव्यिक) परिमाणो को अमल राशि मे परिवर्तन के लिये पर्याप्त सतोप-जनक है। आधार-भूत रूप से यह बात अधिक महत्व की नही है। यदि तुलना की जाये तो केन्ज के पाठक स्थिर मजदूरी इकाई डालरो के स्थान पर स्थिर मूल्य डालरो को सम्भवत अधिक अधिमान करते।

2. आशसाएं और गति विज्ञान (जनरल थ्योरी, अध्याय 5)

केन्ज ने यह अनुभव किया कि आशसाओ पर प्रारम्भिक रूप मे विवेचन किये बिना वे अपनी युक्ति को प्रभावपूर्ण ढग से आगे लेकर नही चल सकते थे। वे इस विषय पर बारम्बार लौट आते है।

जनरल थ्योरी पर लिखे गये अपने प्रथम समीक्षा (रिव्यू) लेख (ईकानमिक जर्नल जून 1936) मे जे० आर० हिक्स ने इस प्रसग को विशेष उल्लेख करने के लिये

चुना। उन्होने कहा कि इस पुस्तक की सम्भवतया सबसे अधिक क्रान्तिकारी वस्तु "आशसाग्रो की विधि का उपयोग है।"[1] केन्ज का विश्वास था कि प्रचलित आर्थिक सिद्धान्त प्राय अवास्तविक है। क्योकि इस मे बहुधा एक ऐसी "स्थैतिकावस्था" को मान लिया है "जिसमे वर्तमान को प्रभावित करने वाला कोई परिवर्तनशील भविष्य नही है।"[2]

फिर भी जनरल थ्योरी को सन्तुलन विश्लेषण के रूप मे ढाला गया है। पुस्तक के अधिकाश भाग मे केन्ज ने जो विधि अपनाई है, उसे नि सन्देह तुलनात्मक स्थिरावस्था कहा जा सकता है। किन्तु उनके हाथो मे तुलनात्मक स्थिरावस्था, व्यवहारिक समस्याओ पर एसे ढग से विचार करने की जो वस्तुत गतिशील है एक उपयोगी युक्ति बन जाती है। हिक्स पहले व्यक्ति थे जिन्होने इसे स्पष्ट रूप से देखा। "रिकार्डो, बॉम बावर्क (Bohm-Bawerk) अथवा पैरेटो के सामान्य सतुलन के स्थैतिक या स्थिर सिद्धान्तों के विरुद्ध यह एक विवर्ती सन्तुलन का सिद्धान्त है।"[3] स्थैतिक विश्लेषण मे यदि कुछ प्राचल जैसे रुची, आय आदि दिये हुए मान लिये गये हो तो, दो चरो, उदाहरणार्थ मूल्य और माँगी हुई मात्रा, के बीच एक फलनीय सम्बन्ध मान लिया जाता है। ऊँचे मूल्य पर माँग कम हो जायेगी, किन्तु यह तो विशुद्ध स्थैतिक-विश्लेपण है। यदि आशसाओ मे इस प्रकार परिवर्तन लाया जाये जिससे मूल्य और अधिक बढने की आशा हो जाये तो सम्भवतया माँग बढ जायेगी, और अधिक मूल्य वृद्धियो की प्रत्याशा मे अधिक मोल लिया जायेगा। यह गतिशील स्थिति को प्रदर्शित करती है। यदि दिया हुआ उच्च मूल्य स्थायी मान लिया जाता है, तो स्थैतिक-माँग-अनुसूची ली हुई मात्रा को फिर से नियन्त्रित करेगी। किन्तु यदि आशसा की जाये कि मूल्य बढते ही चले जायेगे तो ऊँचे मूल्य माँग मे वृद्धि करेंगे, अर्थात् प्रत्याशाओ के प्रभाव के कारण स्थैतिक-माँग अनुसूचिकाएँ ऊपर को या दाहिनी ओर हट जायेगी। एक सन्तुलन अवस्था से दूसरी मे परिवर्तन तुलनात्मक स्थिरावस्था की विपय सामग्री है। तुलनात्मक स्थिरावस्था उस विधि का अध्ययन है "जिसमें स्वतन्त्र दत्तसामग्री के रूप मे माने गए प्राचलों मे परिवर्तनो के परिणामस्वरूप हमारी सन्तुलन मात्राएँ बदल जाएँगी"।[4]

---

[1]—जे० आर० हिक्स "मिस्टर केन्सस थ्योरी आव इम्पलायमेन्ट" ईकनॉमिक जर्नल, जून 1936, पृ० 240।

[2]—केन्ज, जनरल थ्योरी, पृ० 145।

[3]—हिक्स की उपर्युक्त रचना पृ० 238।

[4]—सैम्युल्सन (Samuelson) फाउण्डेशन्ज ऑफ ईकनॉमिक अनेलिसिस (Foundations of Economic Analysis) हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1947, पृ० 257।

जब कोई दत्तसामग्री इस प्रकार बदलती है जिससे नई सन्तुलन अवस्था की ओर गति हो जाती है तब चरों में परिवर्तनों की दिशा और परिमाण को जानने में तुलनात्मक स्थैतिकी को हमारी सहायता करनी चाहिए। सम्युल्सन कहते हैं कि पेरेटो ने 'यह दिखला कर कि किस प्रकार से दत्तसामग्री में परिवर्तन सन्तुलन की अवस्था को विस्थापित करेगी तुलनात्मक स्थैतिकी (Comparative statics) के सिद्धान्त की नींव रखी है।"[1]

तुलनात्मक स्थैतिकी विश्लेषण में हम यह देखते हैं कि 'दिए हुए प्राचलों में परिवर्तनों से व्यवस्था में क्या प्रतिक्रिया' होती है।[2] काल विश्लेषण और परिवर्तन विश्लेषण की दरों (rates of change analysis) में हम उस व्यवस्था के व्यवहार की खोज करते हैं जो समय समय के गुजर जाने से उत्पन्न होता है। सन्तुलन की उत्तरोत्तर स्थिति तक संक्रमण में जो समय लगता है उसे तुलनात्मक स्थैतिकी पार कर जाती है किन्तु काल विश्लेषण में हम गतिमान अर्थव्यवस्था मिलती है अर्थात् एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें परिवर्तन होता रहता है। "जहाँ पर 'स्थिर' परिवर्तन किया जाता है और जहाँ पर स्थिर सन्तुलन के अन्तिम स्तरों पर प्रभावों का प्रश्न है" तुलनात्मक स्थिति की 'उसी विशेष स्थिति से सम्बन्धित है।"[3] गतिशील विश्लेषण उस वास्तविक मार्ग का विवरण 'प्रस्तुत करता है" जो किसी प्रणाली द्वारा एक 'तुलनात्मक स्थैतिक स्तर' से दूसरे तुलनात्मक स्थैतिक स्तर तक पहुँचने में अपनाया जाता है।"[4]

हिक्स ने निर्देश किया कि केन्ज द्वारा अध्ययन और विश्लेषण की विषय सामग्री 'स्थैतिक अवस्था का मानक नहीं था बल्कि वह अर्थव्यवस्था थी जो प्राय बदलती, प्रगति करती और घटती बढ़ती रहती है। इसका "अध्ययन तो स्वतन्त्र रूप से ही करना होता है और इसका स्थैतिक अवस्था के मानक के लिए उपयोगिता पूर्ण निर्देश नहीं किया जा सकता।' तदनुसार जब कि स्थैतिक सिद्धान्त ने सामान्यत यह मान लिया है कि रुचि और साधन दिये हुए हैं तो केन्ज ने अपनी तुलनात्मक स्थैतिकी में एक नये तथा अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व अर्थात् "लोगों की भावी प्रत्याशाओं" का समावेश किया है। "यदि एक बार लुप्त तत्व प्रत्याशाओं

[1]—वही पृ० 351।
[2]—वही।
[3]—वही पृ० 352।
[4]—वही।
[5]—हिक्स की उपर्युक्त रचना, पृ० 240।

को जोड दिया जाय तो सन्तुलन विश्लेषण केवल उन दूरस्थ स्थिरावस्थाओ मे ही नही जिन पर बहुत से अर्थशास्त्रियो को पीछे हटना पडा है, वल्कि वास्तविक जगत मे, यहाँ तक कि 'अमन्तुचन' के वास्तविक ससार म भी इसका प्रयोग किया जा सकता है।"[1]

अत चाहे केन्ज की विधि औपचारिक रूप से तुलनात्मक स्थैतिकी की है फिर भी यह किसी परिवर्तनशील अर्थव्यवस्था के अध्ययन के लिये भी अत्यन्त उपयोगी है। तत्र तुलनात्मक स्थैतिकी के समीकरण सामान्य गतिशील विश्लेषण की विशिष्ट अवस्थाएं हैं।"[2]

केन्ज की विधि मे वह विलम्बित समजन जो किसी विघ्न के उपक्रम की प्रतिक्रिया स्वरूप आर्थिक व्यवस्थाओ मे घटित होता है, उसकी वास्तव मे बहुधा उपेक्षा कर दी जाती है, और सतुलन (अथवा सामान्य) परिमाणो और सम्बद्ध चरो के सम्बन्धो पर ध्यान दिया जाता है। अब केन्ज की रुचि मुख्यत जिस के प्रति है वह व्यवस्था की समजन की शक्ति अथवा अनुकूलन है (निम्सन्देह यह विलम्बित अनुक्रिया नही है बल्कि यह सामान्य अथवा सतुलन प्रतिक्रिया है)। हिक्स का कथन है कि "विधि की विशेष बात यह है कि यह परिवर्तन की प्रक्रिया मे विविधता पुन स्थापित कर देती है।'[3] वे इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि 'यह विघ्न उत्पन्न करने वाले कारणो के प्रभाव का विश्लेषण करने की' एक प्रशस्त विधि है।"[4]

यह बात पुस्तक मे आद्योपान्त व्याप्त है कि जनरल थ्योरी आधारभूत रूप से "गतिमान अर्थ व्यवस्था' का अध्ययन है। और यह सामान्यतया स्वीकार किया जाता है कि इसके प्रकाशन ने और इन विचार-विमर्शों ने जो इसके द्वारा उत्पन्न हुए हैं गति विज्ञान के अध्ययन को प्रबल प्रोत्साहन प्रदान किया है। इसने हमे अर्थशास्त्र को स्थिर रूप के स्थान पर गतिशील रूप से समझने के लिये बाध्य किया है। 'केन्जवादी सन्तुलन प्रणाली की उपादेयता इस बात मे है कि यह इस बात पर प्रकाश डालता है कि दत्तसामग्री मे परिवर्तनो के परिणाम स्वरूप हमारी अज्ञात राशियाँ कैसे बदल जाएँगी।"[5]

1—वही।

2—सैम्युल्सन की उपर्युक्त रचना पृ० 262।

3—हिक्स की उपर्युक्त रचना पृ० 241।

4—वही।

5—सैम्युल्सन की उपर्युक्त रचना पृ० 277।

इसके अतिरिक्त कभी कभी केन्ज ने तुलनात्मक स्थैतिकी की विधि को त्याग कर गतिशील अर्थशास्त्र की विधि का प्रयोग किया है। वास्तव म यह युक्ति यत्र-तत्र काल विश्लेषण के अनुसार प्रस्तुत की जाती है, जैसा कि गुणक-प्रक्रिया मे व्यय-पश्चता पर विवचन मे उन्होने किया है (पृ० 122-124)। अन्य अवसरो पर यह युक्ति परिवर्तन की समय दरो के रूप म प्रस्तुत की जाती है, जैसा कि उपभोक्ताओ और उपभोक्ता माल के सभारको की निवेश व्यय मे निरन्तर परिवर्तनो के प्रति पूर्ण आशा म किया है (पृ० १२४ १२५)। यहाँ उपभोग समय पश्चता के बिना, आय के निरन्तर सन्तुलन सम्बन्ध (गतिमान सन्तुलन, निरन्तर कार्य) मे उपभोग म गतिशील होता है।

अब हम गतिशील विश्लेषण की विभिन्न सकल्पनाओ पर सक्षेप मे विचार करेंगे।

रेगनर फ्रिश (Ragnar Frisch) गतिशील सिद्धान्त को ऐसा मानते थे कि जिसमे[1]

> हम समय के किसी दिए हुए बिंदु पर किसी परिमाणो के समूह पर विचार ही नही करते और उसम पारस्परिक सम्बन्धो का अध्ययन ही नही करते बल्कि हम इस समय विभिन्न बिन्दुओ पर कुछ चरो के परिमाणो पर भी विचार करते हैं, और हम उन समीकरणो को प्रस्तुत करते हैं जो साथ-साथ उन बहुत से परिमाणो के भिन्न-भिन्न क्षणों से सम्बद्ध हैं। यह गतिशील-सिद्धान्त का एक आवश्यक लक्षण है, केवल इस प्रकार के सिद्धान्त क द्वारा ही हम यह स्पष्ट कर सकते हैं कि किस प्रकार एक स्थिति अपने से पूर्व वाली स्थिति से उत्पन्न होती है।

इसका एक उदाहरण राबर्टसन युग का विश्लेषण है, जिसमे व्ययपश्चता अन्तर्ग्रस्त है। आज का उपभोग C_t कल की आय Y_0 का कार्य है जब कि आज आय, आज के उपभोग और निवेश व्ययो से उत्पन्न होती है। अत मानलो t किसी निश्चित काल को सूचित करती है तो t-1 पूर्वगामी काल है। इस प्रकार हमे निम्नलिखित अन्तर (पश्चता) समीकरण प्राप्त होते हैं।

$$Y_t = C_t + I_t$$
$$C_t = C\ (Y_{t-1})$$
$$Y_t = C\ (Y_{t-1}) + I_t$$

1—रेगनर फ्रिश "प्रापगेशन प्रोब्लेम्स एण्ड इम्पल्स प्रोब्लेम्ज इन डायनमिक इकॉनामिक्स, इकनामिक एसेज इन आनर आफ गुस्ताव कसल' आर्ज एलेन ऐण्ड अनविन लि० (लदन), 1933, पृ० 171-72।

जैसा $C_t = C(Y_{t-1})$ समीकरण मे वर्णित व्यय पश्चता को दृष्टि मे रखते हुए यदि हम रोबर्टसन काल के विश्लेषण को लागू करते है, तो यह विदित होता है कि किस प्रकार लम्बे समय म गुणक प्रक्रिया अपना कार्य करती है। काल विश्लेषण इस रूप मे किसी गतिमान सिद्धान्त को सूचित करता है कि कैसे यह लम्बे समय मे परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रकट करता है।

फ्रिश का अनुसरण करते हुए हिक्स ने आर्थिक गति विज्ञान को "उन अशो के रूप मे" परिभाषित किया है 'जहा पर प्रत्येक मात्रा का समय निर्धारित करना चाहिये।"[1]

लेकिन हैरेड ने गति विज्ञान को एक ऐसी "अर्थव्यवस्था" के अध्ययन के रूप मे परिभाषित किया है 'जिसमे निपज की दरें बदलती रहते है।'[2] हैरेड का कथन है कि गति विज्ञान का सबन्ध 'विकासशील अर्थव्यवस्था के विशेष प्रवृत्ति उत्पन्न निरन्तर होने रहने वाले परिवर्तनो' से है।[3] उनका विचार था कि सस्थापित अर्थशास्त्र मे, स्थैतिक और गतिमान दोनो ही तत्व लगभग समान अनुपात मे पाये जाते है। उदाहरणार्थ प्राप्त की हुई निवल बचत पूंजी के विकास को प्रदर्शित करती है और हैरेड कहते हैं कि इसको रिकार्डो द्वारा गतिमान सकल्पना के रूप मे ठीक ही माना गया है।[4] गतिशील अर्थशास्त्र को "किसी विकासशील अर्थव्यवस्था मे विभिन्न तत्वो के विकास की दरो के बीच आवश्यक सम्बन्धो पर अवश्य ध्यान देना चाहिये।[5]

पश्चायित चर केवल दोलन ही पैदा कर सकते हैं और लम्बे समय के बीच परिवर्तन की ऐसी प्रतिक्रिया फ्रिश की गति विज्ञान की परिभाषा के पूर्णतया अनुकूल है। फिर भी मेरी अपनी सम्मति मे केवल दोलन आर्थिक गति विज्ञान के सापेक्ष रूप मे अनावश्यक भाग को प्रदर्शित करता है। दोलन नहीं, बल्कि विकास आर्थिक गति विज्ञान के अध्ययन की मुख्य विषय-सामग्री है। विकास के अन्तर्गत तकनीक मे परिवर्तन और जनसख्या मे वृद्धि अतर्निहित है। वास्तव मे चक्र साहित्य का वह भाग (और चक्र सिद्धान्त, गतिमान अर्थशास्त्र की अत्यन्त महत्वपूर्ण शाखा है) जिसका सबन्ध केवल

1—जे० आर० हिक्स, वेल्यू ऐण्ड केपिटल (**Value and Capital**) आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1949 पृ० 115।

2—आर० जी० हैरड (R G Harrod) टुअर्ड्स डायनमिक इकनामिक्स (Towards Dynamic Economics) मैकमिलन ऐण्ड क०, लि० (लदन) 1948, पृ० 4।

3—वही, पृ० 11।

4—वही, पृ० 15-16

5—वही, पृ० 19।

दोलन से है अपेक्षाकृत निष्फल है। व्यवसाय-चक्र सिद्धान्त के लिये दिये गये महान योगदान (तुगन बरनाग्रउस्की, स्पाईथाफ शुम्पीटर, कैसल), में वही गिने जाते हैं जिनका सम्बन्ध मुख्यतया विकास से है।

काल विश्लेषण के दृष्टिकोण से यदि देखा जाये तो परिवर्तन की प्रतिक्रिया में गति विज्ञान का सम्बन्ध समय-पश्चाताग्रों तथा पश्चायित समजनों (ग्रन्तर अथवा पश्चता समीकरणों) से है। इस प्रकार का सिद्धान्त इस रूप में गतिमान है कि कुछ चरों को दूसरे चरों की पश्चायित मूल्यों पर आधारित समझा जाता है।[1] किन्तु हैरेड के दृष्टिकोण से गति विज्ञान का सम्बन्ध परिवर्तन की दरों (अवकल समीकरणों) में है और यह सिद्धान्त इस रूप में गतिमान है कि कुछ चरों के परिवर्तन की दर दूसरे चरों की परिवर्तन दरों पर आश्रित मानी जाती है। दूसरी स्थिति में कोई समय पश्चातनाएँ नहीं होती बल्कि एक ऐसा गतिमान सन्तुलन होता है जिसमें चर एक दूसरे से सदा सामान्य या सन्तुलन सबन्ध रखते हैं। चरों के वास्तविक परिमाण इच्छित परिमाणों के समान सदैव होते हैं। केन्ज का "गतिमान संतुलन गुणक" इस स्थिति को सूचित करता है। चर निरन्तर एक दूसरे से सामान्य या सन्तुलन सम्बन्ध (निरन्तर कार्य) बनाए रखते हैं।

ग्रन जनरल थ्योरी के कुछ खण्डों में विश्लेषण को गतिमान सन्तुलन में परिवर्तन की समय दरों के रूप में ढाला गया है। यह पूर्ण पूर्वदृष्टि और परिवर्तन के प्रति अविच्छिन्न समजन को सूचित करता है जिससे कि विभिन्न चरों के वास्तविक परिमाण इच्छित परिमाणों के सदा अनुरूप रहें। यह परिवर्तन का समय दर विश्लेषण है। हमारा सबन्ध यहां अविच्छिन्न कार्यों से है और व्यवस्था गतिमान संतुलन की अवस्था में है।

जनरल थ्योरी एक स्थैतिक सिद्धान्तमात्र से कुछ अधिक है। केन्ज बारम्बार अत्यन्त गतिमान रूप में विचार करते हैं। कभी कभी इस का अर्थ यह होता है कि वह थोड़ी देर के लिये काल विश्लेषण (पश्चाताओं को ध्यान में रखकर) में भ्रमण करने लगते हैं और विश्लेषण एक गतिमान संतुलन (परिवर्तन की निरन्तर दरें) के रूप में आगे बढ़ता है। बाकी तो उन की तुलनात्मक स्थैतिकी का सबन्ध किसी एक बिन्दुमात्र पर सन्तुलन की समस्याओं से नहीं है, बल्कि अपेक्षाकृत उन उपादानों से है जो एक संतुलन अवस्था से दूसरी अवस्था में विवर्तन कर देते हैं। संक्षेप में यह तुलनात्मक स्थैतिकी परिवर्तन के अध्ययन करने की एक विधि है।

[1]—देखिये लैल्विन एल० हैरेलन की पुस्तक बिजनिस साइकल्ज ऐण्ड नेशनल इन्कम, प्रकाशक डब्ल्यू० डब्ल्यू० नार्टन ऐण्ड क०, 1951, पृ० 420 पर आर० एम० गुडविन को।

इस सब को पाचवे अध्याय मे बहुत अच्छी तरह से प्रदर्शित किया गया है और वहा उन्होने आशसाओ को नियोजन और रोजगार का निर्धारक माना है। वे समय का समावेश करके प्रारम्भ करते है कि "तब भी साधारणतया उत्पादक द्वारा लागत पर व्यय से लेकर (उपभोक्ता को ध्यान मे रखने हुये) और अन्तिम उपभोक्ता द्वारा निगज की क्रय तक बहुधा समय लगता है और कभी कभी तो बहुत समय लगता है।" जब उद्यमकर्ता "उपभोक्ताओ को माल की बिक्री के लिये तत्पर होता है तो वह अधिकतम आशसाए जो वह लगा सकता है कि उपभोक्ता क्या दाम देने के लिए तत्पर होगे क्योकि आधुनिक उद्यमकर्ता का 'उन प्रक्रियाओ से उत्पादन करना पडता है "जिनमे समय लगता है", अत उसके पास इसके अतिरिक्त कोई उपाय नही है कि वह "इन आशसाओ के अनुसार चले। [1]

ये आशसाएं दो वर्गों मे बट जाती हैं। पहिले वर्ग का सम्बन्ध उत्पादक से है और इन्हे "अल्पकालीन आशसाए" कहा जा सकता है। दूसरे वर्ग का सबध भावी प्रतिफलो (returns) से है, जिनकी आशसा बहुत लम्बे समय तक चलने वाले तथा स्थायी परिसम्पत्ति से है। इन्हे "दीर्घकालीन आशसाओ" के नाम से भी पुकारा जा सकता है। अल्पकालीन आशसाओ का सबध बिक्री करने के दृष्टिकोण से होता है, जबकि दीर्घकालीन आशसाओ का सम्बन्ध अचल पूंजी से निवेश से होता है।

यहां पर केन्ज काल (विश्लेषण के रूप मे विचार करते है। "एक बहुत लम्बे समय मे ही आशसाओ मे परिवर्तन) चाहे अल्पकालीन हो या दीर्घकालीन (रोजगार पर अपना पूर्ण प्रभाव डालेगा।' यहा पर पश्चायित समजन पर ध्यान दिया गया है। "आशसाओ मे परिवर्तन के कारण रोजगार मे परिवर्तन जैसा पहले दिन था, ऐसा परिवर्तन के बाद दूसरे दिन नही होगा। जैसा दूसरे दिन था, वैसा तीसरे दिन नही होगा और इसी तरह आगे भी होगा चाहे आशसाओ मे और कोई परिवर्तन न भी हो।' अत "यह आवश्यक है कि तैयारी मे कुछ समय बीते, इससे पूर्व कि रोजगार उस स्तर तक पहुच सके जिस पर वह पहुच गया होता यदि आशसा की दशा मे अपेक्षाकृत शीघ्र सशोधन हो जाता" और निवेश व्यय की ओर ले जाने वाली दीर्घकालीन परिवर्तित आशसाओ के विषय मे "प्रारम्भ मे रोजगार अधिक ऊंचे स्तर पर हो सकता है, अपेक्षाकृत उसके जो उस समय होगा जबकि नई स्थिति के साथ उपकरण को समजन करने के लिये समय मिल गया हो।" (पृ० 47-48)।

"यदि हम आशसा की दशा को बहुत लम्बे समय तक चलते रहने की कल्पना

---

[1] —इस पैराग्राफ में दिये गये सभी उदाहरण जनरल थ्योरी के पृ० 46 से लिये गये हैं।

कर ल, जिससे रोजगार पर पूरा "प्रभाव पड सके" तो "इस प्रकार से प्राप्त रोजगार के अपरिवर्ती स्तर को दीर्घकालीन रोजगार कहा जा सकता है और जो इस आशसा की अवस्था के अनुरूप होगा" (पृ० 48)। यह निश्चिय रूप से गति विज्ञान के दृष्टिकोण से रुचिकर कथन है। इसके अतिरिक्त केन्ज यह निर्देश करना नही भूले कि दीर्घकालीन रोजगार एक बार प्राप्त हो जाये तो यह आवश्यक रूप से स्थिर राशि नही होगी। उदाहरणार्थ धन या जनसख्या मे निरतर वृद्धि अपरिवर्तनीय आशसा का एक भाग हो सकती है (पृ० 48) पर दी गई पाद-टिप्पणी)। इस प्रकार परिवर्तन की दर निरन्तर हो सकती है।

केन्ज ने सक्रमण की प्रक्रिया मे आई हुई पश्चाताओ के विषय मे (अध्याय 5 म और अन्यत्र भी) बहुत कुछ कहा है। इस सम्बन्ध मे पृ० 48 से 50 तक पढिये कि उन्होने क्या कहा है। यहा पर हमे काल-विश्लेषण का एक ऐसा अच्छा उदाहरण मिलता है जिसमे पश्चायित-समजन होते है। दीर्घकालीन आशसाओ के परिवर्तन के फलस्वरूप पहिले तो निवेश उद्योगो मे वृद्धि ("प्रारम्भिक अवस्थाओ मे") और केवल बाद मे उपभोग उद्योगो मे ('बाद की अस्थाओ मे") वृद्धि होगी। "अत आशसा मे परिवर्तन रोजगार के स्तर मे धीरे धीरे स्वरोत्कर्ष की ओर ला सकता है, जो पहिले तो चोटी तक पहुच जायेगा और फिर नए दीर्घकालीन स्तर तक गिर जाएगा। अथवा यह कहिए कि यदि नवीन दीर्घकालीन रोजगार पुराने से कम है तो रोजगार का स्तर सक्रमण की अवधि म कुछ समय के लिये, जो कुछ भी नवीन दीर्घकालीन स्तर बनने वाला है उससे नीचे गिर जायेगा। अत अपने आप को कार्यान्वित करने के लिए आशसा म एक छोटा-सा परिवर्तन ही उसी प्रकार का दोलन पैदा करने मे समर्थ है जैसा कि एक चक्रीय गति कर सकती है" (पृ० 49)।

अन्तर्ग्रस्त पश्चायित समजना का विवेचन आगे भी चल रहा है। "जैसा ऊपर हुआ है कि नवीन दीर्घकालीन स्थिति तक सक्रमण अबाध-प्रक्रिया विस्तृत रूप से विचार करने पर जटिल हो सकती है। किन्तु घटनाओ का वास्तविक क्रम और भी अधिक जटिल होता है, क्योकि आशसा की स्थिति मे निरन्तर परिवर्तन हो सकते है। यह सभव है कि इसके पहले कि एक नई आशसा से सबधित परिवर्तन पूर्णतया सम्पन्न हुआ हो, दूसरी आशसा अपना प्रभाव डाल दे। परिणामस्वरूप आर्थिक सगठन किसी दिए हुए समय पर बहुत-सी ऐसी परस्परव्यापी क्रियाओ मे व्यस्त रहता है जिनका अस्तित्व भूतकाल की आशसा की विभिन्न अवस्थाओ के कारण पाया जाता है।" अत यदि एक रूप से देखा जाये तो किसी समय रोजगार का स्तर केवल आशसा की वर्तमान अवस्था पर ही

आश्रित नही होता बल्कि आशसा की उन अवस्थाओ पर भी आश्रित है जो कुछ गत समय से चली आ रही हैं (पृ० 50)।

ये उद्धरण सही रूप से उस प्रकार के गतिमान प्रतिरूप का वर्णन करते हैं, जिसकी अर्थमिति शास्त्री सविस्तार वर्णन करने का चाव रखते हैं। वे कहते हैं कि समजन की इस जटिल प्रक्रिया की अवधि मे "गत आशसाए अपना कार्य "पूरा नही कर पाती हैं (पृ० 50)।

जहा तक अल्पकालीन आशसाओ का सबध है, हाल ही की निपज की प्राप्त बिक्री आगम का रोजगार पर प्रभावो और चालू आदान (input) से प्रत्याशित बिक्री आगम के प्रभावो के बीच बहुत अतिव्याप्ति होती है। किन्तु "जहा तक टिकाऊ माल का सबध है, उत्पादक की दीर्घकालीन आशसाए निवेशकर्त्ता की चालू दीर्घकालीन आशसाओ पर आधारित होती है" (पृ० 51)।

केन्ज के सभी आधारभूत कार्यात्मक सबधो मे आशसाए अपना स्थान रखती है। आशसाए निवेश माग अनुसूची, नकदी तरजीह (Liquidity preference) अनुसूची और तात्कालिक गुणक की तह मे होता है। इन सब को बाद के अध्यायो मे स्पष्ट किया जायेगा जहा हम इन कार्यो के सबध मे अधिक विस्तार से विचार किया है। यहा पर इस बात को ध्यान मे रखना पर्याप्त है कि केन्ज का आशसाओ पर बल देना, एक गतिमान तत्व का सूत्रपात करती है, अर्थात् प्रत्याशित और वास्तविक प्रवाह दरो के बीच अन्तर तथा प्रत्याशित और वास्तविक स्टाक के बिच के अन्तर को बनाता है।

फिर भी यह बिल्कुल सत्य है कि वह उन उपादानो के विश्लेषण मे मुख्य रूप स रुचि रखता था जो सन्तुलन की दिशा मे प्रवृत्त होने है—विशेषकर अपूर्ण रोजगार (under employment) की अवस्था पर विचार करने मे। सन्तुलन की अवस्था की व्याख्या मे भी यही प्रश्न था जो जे० एम० क्लार्क ने उठाया था अर्थात् "प्रभावी माग की परिसीमा के कारण उत्पादन की चिरकालीन परिसीमा"।[1] केन्ज की भान्ति क्लार्क ने भी ठीक रूप से यह समझ लिया था कि इस प्रश्न का उत्तर उस प्रकार के चक्र सिद्धान्तो से नही दिया जा सकता जो केवल दोलन पर ही बल देते हैं, अर्थात् असतुलन के उन गतिमान सिद्धातो पर बल देते है जो केवल यह सूचित करते हैं कि किस प्रकार अर्थव्यवस्था ऊपर-नीचे झूमती है। अत यह सर्वथा सत्य है कि केन्ज मुख्यत

[1]—जे० एम० क्लार्क की पुस्तक इकॉनामिक रिकन्स्ट्रक्शन, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 1934, पृ० 105।

संतुलन विश्लेषण मे रुचि रखता था। किन्तु इसके विषय मे और साथ ही साथ स्थैतिकी एव गतिविज्ञान से संबद्ध समस्याओ पर, आने वाले अध्यायो मे हम विस्तार से कहेगे।

आय (जनरल थ्योरी, पृ० 52–61, 66 73)

जनरल थ्योरी के समझने मे आय पर लिखा गया यह खण्ड कोई विशेष महत्ता नही रखता और यदि विद्यार्थी चाहे तो इसे छोड भी सकते है। किन्तु उनके लिये जो यह जानना चाहते है कि इस खण्ड का विषय क्या है, तो मेरा विश्वास है कि नीचे लिखी हुई ये संक्षिप्त टिप्पणिया उस विचार विमर्श मे कुछ रुचि पैदा कर देगी, जिसे बहुत से पाठक शायद बेकार सा ही समझते है।

प्रारम्भ से ही इस तथ्य पर ध्यान देना आवश्यक है कि "राष्ट्रीय आय" की संकल्पना मे 1936 से अधिक विकास हुआ है। यदि केन्ज ने अपनी पुस्तक आजकल लिखी होती, तो उन्होने इस खण्ड को अवश्य ही छोड दिया होता और वे ब्रिटिश राज्यकोष की कुल (gross) राष्ट्रीय उपज और उपादान लागत (factor cost) पर राष्ट्रीय आय और अमरीकी वाणिज्य विभाग, आर्थिक अनुसधान का राष्ट्रीय ब्यूरो (National Bureau of Economic Research) पर नवीन अध्ययनो (जिनमे केन्ज ने स्वय भाग लिया) का केन्ज उडता हुआ सा उल्लेख करते। जिस समय केन्ज जनरल थ्योरी की रचना कर रहे थे, इन विषयो पर चिन्तन इतना विकसित नही हुआ था जितना की आजकल।[1] इसलिए उन्होने यह आवश्यक समझा की उन्हे आय और लागत की अधिक स्पष्ट अवधारणा तक पहुँचना चाहिये।

उन्होने आय संकल्पना के लिए तीन उपागमो का सुझाव दिया है। प्रथम उपभोक्ता माल और निवेश माल पर कुल व्यय के दृष्टिकोण से द्वितीय उत्पादन के विभिन्न उपादानो के आय के दृष्टिकोण से, और तृतीय उपागम समस्त बिक्री ऋण उत्पादन की लागत के दृष्टिकोण से बताई गई है।

व्यय उपागम को संक्षेप से इस समीकरण द्वारा $(A-A_1)+(G'-B'-G)=Y$, उपादान आय उपागम को इस समीकरण द्वारा $F+Ep=Y$, और बिक्री

1—मानक पाठ्य पुस्तकों की जानकारी के संबंध में देखिये—जे० आर० हिक्स की द सोशल फ्रेमवर्क (**The Social Framework**), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1942, कार्ल एस० शूप का प्रिंसिपल्स आव नेशनल इन्कम अनैलिसिस, प्रकाशक हाउटन मिफिन क० (Houghton Mifflen Co.) 1947 और रिचर्ड रगल्स (Richard Ruggles) की एन इण्ट्रोडक्शन टु नेशनल इन्कम ऐण्ड इन्कम अनैलिसिस, (प्रकाशक) मैकग्रा हिल बुक क० इ० 1949।

आगम-ऋण लागतउपागम को इस समीकरण द्वारा $A-U=Y$ व्यक्त किया जा सकता है।

यहाँ A सभी क्रेताओं से उद्यमकर्ताओं द्वारा प्राप्त समस्त बिक्री आगम है (इसमें उपभोक्ता और उद्यमकर्ता दोनों ही सम्मिलित हैं), और A_1 दूसरे उद्यमकर्ताओं से उद्यमकर्ताओं द्वारा समस्त क्रय है। इससे यह परिणाम निकला कि $A-A_1=$ उपभोक्ताओं का क्रय।

$G'-B'$ को सुविधापूर्वक G^* कहा जा सकता है। केन्ज का $G-B$ कुछ अटपटा सा नामकरण है। और इसलिये इसे G^* से प्रतिस्थापित करने मे आसानी रहेगी। G^* (अर्थात् $G-B$) गत उत्पादन काल से लायी गई उन पूंजीगत वस्तुओं की निवल मूल्य को सूचित करता है, जिनके अनुरक्षण और सुधार पर कुछ भी व्यय नही किया गया है,[1] यह पहले काल से प्राप्त पूंजी का वास्तविक मूल्य है। यह पूंजी का वह वास्तविक मूल्य है जो गत काल से प्राप्त हुआ है। G उत्पादन काल की समाप्ति पर पूंजीगत उपकरण का वास्तविक मूल्य है। इस प्रकार G^*-G पूंजीगत उपभोग हो जाता है। यदि G (उत्पादन काल की समाप्ति पर पूंजीगत उपकरण) G^* (काल के प्रारम्भ मे पूंजीगत उपकरण) के बराबर है तो सबद्ध काल का कुल निवेश पूंजीगत उपभोग के ठीक बराबर होगा, और इसलिये वास्तविक निवेश शून्य होगा। पर यदि G, G^* से बड़ा है तो पूंजी मे निवल निवेश $G-G^*$ के बराबर हो जाता है (पृ० 66)।

अत यदि $A-A_1=$ उपभोक्ता व्यय अथवा C, जबकि

$G-G^*=$ निवल निवेश व्यय अथवा I, तो

$$(A-A_1)+(G+G^*)=C+I=Y$$

राष्ट्रीय आय को ज्ञात करने के लिये यह पहिली विधि है।

F उत्पादन के कारकों की प्रदत्त राशि है, और Ep (इस चिन्ह को मैंने सुविधा की दृष्टि से प्रयोग किया है) उद्यमकर्ताओं की आय (अर्थात् निवल लाभ) है। ये दोनो मिल कर आय के बराबर हो जाते हैं अर्थात् $F+Ep=Y$। यह कारक लागत पर प्राप्त राष्ट्रीय आय है।

इस प्रकार पूंजीगत उपभोग (अर्थात् G^*-G) + पदार्थों का क्रय (अर्थात् A_1) जो उत्पादन काल मे किया गया है, विकल्प लागत अथवा U के बराबर होगा। इस प्रकार $(G^*-G)+A_1=U$। समस्त बिके हुये माल (अर्थात् A) की उत्पादन

---

[1]—B' पूंजीगत वस्तुओं के अनुरक्षण और सुधार पर व्यय की गई राशि है, और G वह मूल्य है जो B' को इस पर व्यय करने के पश्चात प्राप्त होता है। अत $G'-B'$ पिछले काल से लाई गई पूंजी का मूल्य है।

करने की विकल्प लागत, पूंजीगत उपभोग और पदार्थों के योग के बराबर होता है। इस प्रकार समस्त बिका हुआ माल (ऋण) विकल्प लागत (पूंजीगत उपभोग+प्रयुक्त पदार्थ) राष्ट्रीय आय के बराबर होगा। अत A—U=Y। यह बिक्री (ऋण) लागत उपागम है।

अब हम (पृ० 56—60) उन कठिन विषयो पर आते है जो (1) अनैच्छिक हानिया जो अनाशासित नही है और (2) अनैच्छिक हानिया जो अनाशासित भी है, से सबन्ध है। बाद के विषयो का सबध बाजार मूल्यो मे परिवर्तन, युद्धो अथवा भूकम्पो इत्यादि से हुए विनाश से है। पहिले वाले विषय (अर्थात् ऊपरलिखित प्रकरण सख्या 1) को केन्ज ने अनुपूरक लागत का नाम दिया है। उन अनैच्छिक हानियो का, जिनकी कुछ न कुछ आशासा की जाती है, निगम अथवा व्यक्तिगत स्वामी द्वारा हिसाब लगाया जायेगा और आय वाले खाते मे लिखा जायेगा। फिर भी अनैच्छिक और अनाशासित हानियो को व्यय के रूप मे खाते मे नही दिखाया जाता, बल्कि उनको (जब और यदि व घटित हो) अप्रत्याशित हानियो (या लाभो) के रूप मे माना जाता है। उदाहरणार्थ, स्पष्टत ग्रेट ब्रिटेन मे युद्ध के समय बम वर्षा द्वारा हुए असाधारण और अदृष्ट विनाश को युद्ध के वर्षो मे समस्त राष्ट्रीय निपज (वास्तविक आय) को ज्ञात करने से पूर्व घटाया न जाये। किन्तु असाधारण या अनैच्छिक हानियो का कुछ भाग तो आशासित माना जाना उचित ही होगा। ये अनुपूरक लागतें जिन्हे केन्ज ने V का नाम दिया है, निबल राष्ट्रीय आय को ज्ञात करने के लिये समुचित रूप से घटाया जा सकता है। अत निबल राष्ट्रीय आय समस्त बिक्री मे से विकल्प और अनुपूरक लागत दोनो को घटा कर ज्ञात की जाती है अर्थात् Y=A—(U+V)।

केन्ज ने मूल्यह्रास (उनकी विकल्प लागत का एक अश) की अपनी परिभाषा म राजस्व अधिकारियो के मानव प्रयोग को अर्थात् उपकरण की मूल लागत के आधार पर मूल्यह्रास के गणना को अपनाया है। निस्सदेह इस पद्धति ने विकल्प लागत की स्पष्ट यात्रिक गणना को सम्भव बना दिया है। पर इससे आवश्यक रूप से यह परिणाम नही निकलता कि आर्थिक विश्लेषण के लिये यह कोई अच्छी पद्धति है। जब मूल्य बढते है तो मूल्यह्रास के प्रभार डालने की मूल लागत विधि उत्पादित आय को उत्युक्ति की ओर ले जाती है। वास्तव मे करो के उद्देश्य से भी अमरीकी नियमो को, सूचियो (**inventories**) को 'लीफो' (**LIFO**) Last-in first out) की विधि अर्थात् मूल लागत की अपेक्षा चालू लागत के आधार पर मूल्याकन करने की अनुज्ञा है। पर अचल पूंजी के सबध मे राजस्व अधिकारियो द्वारा ऐसा करने की आज्ञा नही दी गई है।

मूल्यह्रास की ठीक ठीक गणना की समस्या अति जटिल है। और मेरा यह विश्वास है कि केन्ज का यह कथन सर्वथा गलत है (पृ० 60) कि चालू उत्पादन से संबंधित निर्णयों से सबद्ध आय की संकल्पना बिल्कुल स्पष्ट है। यद्यपि केन्ज ने हैयक के सिद्धांत की आलोचना की तब भी निस्संदेह इस सिद्धान्त के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है और वह यह कि अपनी पूंजी को बनाए रखने के लिये एक पूंजीगत वस्तुओं का व्यक्तिगत स्वामी अपनी सम्पत्ति से प्राप्त आय को स्थिर रखने का लक्ष्य बना सकता हैं (पृ० 60)। मूल्यह्रास नीति और सूची मूल्य पर लिखा गया अत्यन्त प्राविधिक और जटिल साहित्य यह दिखलाने के लिये पर्याप्त है कि व्यवसायिक आय या राष्ट्रीय आय की स्पष्ट संकल्पना कठिनता से संभव है। जैसा कि मूल्य गतियां, निपज, या पूंजीगत पदार्थों के स्टाक के सूचकांक संख्याओं के विषय में, अर्थशास्त्री को पूर्णता से कुछ कम पर ही सन्तोष करना पड़ता है।[1]

4—बचत और निवेश (जनरल थ्योरी, पृ० 61-65, 74-85)

केन्ज के वर्तमान काल में आय का चालू निवेश + चालू उपभोग व्यय के बराबर माना है। इसके अतिरिक्त वर्तमान काल में बचत को वर्तमान आय ऋण

1—विकल्प लागत के परिशिष्ट में (पृ० 66 73), केन्ज कहते हैं कि "अल्पकालीन संभरण मूल्य, सीमान्त कारक लागत और सीमान्त विकल्प लागत के योग के बराबर होता है" (पृ० 67)। उल्लेखनीय बात यह है कि आधुनिक सिद्धान्त में यह एक प्रचलित पद्धति है कि अल्पकालीन संभरण मूल्य को अकेले सीमान्त कारक लागत (marginal factor cost) बताया जाता है। किन्तु इससे दूसरे फर्मों से पदार्थों का क्रय और सीमान्त पूंजीगत उपभोग (अर्थात सीमान्त अविनेश, पृ० 67) छूट जाता है। इसके अतिरिक्त दीर्घकालीन लागत में केवल विकल्प लागत ही नहीं बल्कि "अनुपूरक लागत" और कारकों पर ध्यान भी अवश्य सम्मिलित होना चाहिए (पृ० 68)।

अतिरिक्त उपकरण (उदाहरणार्थ वस्तु भंडार) को रखने ठहराने के लिये व्यवस्थित योजनाओं के संबंध में सीमान्त अविनेश (मूल्य दरों में) कम होता है। किन्तु जैसे जैसे फालतू उपागम, अवशोषण को पूरा कर लेते हैं, सीमान्त अविनेश (और इसी प्रकार सीमान्त विकल्प लागत भी) उत्तरोत्तर बढ़ जायेगा और इस प्रकार अल्पकालीन संभरण मूल्य बढ़ जायेगा (पृ० 71)। केन्ज कहते हैं कि यह व्यापारी के चिन्तन के अनुरूप है। किन्तु अर्थशास्त्री बहुधा यह युक्ति देते हैं "कि उत्पादन की सीमा पर उपकरण में अविनेश शून्य होता है (पृ० 72)।" निस्सन्देह यह "बहुत लम्बे समय तक रहने वाली गिरावट के विषय में" ठीक हो सकता है, पर सामान्य रूप से बहुत कम सीमान्त विकल्प लागत केवल, विशेष स्थितियों का जैसे लम्बी गिरावट अथवा बहुत तेज अप्रचलन, अथवा अत्यन्त अतिरिक्त क्षमता की लाक्षणिक हो सकता (पृ० 72 73)।

चात् उपभोग के बराबर माना है। आय को Y, उपभोग को C, निवेश को I और बचत को S मान लें तो

$$Y_t = I_t + C_t$$
$$S_t = Y_t - C_t \qquad (\text{अर्थात् } Y_t = S_t + C_t)$$

इसलिये

$$I_t = S_t$$

जैसा पादाक्षर t द्वारा सूचित किया गया है, सभी चर वर्तमान काल से सम्बद्धित हैं।

निवेश व्यय और उपभोग व्यय ही वास्तव में महत्वपूर्ण चर हैं। "उपभोग जितना किया जाय और निवेश जितना किया जाये, यही आयों को निर्धारित करते हैं (पृ० 64)। "बचत" तो अवशिष्ट मात्र है। सम्पूर्ण केन्जवादी विश्लेषण को 'बचत' शब्द का कभी भी प्रयोग किये बिना ही विकसित किया जा सकता है। वास्तव में छठे अध्याय के अन्तिम वाक्य में केन्ज ने यह कहा कि "उपभोग प्रवृत्ति की धारणा, जैसा आगे विदित होगा, बचत प्रवृत्ति अथवा बचत की चित्त वृत्ति (disposition) का स्थान ले लेगी।'

किन्तु केन्ज ने वास्तव में अपनी सम्पूर्ण पुस्तक में "बचत" शब्द का प्रयोग किया है और जनरल थ्योरी के प्रकाशन के पश्चात् बचत-निवेश समस्या पर जो वादविवाद हुआ, उसमें एक विषद सम्भ्रान्ति उत्पन्न हो गयी।

इस सम्भ्रान्ति का एक कारण यह भी था कि केन्ज के आलोचक यह नहीं समझ सके कि यद्यपि निवेश और बचत सदा बराबर होते हैं, परन्तु वे सदा सतुलन में नहीं होते हैं।[1] यह सब सम्भ्रान्ति दूर की जा सकती थी यदि प्रारम्भ से ही केन्ज यह स्पष्ट कर देते कि बचत और निवेश की समता का यह अभिप्राय नहीं है कि आवश्यक रूप से ही वे सन्तुलन में होते हैं। वे यह समझने में पर्याप्त यथार्थवादी थे, जैसा कि उनकी पुस्तक के विभिन्न खण्डों से बार बार प्रदर्शित होता है। पर उन्होंने कभी भी यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा, निस्सन्देह इस कारण से कि उन्होंने इस पर गहराई से चिन्तन नहीं किया था।

---

[1]—इस विषय पर हुए पूर्ण विचार-विमर्श की जानकारी के लिये देखिये मेरी पुस्तक मानेटरी थ्योरी एण्ड फिस्कल पॉलिसि (Monetary Theory and Fiscal Policy) मैकग्रा-हिल बुक क० इं०, 1949, में निवेश और बचत पर नोट, परिशिष्ट B; और मेरी ही पुस्तक बिज़नेस साइकिल्स एण्ड नेशनल इन्कम, (प्रकाशक) डब्ल्यू० डब्ल्यू०, नार्टन एण्ड क० 1941 के पृ० 156-163 को भी पढ़िये।

यदि अर्थव्यवस्था चल (moving) सतुलन मे है, जिससे चर एक-दूसरे से सदा सामान्य (इच्छित) कार्यात्मक सबंध में हों, तो निस्सदेह बचत और निवेश केवल बराबर ही नही होगे, बल्कि सतुलित भी होगे। किन्तु यदि परिवर्तन की प्रक्रिया मे कुछ चरो का पश्चायित समजन हो, तो फिर ऐसा नही होगा। उदाहरणार्थ, यदि व्यय पश्चता हो (अर्थात् यदि उपभोक्ता अपने व्यय को धीरे-धीरे आय के परिवर्तनो के अनुकूल बना ले) तो जब तक पश्चता की क्रिया समाप्त नही होती, वास्तविक उपभोग इच्छित उपभोग के बराबर नही होगा (और वास्तविक बचत इच्छित बचत के बराबर नही होगी)। इसी प्रकार यदि निपज-पश्चता है और उत्पादक बिक्री मे वृद्धि (या ह्रास) के अनुकूल अपने आप को बनाने मे धीमी गति से काम करते है, तो सूची स्टाकों मे अनैच्छिक अनिवेश (या निवेश) घटित होगा। अत: वास्तविक निवेश इच्छित (अभिप्रेत) निवेश से अपसृत हो जायेगा। इन दोनो (व्यय पश्चता या उत्पादन पश्चता) मे से किसी भी स्थिति मे बचत और निवेश बराबर होते हुए भी सतुलन मे नही होगे। स्पष्टत जब तक कि पश्चताओ की क्रिया पूर्ण नही हो जाती, कोई सन्तुलन अवस्था नही हो सकती। सन्तुलित अवस्थाओ मे (जब पश्चताओ पर काबू पा लिया गया हो) बचत और निवेश दोनो ही बराबर और सन्तुलन मे होगे। और यह दोनो दशाओ मे ही ठीक होगा चाहे प्रणाली चल हो या स्थिर सतुलन म हो। पर यदि प्रणाली सन्तुलन मे नही है तो बचत और निवेश बराबर होते हुए भी सन्तुलन में नही होगे।

यहाँ केन्ज मुख्य रूप से या तो तुलनात्मक स्थैतिकी या चल-सन्तुलन मे रुचि रखने थे। दोनो मे से किसी भी अवस्था मे बचत और निवेश केवल बराबर ही नही होगे बल्कि सन्तुलन मे भी होगे। यह होते हुए भी बार बार वे अपनी व्याख्या मे उस अर्थव्यवस्था से सम्बद्ध थे जिस मे पश्चायित समजन हो रहे हो। निसदेह वे अपने विश्लेषण के उन भागो पर और अधिक प्रकाश डाल सकते यदि वे स्पष्ट रूप से यह अनुमान लगा लेते और स्पष्ट रूप से कह देते कि बचत और निवेश हमेशा बराबर होते हुए भी आवश्यक रूप से अथवा सदा सन्तुलन मे नही होते।

यह विशेष रूप से दुर्भाग्य की बात है कि उन्होंने सातवे अध्याय मे उस जगह इस भेद को स्पष्ट तथा सूक्ष्म रूप से नही दर्शाया, जहाँ पर हाटरी (Hawtrey) (पृ० 75 76) और राबर्टसन (Robertson) (पृ० 78) पर विचार-विमर्श करते समय उन्होने पश्चायित समजनो की समस्या पर वास्तव में स्पर्श (बिना ऐसा कहे) किया है। हॉटरी के विचार मे उत्पादन पश्चता होती है—अनैच्छिक सूची सचय या असचय होते हुए जो अभिप्रेत निवेश और वास्तविक निवेश के बीच का अन्तर होता है। रॉबर्टसन के विश्लेषण मे (ईक्नामिक जर्नल, सितम्बर 1933 मे उद्धृत किये गये

लेख मे अपूर्ण रूप से वर्णित) व्यय पश्चता—अर्थात् वास्तविक उपभोग और ऐच्छिक उपभोग के बीच का अ तर—होती है।

केन्ज वास्तव मे हॉट्री के विश्लेषण का ठीक रूप मे सामना नही कर सके, यद्यपि वे इससे सहमत थे कि बिक्री मे अदृष्ट परिवर्तन वास्तविक-सूची अधिकृत-पूंजी को ऐच्छिक-सूची से अपसृत कर देंगे, और इस लिये अगले उत्पादन काल मे उद्यमकर्त्ताओ के निर्णय को प्रभावित करेंगे। जहाँ तक रॉबर्टसन का सम्बन्ध है, केन्ज ने जो वास्तव मे महत्वपूर्ण बात कही, वह इस प्रकार है कि रॉबर्टसन के अनुसार बचत से निवेश की अधिकता केवल यह कहने का ही एक ढग है कि आज की आय कल की आय से अधिक है। यह परिणाम इस तथ्य से निकला कि उद्धृत लेख मे राबर्टसन ने अपने आप को उन परिभाषाओ तक ही सीमित रखा जिन्हे इन समीकरणो से निम्नलिखित रूप से वर्णित किया जा सकता है

$$Y_{t-1} = C_t + S_t \quad \text{और}$$
$$Y_t = C_t + I_t\dagger$$

पहिली समीकरण का यह अर्थ है कि कल की आय Y_{t-1} आज समाप्त हो जायगी (अर्थात् खर्च हो जायेगी या बचाई जायेगी) आज की बचत = कल की आज—आज का उपभोग। दूसरे समीकरण का यह अर्थ है कि चालू आय का प्रवाह चालू उपभोग और चालू निवेश से उत्पन्न होता है। इन परिभाषाओ से यह परिणाम निकलता है कि चालू आय Y_t कल की आय Y_{t-1} से केवल तब ही बढ सकती है जब I_t, S_t से अधिक हो। पर ये परिभाषाएँ केवल तद्रूपता स्थापित करती है। ये तो केवल आज की और कल की आय के विषय मे स्वय सिद्ध कथन है। आय

—वास्तव में केन्ज ने राबर्टसन की परिभाषाओं को इस भद्दे ढग से प्रस्तुत किया कि वे पाठक को भ्रम में डाल सकती हैं। वास्तव में अच्छा तो यह होगा कि यदि पाठक पृ० 78 के मध्य से प्रारम्भ होने वाले पैराग्राफ के प्रथम वाक्य को बिल्कुल ही निकाल कर फैंक दें। राबर्टसन ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि आज की खर्च की गई और बचाई हुई आय पहिले दिन प्राप्त होती है। कुछ भी हो, केन्ज का यह निष्कर्ष ठीक है कि राबर्टसन के अनुसार निवेश से बचत की अधिकता का केवल यही मतलब है कि आय कम हो रही है।

†केन्ज द्वारा उद्धृत किये गये एक लेख (ईकॉनामिक ज्र्नल, सितम्बर 1933) में राबर्टसन ने यह कहा था कि कल की अर्जित आय आज समाप्त हो जायेगी (अर्थात् आज खर्च की जायेगी व बचाई जाएगी)। अतः समीकरणों को निम्न रूप से लिखा जाना चाहिये :

$$Y_{t-1} = S_t + C_t$$
$$Y_t = I_t + C_t$$

परिवर्तनो का विश्लेषण करने के लिए उनका कोई मूल्य नही है, वे तो केवल यही सूचित करती है कि घटना के पश्चात् क्या कुछ हो चुका है।

लेकिन बाद मे [क्वार्टरली जर्नल ऑव ईकनॉमिक्स (**Quarterly Journal of Economics**) नवम्बर 1936 मे प्रकाशित एक लेख मे] राबर्टसन ने यह परिकल्पना जोड दी जिसकी आर्थिक व्यवहार के नमूने के रूप मे जाँच की जा सकती है या उसे असिद्ध किया जा सकता है—अर्थात आज का उपभोग कल की आय का कार्य है अथवा $(C_t = f\,Y_{t-1})$। किन्तु जब केन्ज ने अपनी पुस्तक लिखी थी तो यह विश्लेषण उपलब्ध नही था। केन्ज की यह निश्चित धारणा थी कि राबर्टसन के लेख (ईकनॉमिक जर्नल सितम्बर 1933) ने कोई **विश्लेषण** प्रस्तुत नही किया है। यह कहना कि आज का निवेश आज की बचत से अधिक है यह केवल कहने का दूसरा ढग है (उनकी परिभाषाओ को सामने रख कर) कि आज की आय कल की आय से उतनी ही मात्रा मे अधिक हो जाती है।

दूसरा, पर सम्बन्धित, भ्रम इस कारण पैदा हुआ कि केन्ज के बहुत से आलोचकों ने बचत और निवेश की समता को अखडनीय तथ्य से समाधान करने मे कठिनाई अनुभव की कि निवेश म लगाय हुए धन के एक भाग को बैंक उधार (नया द्रव्य) अथवा निष्क्रिय इतिशेषो मे वित्त-व्यवस्था की जाती है। उस समय यह पूछा जा सकता था कि किस प्रकार बचत निवेश के बराबर हो सकती थी ?[1]

समस्या पर राबर्टसन के ढग से दृष्टिपात करने म बात यह है कि नया द्रव्य और अभिक्रियाशील निष्क्रिय इतिशेष, आय के अतिरिक्त समझे जाते हैं। केन्जवादी परिभाषा मे, वास्तविक रूप से वर्तमान काल मे व्यय हो जाने के कारण नई निधिया चालू आय को बढा देती है और यह इतनी अधिक हो जाती है जितनी कि बिना इसके नही हो सकती थी, और चालू आय का वह भाग जो उपभोक्ता माल पर खर्च नही होता, वास्तव मे बच जाता है।[2] इस प्रकार केन्जवादी बचत (चालू आय से) राबर्टसन की बचत (कल की आय से) से बढ जायेगी। दोनो म अन्तर वह व्यय है जो

---

[1]—राबर्टसन ने यह कहा (इकानामिक जर्नल, सितम्बर 1933, पृ० 411) कि उनका विश्लेषण उसके अनुरूप है "जिसे सामान्य बुद्धि वाले (सरल बुद्धि वाले मनुष्य भी) इस विषय का सार मानते हैं अर्थात् आय प्रवाह की दरों में परिवर्तन का अधिकार जनता को व मुद्राधिकारी को प्राप्त है। जनता तो द्रव्य को स्टोर में रखती है और निकालती है, मुद्राधिकारी इसे अस्तित्व में लाते है और अस्तित्व से बाहर कर देते हैं।" अत उनकी परिभाषा में $I = S + (A + B)$ जिसमें A नया द्रव्य है और B प्रतिक्रियाशील (reactivated) निष्क्रिय इतिशेष है।

[2]—पैरा की इस पुस्तक के सातवें अध्याय में पता चलेगा कि पीगू ने केन्ज की परिभाषाओं को पूर्ण रूप मे स्वीकार कर लिया था।

नये द्रव्य और अभिक्रियाशील निष्क्रिय इतिशेषो मे किया जाता है। केन्ज का S राबर्टसन के $S + (A+B)$[1] के बराबर है।

केन्ज ने इस विषय पर ईकनॉमिक जर्नल के सितम्बर 1939 के अक मे प्रकाशित एक लेख मे स्पष्ट रूप से विचार किया है।[2] यहा वे इस बात पर सहमत हो गये कि चालू निवेश के लिये उपलब्ध निधियो को "पूर्व बचत" + विनिवेश और साख विस्तार के रूप मे वर्णित किया जा सकता है। तब भी उन्होने यह निर्देश किया कि 'बचत की वह मात्रा जो निवेश के साथ-साथ घटित हो रही है" यथार्थ रूप से वह उस निवेश के समान होनी चाहिये। "पूर्व निधि मे हुई बचत उस तिथि मे निवेश से अधिक नही हो सकती। विनिवेश और द्रव्य विस्तार बढती हुई बचत के लिये कोई विकल्प प्रदान नही करती बल्कि इसके लिये एक आवश्यक तैयारी है। यह बढी हुई बचत का पिता है यमज नही।[3] वे अपनी युक्ति को निम्नलिखित शब्दो मे समाप्त करते हैं कि 'पूर्व बचत की दर हमे केवल यह बतलाती है कि कितना चालू निवेश पहले से, नकदी स्थिति और ब्याज की दीर्घकालीन दर को अस्तव्यस्त किये बिना और बिना समय पश्चता के, एक स्थायी स्थान पा सकता है'[4]

यहा पर यह स्पष्ट है कि केन्ज ने राबर्टसन की परिभाषाओ की औपचारिक परिशुद्धता को स्वीकार किया था। उन्होने यह देखा कि राबर्टसन की पूर्व बचत + विनिवेश और साख रचना उनकी अपनी चालू बचत के बराबर थी और यह भी कि राबर्टसन का विचार उस काल विश्लेषण से सम्बद्ध था जो पूँजी निर्माण की उस प्रक्रिया की परिकल्पना करता था' जो अनिर्धारित लम्बाई की समय-पश्चाताओ के आधार पर किसी काल मे घटित होती रहती है।'

केन्ज का समस्या पर विचार करने का ढग राबर्टसन के ढग की अपेक्षा सामान्य बुद्धि के लोगो को कम प्रभावित नही करता। अतिरिक्त बिक्री (बाजार मे नई निधियो के लगाने के कारण) व्यावसायिक इकाइयो और प्रयुक्त कारको की चालू आयो को बढाती है। इन बढी हुई चालू आयो से अपेक्षाकृत अधिक बचत की जाती है। ये इसते उत्पादन के वर्तमान समय मे कमाई हुई आय मे से ली जाती है। और

[1]—A नया द्रव्य है और B विनिवेशित (dishoarded) निष्क्रिय इतिशेषों के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

[2]—जे० एम० केन्ज, "द प्रासेस आव कैपिटल फारमेशन" (The Process of Capital Formation) इकनामिक जर्नल, सितम्बर 1939, पृ० 569 574।

[3]—वही, पृ० 571 572।

[4]—वही, पृ० 574।

जो लोग इन बचतो को करते हैं, वे यह सुनना नही चाहेगे कि यह वास्तव मे बचत नही है। इस दृष्टिकोण से यह परिभाषा सामान्य बुद्धि के लोगो को उतनी ही समुचित प्रतीत होती है, जितनी कि राबर्टसन की परिभाषा जो इस बात पर बल देती है कि "बचत" शब्द का प्रयोग कल की आय के उस भाग तक सीमित रहना चाहिये जो उपभोक्ता माल पर वर्तमान समय मे व्यय नही होता।

स्पष्टत यह एक परिभाषा के ठीक न होने और दूसरी के ठीक होने का प्रश्न नही है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी परिभाषाएँ बनाने के लिये स्वतत्र है। प्रश्न केवल उनकी उपादेयता का है। काल विश्लेषण मे राबर्टसन की परिभाषाएँ उपयोगी और वास्तव मे आवश्यक हैं। परिवर्तन की समय दरों के विश्लेषण मे केन्जवादी परिभाषाएँ समुचित हैं। इसके अतिरिक्त सभी देशो मे केन्जवादी परिभाषाओ को राष्ट्रीय आय लेखो मे प्रयोग किया जाता है। यह ऐसा इसलिये है क्योकि राष्ट्रीय आय खातो मे यह आवश्यक है कि सभी चर एक ही काल में लागू होने चाहियें।

स्थिति) को निर्धारित करते है। फिर भी एक परिच्छेद (पृ० 91 से 95 तक) मे उन कारको पर विचार किया गया है जो कार्य मे परिवर्तन कर देते है।

संबद्ध कारक दो भागो मे बाटे जाते है—(1) वस्तुनिष्ठ (objective) कारक जो स्वय आर्थिक प्रणाली से ही बहिर्जात अथवा बाह्य हो, और (2) व्यक्तिनिष्ठ (subjective) (अतर्जात) कारक। दूसरे प्रकार के कारको मे ये बाते सम्मिलित है—(क) मानव स्वभाव के मनोवैज्ञानिक लक्षण और (ख) सामाजिक रीतिरिवाज तथा संस्थाएँ (विशेषकर मजदूरी और लाभाश अदायगी एव प्रतिधृत कमाई (retained earnings) के संबध मे (व्यावसायिक संस्थाओ के व्यवहार प्रतिरूप) तथा सामाजिक व्यवस्थाएँ (जिनका आय के वितरण पर प्रभाव पडता है)।

जहा तक व्यक्तिनिष्ठ कारको का सबध है, "यद्यपि ये अपरिवर्तनीय नही है, तथापि असामान्य और क्राति की परिस्थितियो को छोड कर अल्पकाल मे इनमे कोई बडा परिवर्तन होने की सभावना नही है" (पृ० 91)। सुस्थापित व्यवहार प्रतिरूपो मे दृढता से स्थित होने के कारण इनके पर्याप्त स्थिर होने की सभावना है। धीरे-धीरे बदलने वाले ये कारक मूलभूत रूप से उपभोग कार्य के ढलान और स्थिति को निर्धारित करते है तथा इसे बहुत अधिक मात्रा मे स्थिरता प्रदान करने का कार्य करते है। किन्तु कभी-कभी बाह्य कारको मे शीघ्र परिवर्तन हो जाता है और ऐसी परिस्थितियो मे वे उपभोग कार्य मे महत्वपूर्ण परिवर्तन घटित कर सकते है। अब हमारे सामने दो अत्यत महत्वपूर्ण बाते है—(1) कार्य का रूप (ढलान और स्थिति) और (2) कार्य मे विचलन (**shifts**)।

केन्ज ने इन बातो पर बडी सूक्ष्म बुद्धि और अन्तर्दृष्टि से प्रकाश डाला है, किन्तु युक्ति सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत नही कि गई है। और यदि जनरल थ्योरी के प्रकाशन से लेकर अब तक के साहित्य पर दृष्टि डाली जाये, तो सरलता से कई ढग सोचे जा सकते है, जिनमे इन दो अध्यायो को और अच्छा बनाया जा सकता था। फिर भी यह कदापि नही भूलना चाहिये कि केन्ज ने 1936 मे जो कुछ लिखा, उससे साफ पता चलता है कि वे एक बिल्कुल नये स्थल पर पदार्पण कर रहे थे।

उपभोग कार्य मे व्यक्तिनिष्ठ कारक

पहिले, हमे उन कारको पर विचार करना चाहिये जो उपभोग कार्य के रूप (अर्थात् इसके ढलान और इसकी स्थिति) को निर्धारित करते हैं। "ढलान" का सबध इस बात से है कि क्या उपभोग, वास्तविक आय मे परिवर्तनो के अनुपात की अपेक्षा

कामना, (2) **तरलता (liquidity)** अर्थात् आपत्कालीन स्थितियो का सफलता-पूर्वक सामना करने की इच्छा; (3) **बढती हुई आय** अर्थात् सफल प्रबन्ध को प्रदर्शित करने की इच्छा, (4) **वित्तीय दूरदर्शिता (financial prudence)**—मूल्य-ह्रास (depreciation) अथवा अप्रचलन (obsolescence) को पाटने के लिये पर्याप्त वित्तीय व्यवस्था को निश्चित करने और ऋण चुकाने की इच्छा।

मूल्य-ह्रास और अन्य आरक्षणो के बारे मे केन्ज ने व्यावसायिक सस्थाओ के व्यवहार पर अधिक बल दिया और उन्होने यह देखा कि कितने महत्वपूर्ण ढग से यह आचरण राष्ट्रीय आय के मुकावले मे उपभोग की मात्रा (स्तर) को प्रभावित करते है। अप्रत्याशित—यद्यपि बिल्कुल अनाशसित नही—हानियो अर्थात् "पूरक लागत" को पाटने के लिये विशाल वित्तीय व्यवस्था का परिणाम यह होगा कि उपभोक्ताओ को वितरित की जाने वाली आय कम हो जायेगी। यदि इस प्रकार की "वित्तीय व्यवस्था वर्तमान देखरेख (upkeep) पर हुए वास्तविक व्यय से बढ जाती है," तो इसका यह प्रभाव होगा कि निवल (net) बचत बढ जायेगी और साथ ही उपभोग और आय के बीच अन्तर भी बढ जायगा (पृ० 99)।

किसी अप्रगामी (stationary) समाज मे मूल्य ह्रास आरक्षण (depreciation reserves) घिसे हुए एव लुप्त प्रयोग विन्यासो तथा उपकरणो के प्रतिस्थापन के लिये आवश्यक धन के ठीक बराबर हो सकते है। किन्तु व्यवसायिक उतार-चढाव होने वाले किसी गतिशील समाज मे, मूल्य-ह्रास आरक्षण, प्रतिस्थाप्य निवेश (replacement investment) द्वारा सदा सतुलित नही होते। किसी अच्छी निवेश वृद्धि के पश्चात जिसमे बहुत से सयत्रो (plants) और उपकरणो का निर्माण हो गया है, प्रतिस्थाप्य परिव्यय बहुत कम होगे, किन्तु प्रत्येक वर्ष अलग रखी हुई मूल्य ह्रास निधि अधिक होगी। इन राशियो को उपभोग से उन्ही वर्षो मे निकाल लिया जाता है, जबकि उपभोग को अधिक दृढ करने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। नये निवेश की अवश्य ही खोज की जानी चाहिये, पर केवल इसलिये नही कि उससे उस निबल बचत राशि की विस्थिति की जा सके जो व्यक्ति और निगम आजकल करना चाहते है, बल्कि नव स्थापित वार्षिक मूल्य-ह्रास प्रभार (depreciation charges) की भी विस्थिति की जा सके। इन दोनो राशियो की विस्थिति हेतु, निवेश-निकासी (outlets) प्राप्त करने की कठिनाई मदी लाने के लिये पर्याप्त हो सकती है (पृ० 99-100)।

यही नही, व्यापार चक्र को छोडकर वित्तीय दूरदर्शिता कम्पनियो को इसके लिये प्रेरित कर सकती है कि वे "उपकरणो की वास्तविक घिसावट की अपेक्षा प्रारंभिक लागत को अधिक तेजी से बट्टे खाते मे डाल दें" (पृ० 100-101)। इससे

अध्याय 4

उपभोग कार्य

[जनरल थ्योरी, अध्याय 8, 9]

कार्यात्मक सम्बन्ध और आर्थिक विश्लेषण

यदि केन्जवादी आर्थिक पद्धति मे I = S और I + C = Y जैसे पारिभाषिक समीकरण ही होते, तो जनरल थ्योरी पर कोई गम्भीर चिंतन करने का प्रश्न ही नही उठता। न तो आर्थिक विश्लेषण ही इस प्रकार की स्वत सिद्धियो से, जैसे "असली क्रय (माँग), सदा असली बिक्री (सम्भरण) के बराबर हो जाती है," कोई प्रगति कर सकता है, और न ही अर्थव्यवस्था कैसे कार्य करती है, इस विषय से सम्बन्धित हमारे ज्ञान मे इस प्रस्तावना मे कि "असली निवेश असली बचत के बराबर हो जाती है," कोई सार्थक रूप से अभिवृद्धि होती है।

किन्तु जब किसी माग अनुसूची को सम्भरण अनुसूची पर रखा जाता है, तो हमे मूल्य-निर्धारण के विषय मे कुछ ज्ञान होने *लगता है*। यही बात आय निर्धारण के केन्जवादी सिद्धान्त पर लागू होती है।

जो भी विद्यार्थी केन्ज पर लिखे गये आलोचनात्मक साहित्य का विस्तृत अध्ययन करता है प्राय उस पर यह प्रभाव पडे बिना नही रहेगा कि केन्जवादी विश्लेषण वास्तविक (ex post) अथवा प्राप्त (realized) परिमाणो (magnitudes) के शब्दो मे चलता है। पर यह ठीक नही है। पहली बात तो यह है कि केन्जवादी विश्लेषण मे आशसाओ पर ध्यान दिया जाता है। इसका हम पहले भी निर्देश कर चुके है।[1] और प्रसगानुसार आगे भी किया जायेगा। दूसरे यह विश्लेषण कार्यात्मक सबधों पर आधारित होता है। जिस क्षण कार्यों का (अनुसूचिकाओ मे प्राप्त अथवा प्रेक्षित बातो से भिन्न) सूत्रपात हो जाता है, तो हमारा ऐसी परिकल्पना से सबध हो जाता है, जिसे आर्थिक व्यवहार के प्रतिरूप की भाँति सत्यापन अथवा असिद्ध किया जा सकता है।

1—देखिये इस पुस्तक का दूसरा अध्याय।

केन्ज का विश्लेषण निष्फल वास्तविक (sterile ex post) समीकरणो के शब्दो पर नही चलता। यह आठवे अध्याय के पहले ही पैरो से एकदम स्पष्ट है जहाँ प्रथम खंड के अन्त मे परित्यक्त युक्ति को पुनरारम्भ किया है। वास्तविक समीकरण किसी भी बात को स्पष्ट नही कर पाते। इसके स्थान पर, केन्ज अपनी युक्ति को इस प्रस्तावना से प्रारम्भ करते है 'कि समस्त संभरण कार्य का समस्त मांग कार्य के साथ प्रतिच्छेदन से रोजगार की मात्रा निर्धारित होती है" (पृ० 89)।

समस्त संभरण कार्य मे ऐसे प्रतिफल हैं, जो पहिले से भली भांति ज्ञात नही है। यदि कोई है तो कम है किंतु यह तो समस्त मांग कार्य ही है जिसकी उपेक्षा की गई है। इसको स्पष्ट करने के लिए (1) उपभोग कार्य और (2) निवेश मांग कार्य, के विश्लेषण की आवश्यकता है। यह वास्तविक समीकरण $Y=I+C$ अर्थात् समस्त मांग, निवेश+उपभोग के केवल प्रस्तुत करने से बहुत भिन्न है।

केन्ज स्पष्ट करते हुए कहते है कि समस्त मांग कार्य किसी दिये हुऐ रोजगार के स्तर को उस रोजगार की मात्रा के आशंसित आगम (expected proceeds) से सम्बन्धित कर देता है (पृ० 89)। आशंसित आगम क्या होगा, यह उपभोग के आशंसित परिव्यय और निवेश के आशंसित परिव्यय पर आश्रित है (पृ० 98)। तदनुसार (1) उपभोग परिव्यय मे अधःस्थ कारको और (2) निवेश परिव्यय मे अधःस्थ कारको का विश्लेषण करना आवश्यक हो जाता है। पहले के लिये उपभोग कार्य का अध्ययन अपेक्षित है जब कि दूसरे के लिये निवेश मांग कार्य का अध्ययन होना चाहिये।

जहाँ तक उपभोग का संबध है, हम या तो उस कार्य पर विचार कर सकते हैं, जो उपभोग का रोजगार से संबध करा दे, या विकल्प रूप मे, उस कार्य पर जो उपभोग का असल आय से संबध करा दे (पृ० 90)। अल्प अवधि मे तो रोजगार और वास्तविक आय साधारणतः कम या अधिक अनुपात मे साथ-साथ बढ़ेंगे या घटेंगे। किन्तु दीर्घ अवधि मे वास्तविक आय रोजगार के साथ-साथ बढने की ओर प्रवृत्त होती है। ऐसा उन तकनीकी (technological) सुधारो के कारण होता है, जिन से प्रति व्यक्ति उपज बढ जाती है। तब भी, अल्प अवधि मे तो निपज (वास्तविक आय), रोजगार मे वृद्धि के बिना सरलता से नही बढाई जा सकती।

तदनुसार, रोजगार के साथ उपभोक्ता माग के कार्यात्मक संबध को वास्तविक आय से संबद्ध उपभोग व्यय के कार्यात्मक संबध (वास्तविक रूप मे) परिणत करना अनुमत और उपयोगी उपागम है। इसलिये कार्य $D_1=\chi(N)$ को $C=C(Y)$ मे रूपान्तरित किया जा सकता है। यहाँ C वास्तविक रूप मे उपभोग होगा और Y वास्तविक आय होगी, जैसा हम पहले देख चुके हैं। केन्ज ने मजदूरी दरो (मजदूरी

इकाइयो) के सूचकाक द्वारा अवास्तविक मुद्रा मूल्यो (nominal monetary values) को वास्तविक मूल्यो मे अवमूल्यन (deflation) कर दिया। यही कारण है कि उन्होंने उपभोग कार्य को $C_w = X(Y_w)$ ही माना। इस समीकरण मे नीचे लिखा w यह सूचित करता है कि C और Y को मजदूरी इकाइयो के रूप मे दिखाया गया है (पृष्ट 90)।

इस कार्य को उचित ठहराने के लिये केन्ज ने यह परिकल्पना उपस्थित की कि उपभोग मुख्यतया वास्तविक आय पर आश्रित है[1] (पृ० 96)। जिस प्रकार परिचित माग वक्र के विषय मे मूल्य का किसी वस्तु की ली हुई मात्रा का मुख्य निर्धारक छाटा जाता है, वैसे ही आय को उपभोग का मुख्य निर्धारक छाटा जाता है। जहाँ तक उस प्रकार के किसी कार्यात्मक सबध का प्रश्न है, यह सदा मान लिया जाता है कि अन्य सभी निर्धारक उपादान दिये हुए होते हैं और अपरिवर्तित रहते हैं। अन्य बातें यदि समान रहे, तो उपभोग कार्य से यह पता चलता है कि आय मे दिये हुए परिवर्तनो से उपभोग मे किन परिवर्तनो की आकाक्षा की जा सकती है।

उपभोग और आय के बीच कार्यात्मक सबध को एक ऐसी अनुसूची अथवा सारिणी के रूप मे वर्णन किया जा सकता है जो प्रत्येक कल्पित आय स्तर पर समस्त उपयुक्त राशि को पर्दाशत करती है, या फिर इस सम्बन्ध को किसी आरेख (diagram) मे वक्र के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है।

अब यह देखिये, कि यदि "अन्य कारको" मे कोई सार्थक परिवर्तन हो जाये, तो वक्र ऊपर अथवा नीचे हट जायेगा। यदि "अन्य कारको" मे से कोई परिवर्तित हो जायें, तो हम यह कह सकते हैं कि कार्य के प्राचल (**parameters**) बदल गये हैं। अत परिचित माग वक्र का एक महत्वपूर्ण प्राचल "उपभोक्ता रुचि" है। यदि रुचिया बहुत बदल जाये, तो, उदाहरणार्थ, सुअर के मास का माग-वक्र तीव्र गति से बढ सकता है। उसी मूल्य पर पहले की अपेक्षा चीजो की माग अधिक हो जायेगी। अत जब भी कभी कार्य का प्राचल बदलेगा, तो वक्र भी बदल जायेगा (पृ० 96)।

अध्याय 8 और 9 के अधिकाश भाग मे उन कारको पर विचार किया गया है, जो उपभोग कार्य की तह मे हैं और इसके रूप (अर्थात् वक्र के ढलान और उसको

---

[1]—उपभोक्ता व्यय (अर्थात उपभोक्ता स्थायी माल) की एक श्रेणी की माग बहुत सीमा तक पहले से प्राप्त स्टॉक पर आश्रित होती है। अत' जब बाजार में नई मोटर गाडियों और उपभोक्ता स्थायी माल का बहुत बडा स्टाक होगा, तो माग कम हो जायेगी, चाहे, उदाहरणार्थ निरन्तर भारी सैनिक व्यय के कारण अमल आय और रोजगार ऊँची मात्रा में बने ही रहें।

स्थिति) को निर्धारित करते है। फिर भी एक परिच्छेद (पृ० 91 से 95 तक) मे उन कारको पर किया गया है जो कार्य मे परिवर्तन कर देते है।

संबद्ध कारक दो भागो मे बाटे जाते है—(1) वस्तुनिष्ठ(objective)कारक जो स्वयं आर्थिक प्रणाली से ही बहिर्जात अथवा बाह्य हो, और (2) व्यक्तिनिष्ठ (subjective) (अतर्जात) कारक। दूसरे प्रकार के कारको मे ये बाते सम्मिलित है—(क) मानव स्वभाव के मनोवैज्ञानिक लक्षण और (ख) सामाजिक रीतिरिवाज तथा संस्थाएँ (विशेषकर मजदूरी और लाभाश अदायगी एव प्रतिधृत कमाई (retained earnings) के संबंध मे (व्यावसायिक संस्थाओ के व्यवहार प्रतिरूप) तथा सामाजिक व्यवस्थाएँ (जिनका आय के वितरण पर प्रभाव पडता है)।

जहा तक व्यक्तिनिष्ठ कारको का संबंध है, "यद्यपि ये अपरिवर्तनीय नही है, तथापि असामान्य और क्रांति की परिस्थितियो को छोड कर अल्पकाल मे इनमे कोई बडा परिवर्तन होने की संभावना नही है" (पृ० 91)। सुस्थापित व्यवहार प्रतिरूपो मे दृढता से स्थित होने के कारण इनके पर्याप्त स्थिर होने की संभावना है। धीरे-धीरे बदलने वाले ये कारक मूलभूत रूप से उपभोग कार्य के ढलान और स्थिति को निर्धारित करते है तथा इसे बहुत अधिक मात्रा मे स्थिरता प्रदान करने का कार्य करते है। किन्तु कभी-कभी बाह्य कारको मे शीघ्र परिवर्तन हो जाता है और ऐसी परिस्थितियो मे वे उपभोग कार्य मे महत्वपूर्ण परिवर्तन घटित कर सकते है। अब हमारे सामने दो अत्यंत महत्वपूर्ण बाते है—(1) कार्य का रूप (ढलान और स्थिति) और (2) कार्य मे विचलन (shifts)।

केन्ज ने इन बातो पर बडी सूक्ष्म बुद्धि और अन्तर्दृष्टि से प्रकाश डाला है, किन्तु युक्ति सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत नही कि गई है। और यदि जनरल थ्योरी के प्रकाशन से लेकर अब तक के साहित्य पर दृष्टि डाली जाये, तो सरलता से कई ढग सोचे जा सकते है, जिनमे इन दो अध्यायो को और अच्छा बनाया जा सकता था। फिर भी यह कदापि नही भूलना चाहिये कि केन्ज ने 1936 मे जो कुछ लिखा, उससे साफ पता चलता है कि वे एक बिल्कुल नये स्थल पर पदार्पण कर रहे थे।

उपभोग कार्य मे व्यक्तिनिष्ठ कारक

पहिले, हमे उन कारको पर विचार करना चाहिये जो उपभोग कार्य के रूप (अर्थात् इसके ढलान और इसकी स्थिति) को निर्धारित करते हैं। "ढलान" का संबंध इस बात से है कि क्या उपभोग, वास्तविक आय मे परिवर्तनो के अनुपात की अपेक्षा

कम बढ़ता है अथवा नहीं। अर्थात् जैसे आय केवल निरपेक्ष रूप से ही नहीं, बल्कि प्रतिशत रूप से भी बढ़ती है तो क्या उपभोग और आय में अन्तर बढ़ता जाता है? यदि ढलान दिया हुआ हो, तो स्थिति (अर्थात वक्र स्तर) फिर भी निर्धारित करनी होती है। दूसरे शब्दों मे, यह मालूम करना होता है कि किसी दी हुई आय मे उपभोग की मात्रा क्या होगी, या किसी दी हुई आय पर औसत उपभोग प्रवृत्ति $\frac{C}{Y}$ कितनी ऊँची रहेगी।

जैसा हम ऊपर देख ही चुके है, केन्ज के व्यक्तिनिष्ठ उपादान (पृ० 107 से 110 तक) उपभोग कार्य म आधारभूत रूप से अन्तर्निहित है और उसको निर्धारित करते हैं। यहा हमारा सम्बन्ध उन व्यवहार प्रतिरूपो से है, जिन्हे मानव स्वभाव की मनोवृत्ति और आधुनिक सामाजिक पद्धति की संस्थानिक व्यवस्था द्वारा विशेषकर आय के वितरण पर नियन्त्रण रखने वाली संस्थाओ द्वारा निर्धारित होते हैं।

सबसे पहले वे प्रयोजन (motives) आते हैं 'जो व्यक्तियो को अपनी आय मे से व्यय करने से रोकते है।" केन्ज ने इस प्रकार के आठ प्रयोजन बनाये है। वे इन बातो से सम्बन्धित हैं—अप्रत्याशित आकस्मिक व्यय के लिये आरक्षण (reserves) का निर्माण; भावी प्रत्याशित आवश्यकताओ के लिय व्यवस्था, भविष्य मे परिवर्धित आय का आनन्द लेने की इच्छा से, वर्तमान आय मे से धन को निवेश मे लगाना, जिससे ब्याज द्वारा भावी आय को बढाया जा सके; काम-काज करने के लिये स्वच्छन्दता एवं शक्ति की भावना का आनन्द, "सट्टा या अन्य व्यवसायिक प्रयोजनाओ (business projects) को चलाने के हेतु सफल सफल योजना सचालन शक्ति (**messe de manoeuvre**)" की प्राप्ति, उत्तरदान करने की इच्छा से सपत्ति की प्राप्ति; और कंजूसी की भावना के तुष्टिमात्र के हेतु (यह दशा कुछ व्यक्तियो पर लागू होती है)।

व्यक्तिनिष्ठ कारक (अभिप्रेरणा), व्यवसायिक निगमो एवं सरकारी निकायो के व्यवहार प्रतिरूपो पर भी लागू होते हैं। कानूनी सत्ताओ के रूप मे वे बिलकुल सामान्य होते है, तथापि वास्तव मे वे उस प्रकार के उपकरण हैं, जिनके द्वारा जीवित मनुष्य कार्य करते हैं। कभी-कभी यह कहा जाता है कि केन्ज का "मनोवैज्ञानिक नियम" केवल उपभोक्ताओं पर ही लागू होता है, पर यह ठीक नहीं है। इसके अतिरिक्त, उन्होंने निश्चित रूप से व्यक्तिनिष्ठ उपादानो के अन्तर्गत न केवल "मानव स्वभाव के मनोवैज्ञानिक लक्षणो" को ही बल्कि "सामाजिक रीतिरिवाज और संस्थाओ" को भी समाविष्ट किया (पृ० 91) व्यवसायिक निगमो एव सरकारो के व्यवहार का जहां तक सम्बन्ध है, उन्होने सचय (accumulation) के लिये प्रयोजन इस प्रकार बतलाए—

(1) उद्यम (**enterprise**), अर्थात् बडे-बडे कार्य करने एव विस्तार करने की

कामना, (2) **तरलता (liquidity)** अर्थात् आपत्कालीन स्थितियो का सफलता-पूर्वक सामना करने की इच्छा; (3) **बढती हुई आय** अर्थात् सफल प्रबन्ध को प्रदर्शित करने की इच्छा, (4) **वित्तीय दूरदर्शिता (financial prudence)**—मूल्य-ह्रास (depreciation) अथवा अप्रचलन (obsolescence) को पाटने के लिये पर्याप्त वित्तीय व्यवस्था को निश्चित करने और ऋण चुकाने की इच्छा।

मूल्य-ह्रास और अन्य आरक्षणो के बारे मे केन्ज ने व्यावसायिक सस्थाओ के व्यवहार पर अधिक बल दिया और उन्होने यह देखा कि कितने महत्वपूर्ण ढग से यह आचरण राष्ट्रीय आय के मुकाबले मे उपभोग की मात्रा (स्तर) को प्रभावित करते है। अप्रत्याशित—यद्यपि बिल्कुल अनाशसित नही—हानियो अर्थात् "पूरक लागत" को पाटने के लिये विशाल वित्तीय व्यवस्था का परिणाम यह होगा कि उपभोक्ताओ को वितरित की जाने वाली आय कम हो जायेगी। यदि इस प्रकार की "वित्तीय व्यवस्था वर्तमान देखरेख (upkeep) पर हुए वास्तविक व्यय से बढ जाती है," तो इसका यह प्रभाव होगा कि निवल (net) बचत बढ जायेगी और साथ ही उपभोग और आय के बीच अन्तर भी बढ जायगा (पृ० 99)।

किसी अप्रगामी (stationary) समाज मे मूल्य ह्रास आरक्षण (depreciation reserves) घिसे हुए एव लुप्त प्रयोग विन्यासो तथा उपकरणो के प्रतिस्थापन के लिये आवश्यक धन के ठीक बराबर हो सकते है। किन्तु व्यवसायिक उतार-चढाव होने वाले किसी गतिशील समाज मे, मूल्य-ह्रास आरक्षण, प्रतिस्थाप्य निवेश (replacement investment) द्वारा सदा सतुलित नही होते। किसी अच्छी निवेश वृद्धि के पश्चात जिसमे बहुत से सयत्रो (plants) और उपकरणो का निर्माण हो गया है, प्रतिस्थाप्य परिव्यय बहुत कम होगे, किन्तु प्रत्येक वर्ष अलग रखी हुई मूल्य ह्रास निधि अधिक होगी। इन राशियो को उपभोग से उन्ही वर्षो मे निकाल लिया जाता है, जबकि उपभोग को अधिक दृढ करने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। नये निवेश की अवश्य ही खोज की जानी चाहिये, पर केवल इसलिये नही कि उससे उस निबल बचत राशि की विस्थिति की जा सके जो व्यक्ति और निगम आजकल करना चाहते है, बल्कि नव स्थापित वार्षिक मूल्य-ह्रास प्रभार (depreciation charges) की भी विस्थिति की जा सके। इन दोनो राशियो को विस्थिति हेतु, निवेश-निकासी (outlets) प्राप्त करने को कठिनाई मदी लाने के लिये पर्याप्त हो सकती है (पृ० 99-100)।

यही नही, व्यापार चक्र को छोडकर वित्तीय दूरदर्शिता कम्पनियो को इसके लिये प्रेरित कर सकती है कि वे "उपकरणो की वास्तविक घिसावट की अपेक्षा प्रारम्भिक लागत को अधिक तेजी से बट्टे खाते मे डाल दें" (पृ० 100-101)। इससे

निबल बचत बढ जायेगी एव उपभोग और आय के बीच का अन्तर भी बढ जायेगा। स्थानीय सरकारो और अर्ध-राजनीतिक प्राधिकारियो द्वारा स्थापित अत्यधिक शोधन-निधि (excessive sinking funds) का भी वही प्रभाव हो सकता है (पृ० 100)। जिस समाज मे पहले ही पूँजी का भारी स्टाक होगा, उसे इस समस्या का सामना करना पडेगा, कि मूल्य-ह्रास प्रभार का वास्तविक पूँजीगत सपूर्ति (replenishment) से इस प्रकार ठीक-ठीक समजन हो जाये, कि उपभोग और आय के बीच का अन्तर असामान्य रूप से न बढ जाये (पृ० 104)।

स्पष्ट रूप से केन्ज के व्यवहार-प्रतिरूप उपभोक्ताओ तक ही सीमित नही हैं। उनकी बचत के अ तर्गत व्यक्तियो, व्यावसायिक निगमो एव सरकारी निकायो की बचत भी सम्मिलित है।[1] "आर्थिक समाज की सस्थाओ और व्यवस्थाओ के अनुरूप" तो बचत को प्रभावित करने वाले सभी प्रयोजनो की दृढता "बहुत अधिक बदल जायेगी" (पृ० 109)।

इस प्रकार ये ही हैं वे मनोवैज्ञानिक एव सस्थानक उपादान जो उपभोग कार्य की स्थिति और ढलान को निर्धारित करते हैं। किन्तु वक्र के सामान्य ढलान के विषय मे कुछ और अधिक कहने की भी आवश्यकता है।

केन्ज ने इस प्रश्न का उत्तर बडी सावधानी से दिया। सामान्य ज्ञान और अनुभव के आधार पर, उन्होने इस मूलभूत नियम के रूप मे यह प्रस्थापित किया कि सामान्य और औसत रूप से जैसे ही आय बढेगी, वैसे ही उपभोग बढ जायेगा, किन्तु उतना नही बढेगा, जितनी की आय मे वृद्धि होगी (पृ० 96)। इसलिए उपभोग कार्य के ढलान के सम्बन्ध मे उन्होने एक (केवल एक ही) आवश्यक लक्षण का उल्लेख किया। वह लक्षण यह था कि उपभोग की सीमान्त प्रवृति $\frac{\triangle C}{\triangle Y}$ इकाई कम होनी चाहिये।[2]

---

[1]—केन्ज का उपभोग कार्य, उपभोग का राष्ट्रीय आय से स बन्ध स्थापित कर देता है। यह उपभोग का "स्वायत्त आय" (disposable income) से उस रूप में सम्बन्ध नहीं कराता, जिस प्रकार कि उस शब्द का अमरीकी कॉमर्स (वाणिज्य) विभाग ने परिभाषित किया है।

[2]—यह देखा जा चुका है कि आर्थिक पद्धति की दृढता इस नियम पर आश्रित है कि सीमांत उपभोग प्रवृति इकाई से कम होती है। यदि ऐसा न हो, तो निवेश को कम या अधिक करने के विस्फोटक प्रभाव होंगे। फिर भी देखिये ट्रेड साइकल (आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1950) में हिक्स द्वारा किया गया विश्लेषण। यदि त्वरक (accelerator) के विपरीत कार्य के कारण पूर्ण रोजगार अपने शिखर तक पहुँचा हुआ हो, तो सीमांत उपभोग प्रवृति (चाहे एक से कम हो) और त्वरक के उच्च मूल्यों में गिरावट आ सकती है।

यहाँ पर हमे एक सावधानी बरतनी चाहिये । कुछ समालोचको ने यह मान लिया है कि यदि केन्ज की बात ठीक होती, तो आय और उपभोग मे सभी ऐतिहासिक परिवर्तन इसी नियम के अनुसार होते । पर यह ठीक नही है । ऐतिहासिक परिवर्तन, केवल उपभोग और आय के बीच सामान्य सम्बन्ध को नही, बल्कि उपभोग कार्य में विचलन भी सूचित कर सकते है । यहाँ पर स्वय उपभोग कार्य और कार्य मे हटाव के बीच भेद करना आवश्यक है । उदाहरणार्थ, द्वितीय विश्व युद्ध मे, अमरीका में, आय की अपेक्षा उपभोग असाधारण निम्नस्तर तक गिर गया । इसके कारण इस प्रकार थे—(1) क्रय करने की असमर्थता (राशन-व्यवस्था और टिकाऊ माल की अप्राप्यता), (2) युद्ध काल मे लगे भारी कर, और (3) बचत करने के लिये देश-भक्तिपूर्ण अपील । जब युद्ध समाप्त हुआ, तो व्यय-शक्ति पर से ये अवरोध हटा लिये गये । इसका परिणाम यह हुआ कि इन परिस्थितियों मे आय की अपेक्षा उपभोग तेजी से बढ गया । और अधिक सामान्य सम्बन्ध स्थापित होने तक के सक्रमण काल मे यह आवश्यक रूप से ठीक था कि उपभोग (आय की अपेक्षा असाधारण निम्न-स्तर से प्रारम्भ होकर) आय की अपेक्षा अनुपात मे बहुत तेजी से बढे । सक्रमण काल मे, उपभोग की वृद्धि आय की वृद्धि से पूर्णतया अधिक थी । कुछ लेखको ने दृढता-पूर्वक यह कहा कि इससे यह सिद्ध हो गया है कि केन्ज गलती पर थे । पर यह आलोचना स्पष्टतया ठीक नही है । ऐतिहासिक दत्तसामग्री (historical data) (जो उदाहरणार्थ, युद्ध की असामान्य परिस्थितियो से शान्तिकालीन परिस्थितियो तक सक्रमणो को सूचित करती है) के विषयो मे केन्ज ने यह नही कहा कि उपभोग, आय की अपेक्षा अनुपात मे कभी भी अधिक न होगा । उन्होने यह तो कहा कि सामान्य परिस्थितियो मे और उन असाधारण उपादानो को छोड कर जो कार्यात्मक सम्बन्ध मे हटाव ला सकते है आय मे कुल वृद्धि का कुछ भाग बचा लिया जायेगा । दूसरे शब्दो मे जब तक असाधारण कारण इस सामान्य सम्बन्ध मे विघ्न डालने के लिये हस्तक्षेप न करे, उपभोग मे वृद्धि आय की निर्पेक्ष वृद्धि से कम होगी ।

इस न्यूनतम (**minimum**) आधार पर यह स्पष्ट है कि अनुपात मे उपभोग उतनी ही तेजी से बढ सकता है, जितनी की आय । केन्ज ने यह नहीं कहा कि उपभोग अनुपात मे आय की अपेक्षा कम बढेगा । अत, उदाहरणार्थ, सभी आय स्तरो पर उपभोग, आय का 90 प्रतिशत हो सकता है । फिर भी इस न्यूनतम आधार पर इस महत्वपूर्ण तथ्य की उपेक्षा नही की जा सकती कि यदि आय मे परिवर्तनो के अनुपात मे उपभोग मे वृद्धि होती है, तो जैसे ही आय बढेगी, निर्पेक्ष रूप से उपभोग

और आय के बीच का अन्तर अधिक हो जायेगा। इस प्रकार से बचाई हुई राशि बढती ही चली जायेगी।

इसलिये कुजनेट्स (Kuznets) की दीर्घकालीन दत्तसामग्री और केन्ज के आधारभूत नियम मे कोई परस्पर विरोध नही है, जैसा कि कभी-कभी गलती से अनुमान कर लिया जाता है। कुजनेट्स की दत्तसामग्री यह सूचित करने की ओर प्रवृत्त है कि दीर्घकाल म बचाई गई (और निवेश मे लगाई गई) आय का प्रतिशत, उदाहरणार्थ, कम या अधिक म लगभग 12 प्रतिशत पर स्थिर रही है। इस प्रकार बचाई हुई आय का अनुपात पर्याप्त मात्रा मे स्थिर रहा। किन्तु आय के उच्च निर्पेक्ष (**absolute**) स्तरो पर अपेक्षाकृत अधिक निर्पेक्ष राशि बचाई गई।

केन्ज ने चक्रीय और चिरकालिक उपभोग कार्य के बीच कोई स्पष्ट भेद नही किया। वास्तव मे, यदि हम आय और उपभोग म अनुपाती सम्बन्ध मान ले (जैसा हम ऊपर देख ही चुके हैं यह केन्ज के आधारभूत नियम के अन्तर्गत आ जाता है) तो चक्रीय और चिरकालीन कार्यों के बीच कोई भेद करने की आवश्यकता नही है, क्योकि इस आधार पर वे बिल्कुल एक से ही होगे। उस प्रकार का कार्य, जैसा कि चित्र न० 3 के वक्र मे दिखाया गया है उद्गम के O विन्दु से प्रारम्भ होगा। इन अवस्थाओ मे औसत और सिमान्त उपभोग-प्रवृत्ति बराबर रहेगी और दोनो ही इकाई से कम मूल्य पर स्थिर रहेंगी।

फिर भी सभी अनुभवाश्रित (empirical) साक्ष्य से यह पता चलता है कि जैसे व्यावसायिक चक्र मे आय गिरेगी, तो आय के अनुपात की अपेक्षा उपभोग के अनुपात मे कम गिरावट होगी, और फिर जब चक्रीय स्थिति मे आय बढेगी, तो आय की अपेक्षा उपभोग मे अनुपाती कम वृद्धि होगी, पर चिरकालीन अवस्था मे ऐसी स्थिति चाहे न भी हो।

चक्रीय सबध के विपरीत, उपभोग का आय से चिरकालिक सम्बन्ध एक ऐसा विषय है जिसके सम्बन्ध मे बहुत अधिक विवाद रहा है, और इसलिए यह उपयोगी सिद्ध होगा यदि मैं अपनी वह सम्मति प्रकट करूँ जिसे मैंने 1932, 1940 और 1941 की प्रकाशित सामग्री मे व्यक्त किया है। जनरल थ्योरी के प्रकाशन से कई वर्ष पूर्व अर्थात 1932 के प्रकाशन के सदर्भ मे मैंने यह सुझाव दिया था कि दीर्घकाल मे उपभोग मानक (*consumption standards*) कम या अधिक मात्रा मे वास्तविक आय मे वृद्धियों के अनुपात मे बढ़ने की ओर प्रवृत्त होते हैं। वास्तव में यह कोई विलक्षण बात नही थी, क्योकि साधारण प्रवृत्ति के रूप मे यह सोचना कठिन है कि कोई अर्थशास्त्री क्या कभी इससे विपरीत सोच सकता था। कुछ अर्थशास्त्रियो का

(सभवत वे ज वा भी) निस्सदह यह विश्वास हो सकता था कि इस साधारण प्रवृत्ति के होते हुए भी क्योकि देश पहले से अधिक धनी हो गये है, आय की अपेक्षा उपभोग के दीर्घकालिक अनुपात (ratio) मे कुछ गिरावट आ गई है। निस्सदेह यह हो सकता है। दीर्घकालिक स्थिर अनुपात (long run constant ratio) सूचित करने वाली कुजनेटस की दत्तसामग्री निश्चित रूप से इतनी सही नही है कि उसे अतिम मान लिया जाये। पर मेरे विचार का चाहे गलत हो या ठीक प्रारम्भ से ही कुजनेटस के दृष्टिकोण की ओर झुकाव रहा है। वास्तव म 1932 के उपर निर्दिष्ट ग्र थ में मैने इस साधारण समस्या पर बहुत कुछ अभी हाल के ही लेखको के ढग स विचार किया था अर्थात इस रूप से कि प्रत्येक व्यक्ति अपने उपभोग मानक को लारेज के आय वितरण वक्र (Lorenz income distribution curve) मे उसकी अपनी स्थिति के अनुरूप बनाने की ओर प्रवृत्त होगा।[1] निस्सदेह यह वाद विवाद उस सदृढ उपभोग कार्य सिद्धात के रूप म नही ढाला गया था जिसे केन्ज ने बाद म अपनी जनरल थ्योरी मे विकसित किया।

परन्तु बाद म मैने उस अध्याय म जो द स्ट्रक्चर आव द अमेरिकन ईकानमी[2] जून (1940 म प्रकाशित) के लिए लिखा गया था, उपभोग कार्य के चक्रीय और चिरकालिक दोनो पहलुओ पर विचार किया था। सबद्ध अश इस प्रकार है—

> चक्रीय रूप म जैसे जैसे आय बढती और घटती है वैसे ही बचाई हुई आय का प्रतिशत भी बढता और घटता है। फिर भी यदि कोई वास्तविक आय म बढती हुई चिरकालिक प्रवृत्ति पर अन्य रूप म ध्यान केद्रीत करे तो

[1]—देखिये मेरी पुस्तक इकनामिक स्टेबिलाइजेशन इन एन अनबैलन्स्ड वर्ल्ड (**Economic Stabilization in an Unbalanced World**) (प्रकाशक) हरकोट ब्रेस ऐण्ड क० न्यू० 1932 न 373 374 पृष्ठ इस विषय पर और विस्तार से जानने के लिये देखिये मेरी ही दूसरी पुस्तक बिजनिस साइकल्ज ऐण्ड नेशनल इकम, (प्रकाशक) डब्ल्यू० डब्ल्यू० नार्टन ऐण्ड क० 1951 व 164 170 पृष्ठ।

[2]—द स्ट्रक्चर आव द अमेरिकन इकनामी भाग 2 टुवार्ड फुल यूस आव रिसोर्सेज (Toward Full Use of Resources) जून 1940 पृ० 32। जब कुजनेटस की अनुभवाश्रित दत्त सामग्री प्रथम बार सितम्बर 1940 के फिलाडल्फिया कान्फ्रेंस में प्रस्तुत की गई, यह अध्याय उससे तीन मास पूर्व प्रकाशन हुआ था इस अध्याय को मैने अपनी पुस्तक फिस्कल पालिसि एण्ड बिजिनिस साइकल्स (प्रकाशक) डब्ल्यू० डब्ल्यू० न न एण्ड क० 1941 के 15वें अध्याय के रूप में पुन प्रस्तुत किया फिस्कल पालिसि एण्ड बिजनिस साइकल्स का पृ० 233 भी देखिये।

ऐसा कोई अंतिम प्रमाण नहीं मिलता, जिससे यह सिद्ध हो जाये कि पहिले की अपेक्षा आय का अधिक प्रतिशत बचाया जाता है। पर यदि हम पूर्व कालो की भांति आय का वही प्रतिशत (चक्र की अनुरूपी अवस्थाओ (corresponding phases पर) बचाते हैं, तो इससे यह परिणाम निकलता है कि बचाई गई राशि अपेक्षाकृत अधिक है। ऐसा इसलिए है कि वास्तविक आय बढ़ गई है।"

अर्थशास्त्री बहुत समय से ही उस अंतर से परिचित हैं जो आय के अनुसार उपभोग की चक्रीय तथा चिरकालिक गतियो के बीच विद्यमान है। महाद्वीपीय चक्र सिद्धांतियो ने इस बात पर अधिक बल दिया कि आय के विचार से चक्रीय अवस्था मे, उपभोग की प्रतिशत रूप मे घटा-बढ़ी अपेक्षाकृत स्थिर रहती है। पर अपेक्षाकृत दीर्घकालिक दृष्टिकोण अपनाने पर, सामान्य प्रेक्षण के आधार पर तथा व्यापक अध्ययनो के आधार पर जैसे बाऊली (Bouley) एव स्टेम्प के द्वारा कम अधिक मात्रा मे किए गये थे, आय की वृद्धि के अनुपात मे उपभोग मानको के वृहत् उतार-चढाव से, अर्थशास्त्री साधारणतया बहुत अधिक प्रभावित हुए। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि उपभोग दीर्घकाल मे आवश्यक रूप से आय का दृढ निश्चित प्रतिशत रहता है। वास्तव मे कुजनेट्स की दत्तसामग्री पर्याप्त घट बढ की ओर सकेत करती है, और इसमे सदेह नही कि बहुत से कारण इस अनुपात को बदल सकते है। आर्थिक इतिहास की दिशा पर थोडा-सा भी चिंतन इस सुस्पष्ट तथ्य को प्रकट कर देता है कि उपभोग यदि मोटे तौर पर सोचा जाये तो गत 150 वर्षों मे हुई उत्पादकता मे महान वृद्धि के अनुपात मे लगभग बढा है।

इस सामान्य ज्ञान मे, जो दीर्घकाल से तथा विस्तृत रूप से मान्य था, केन्ज ने निस्सदेह महत्वपूर्ण योगदान किया। वह था उपभोग की सीमात प्रवृत्ति के साथ उपभोग आय अनुसूची का परिशुद्ध निरूपण। और इससे भी अधिक महत्वपूर्ण था उस सिद्धान्त का विकास, जिसमे समस्त माँग के निर्धारण से सबद्ध इस और अन्य कार्यों का एकीकरण कर दिया गया है। इससे पूर्व का सामान्य ज्ञान और आय के सम्बन्ध मे उपभोग के चक्रीय और चिरकालिक व्यवहार के विषय मे अपेक्षाकृत अस्पष्ट अवधारणाओ ने किसी सिद्धान्त को प्रस्तुत नही किया।

जैसा हम देख चुके हैं, केन्ज ने चक्रीय गति और चिरकालिक उपनतियो के बीच स्पष्ट भेद स्थापित नहीं किया। फिर भी इस विषय पर व्यापक भ्रांति के कारण, यहाँ एक बार फिर बल देना आवश्यक है कि केन्ज द्वारा बडी सावधानी से प्रतिपादित आधार तत्व कुजनेट्स की दत्तसामग्री से असगत नही है।

उपभोग कार्य की अल्पकालीन (चक्रीय) आकार के सम्बन्ध में केन्ज ने कोई दृढ़ मत अभिव्यक्त नहीं किया। फिर भी उन्होंने यह मानना उचित ही समझा कि सामान्यतया उपभोग आय में वृद्धियों के अनुपात में कम बढ़ेगा (पृ० 97)। फिर भी हिक्स ने अपनी पुस्तक ट्रेड साइकल में यह मत व्यक्त किया है कि इसे मानने का कोई अन्तर्निहित कारण प्रतीत नहीं होता। मुझे ऐसा कोई विश्वासप्रद सैद्धान्तिक कारण ज्ञात नहीं है कि वह अनुपात जिसमें आय उपभोग और बचत के बीच बँट जाती है आय में परिवर्तन होने से एक या दूसरी ओर क्यों बदले।[1] जैसा पहिले देखा जा चुका है कि यदि यह दृष्टिकोण सही है तो निस्सन्देह यह केन्ज के आधारभूत नियम के पूर्णतः अनुरूप होगा। किन्तु अनुभवाश्रित दत्तसामग्री और गत पचास वर्षों में लगभग सभी चक्र सिद्धान्तों का मत इस हिक्सवादी सुझाव के विपरीत है। अनुभवाश्रित दत्तसामग्री निश्चित रूप से यह दिखलाती प्रतीत होती है कि वास्तव में उपभोग वास्तविक आय में उतार चढ़ाव के अनुपात से, चक्रीय रूप में कम बढ़ता और घटता है।

यदि हम इस स्थिति को स्वीकार भी कर लें तो यह अनुभवाश्रित तथ्य आवश्यक रूप से इस बात को प्रकट नहीं करता कि उपभोग का आय से ठीक-ठीक क्या कार्यात्मक सम्बंध है। निस्सन्देह वह ठीक ठीक हिक्स की परिकल्पना के अनुरूप हो सकता है। इस परिकल्पना को उस वक्र द्वारा सूचित किया जा सकता है जो उद्गम के बिन्दु O से चलता है। अपेक्षाकृत सपाट अनुभवाश्रित (flatter empirical) ढलान का (ऐसा प्रतीत होगा कि) उपभोग व आय के समजन की प्रक्रिया में पश्चताओं (lags[2]) द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। पर यह बिल्कुल ठीक नहीं है। पश्चताओं का अर्थ यह होगा कि उपभोग एक या दो पग पीछे था। निस्सन्देह ये पश्चताएं वर्तन बिंदुओं (turning points) पर स्पष्ट हो जायगी। यदि उपभोग एक बार नीचे या ऊपर (की ओर चल पड़े तो सम्भवतः अनुपात में यह उतनी तेजी से चलेगा जितनी कि आय। अतः पश्चायित समजन (lagged adjustment) कठिनाई से ही ढलान (अर्थात 45° की रेखा को पार करने) को स्पष्ट कर सकता है। वास्तव में जितनी ही अधिक पश्चता समय में बट जायगी उतना ही अधिक पूर्णतः पश्चायित अनुक्रिया अनुभवाश्रित दत्तसामग्री द्वारा प्रदर्शित ढलान की पर्याप्त व्याख्या करने में समर्थ होगी।

---

[1]—हिक्स, उपर्युक्त रचना में, पृ० 36।

[2]—वही, अध्याय 3।

केन्ज ने यह स्वीकार किया कि पश्चताएँ कार्य के ढलान को स्पष्ट कर सकती हैं। उन्होंने यह स्पष्ट रूप से समझ लिया कि उपभोग की आय-परिवर्तनों से समजन प्रक्रिया किसी पश्चायित समजन को अन्तर्ग्रस्त कर सकता है। अल्पकाल मे, स्वभावो को "पर्याप्त समय नही मिलता" कि वे स्वय को आय परिवर्तनो के अनुरूप बना सकें। व्यय-समजन अपूर्ण ढग से घटित होगे। यदि आय बढती है, तो प्रारम्भ मे बचत सामान्य गति से अधिक बढेगी। यह सम्भावना होगी, क्योकि थोडे समय के लिये उपभोग पीछे रह जायेगा यदि आय गिर जाती है तो उपभोग भी शिथलता से घट जायेगा और इसलिए प्रारम्भ मे बचत एक दम गिर जायेगी। यह सब स्पष्ट रूप से जनरल थ्योरी के पृष्ठ 97 पर पहले पैराग्राफ मे दिखाया गया है।

मान लीजिये कि ढलान (चित्र न० 3 मे वक्र B) वास्तव म एक ठीक कार्यात्मक सबध (केवल पश्चता ही नही) को प्रदर्शित करता है। परन्तु इसको कैसे समझाया जाये। यह युक्ति दी जा सकती है, कि जिस प्रकार की केन्ज ने (पृ० 97 के अतिम पैराग्राफ मे) दी कि सामान्यत. जैसे ही किसी व्यक्ति और उसके परिवार की वास्तविक आय और उसकी तात्कालिक प्रधान आवश्यकताओं से अधिक हो जाती है, तो आय का अपेक्षाकृत अधिक अनुपात बचाया जाएगा। दूसरी ओर पृ० 18 के प्रथम पैराग्राफ के अनुसार यदि आय बहुत निम्नस्तर तक गिर जाये, तो उपभोग वास्तव मे इससे भी अधिक गिर सकता है और मारक्षणो द्वारा अर्थव्यवस्थित होने के कारण, उपभोग, आय से अधिक हो सकता है। इस तरह प्राप्त उच्च उपभोग मानको पर आधारित स्वाभाविक व्यवहार मे जितनी आय घटती है उपभोग को उसी अनुपात मे गिरने से रोक देगे।(इसके अतिरिक्त बेरोजगारी सहायता प्रदान करके, सरकारी नीति उपभोग के स्तर को बनाये रखने की ओर प्रवृत्ति करेगी)। यदि ऐसी स्थिति हो, तो अनुभवाश्रित सापेक्ष रूप मे "सपाट' (empirically relatively "flat") उपभोग वक्र ऐसे सामान्य व्यवहार-प्रतिरूप को प्रदर्शित करेगा जो एक वास्तविक कार्य है और जो केवल परिवर्तन के लिये पश्चायित प्रतिक्रिया-मात्र नही है।

ऊपर उद्धृत किये गये पैराग्राफो म केन्ज स्पष्टत दो मुख्य स्पष्टीकरणो की ओर सकेत करते है। ये स्पष्टीकरण सापेक्ष रूप से उस सपाट वक्रीय उपभोग कार्य से सबद्ध है, जो एक यथार्थ अर्थात् अपेक्षित अथवा सामान्य) व्यवहार-प्रतिरूप माना गया है, और जो केवल परिवर्तन से हुई पश्चायित प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति मात्र नही है। ये दो व्याख्याए इस प्रकार है--(1) उपभोग प्राथमिक आवश्यकताओ द्वारा आधारभूत रूप मे निश्चित किया जाता है, और जब कि वास्तविक आय मे वृद्धि निस्सदेह उपभोग मे भी अन्तिम रूप से वृद्धि लाने के लिए प्ररित करेगी। प्रारम्भ मे उपभोग को बदलने की प्रेरणा आय परिवर्तनो के अनुपात के अनुरूप होगी; (2)

उपभोग के प्राप्त स्तरो द्वारा आधारभूत रूप से निर्धारित होता है (अर्थात् जबकि आय हाल ही मे अपने उच्चतम स्तर पर थी)। दूसरी बात उस ओर संकेत करती है जिसे कुछ वर्षों से ड्यूसेनबरी परिकल्पना (Duesenbery hypothesis)[1] के नाम से पुकारा जाता है। उपभोग व्यय वर्तमान आय का ही नही बल्कि पूर्व प्राप्त उच्चतम आय का भी एक कार्य समझा जाता है जैसे ही आय, चक्र की मंदी अवस्था (phase) मे इस स्तर से गिरेगी तो उपभोग पर होने वाले व्यय पर दो दबाव पड़ेंगे—पहला उच्च आय स्तर उपभोग को ऊपर उठाए रखने का कार्य करता है जब कि वर्तमान घटी हुई आय इसको नीचे की ओर गिराने की प्रवृत्ति रखेगी। इन विरोधी शक्तियो का निवल प्रभाव यह होता है कि आय मे जिस अनुपात मे कमी होती है उससे उपभोग परिव्ययो मे कम कमी होती है। पुनर्जीवन की स्थिति मे जैसे ही वर्तमान आय बढ़ेगी अवसादन शक्ति निर्बल हो जायेगी, और पूर्व प्राप्त स्तर का दबाव उत्तरोत्तर बढ़ता जायेगा।

मैं इस बात को दोहराता हू कि जनरल थ्योरी मे इन दोनो स्पष्टीकरणो पर केवल संकेत ही किया गया है (पृ० 97-98) और विस्तार से व्याख्या नही की गई है।[2]

अन्त मे अनुसूची के विचलनो की बात आती है। व्यक्तिनिष्ठ या अन्तंजात (endogenous) उपादानो को वास्तव मे (अर्थात् जो कार्य के मनोवैज्ञानिक एवं सस्थानिक निर्धारिक हैं) अत्यन्त प्रभावकारी सामाजिक परिवर्तनो अथवा "चिर-कालिक उन्नति के धीरे प्रभावो," के परिणामस्वरूप (पृ० 109) बदला जा सकता है। इस प्रकार के परिवर्तनो से यह आशा की जा सकती है कि वे समय उपरान्त उपभोग कार्य मे बहुत धीरे विचलन लायें। इन अति दीर्घकालिक रूपान्तरो पर केन्ज ने कोई ध्यान नही दिया यद्यपि अपनी युक्ति के बीच प्रासगिक विषयान्तरो मे उन्होने उन पर ध्यान दिया है (पृ० 109)। प्रस्तुत उद्देश्य के विभिन्न बचत और उपभोग के लिए वे व्यक्तिनिष्ठ प्रयोजनो की मुख्य पृष्ठ-भूमि को दत्त रूप से मानने को तैयार

1—जेम्स ड्यूसेनबरी, इंकम सेविंग ऐण्ड द थ्योरी ऑव कन्स्यूमर बिहेवियर (**Income Saving and the Theory of Consumer Behaviour**) हावर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1949।

2—इस विषय में इन लेखको द्वारा किए गये महान काय की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए—पाल सेम्यूलसन (Paul Sameuelson), आर्थर स्मिथीज (Arther Smithies), फ्रैंको मोडिग्लियनी (Franco Modigliani), डारथी बैडी (Dorthy Brady) और जेम्स ड्यूसेनबरी (James Duesenbery)।

थे। इसके अतिरिक्त उनका विचार था कि समुदाय के प्राय स्थायी सामाजिक ढाँचे से कम या अधिक मात्रा मे निर्धारित किए जाने वाले धन के वितरण के विषय मे यह माना जाता है कि वह बहुत लम्बे समय के केवल धीरे-धीरे परिवर्तन से प्रभावित हो जाता है (पृ० 110)।" अत वे व्यक्तिनिष्ठ उपादान, जो उपभोग कार्य के सामान्य ढलान और स्थिति को निर्धारित करते हैं केन्ज द्वारा अपेक्ष रूप मे स्थिर मान लिए गये हैं।

उपभोग कार्य मे वस्तुनिष्ठ उपादान और विचलन

परन्तु वस्तुनिष्ठ उपादानो के विषय मे क्या विचार है ? क्या उन पर पर्याप्त रूप से शीघ्र परिवर्तनो का प्रभाव नही पडता जिनसे उपभोग कार्य मे तीव्र विचलन उत्पन्न हो जाए ?

केन्ज ने 6 वस्तुनिष्ठ उपादानो का बताया है (पृ० 91-95), जो किन्ही निश्चित परिस्थितियो मे पर्याप्त विचलन उत्पन्न कर सकते है। इनमे से दो को तो पादटिप्पणी (Foot note) मे दिये गए कारणो से एक दम विसर्जित किया जा सकता है।[1] शेष चार वस्तुनिष्ठ उपादान इस प्रकार हैं :—

---

[1]—प्रथम वस्तुनिष्ठ उपादान जिसका केन्ज द्वारा उल्लेख किया गया है वह मजदूरी (और मूल्य) के स्तर में परिवर्तनों से सम्बद्ध है। यदि सभी मूल्य और मजदूरी दरें दुगनी कर दी जायें तो सम्बद्ध चरों (variables) में कोई वास्तविक परिवर्तन घटित नही होंगे, क्योंकि सारे चरों में परिवर्तन उसी अनुपात में होने की प्रवृति रखेंगे। यदि नकद आय दुगनी कर दी जाए (जब मूल्य और मजदूरी दुगुनी हो गई हो), तो उपभोग परिव्यय भी दुगुने हो जायेंगे। किन्तु यदि वास्तविक आय दुगुनी हो जाय तो उपभोग सम्भवतया 100 प्रतिशत से कम बढ़ेगा।

फिर भी द्रव्य के मूल्यों में परिवर्तन पहले हि ध्यान में ले लिए गये होंगे। यदि मुद्रा-मूल्य (Monetary Value) मूल्य सूचक अपस्फायक (Price Index Deflator) अथवा मजदूरी दर (मजदूरी इकाई) अपस्फायक के प्रयोग द्वारा वास्तविक रूप से कम कर दिए गये हों क्योंकि केन्ज ने वास्तविक रूप से अपने द्रव्य परिमाणों को कम कर दिया है, इसलिए इसी उपादान पर आगे विचार विमर्श करने की आवश्यकता नहीं रहती।

केन्ज द्वारा वर्णित दूसरी वस्तुनिष्ठ उपादान मूल्य हास आदि से सम्बद्ध लेखा कार्य प्रणाली (Accounting Practice) में परिवर्तनों से सम्बन्धित है। उपभोग कार्य के ढलान पर पर्याप्त स्थिर संस्थानिक व्यवहारों के प्रभाव के सम्बन्ध में इस उपादान पर हमने अन्यत्र विचार किया है। यह वह उपादान नहीं है जिसे ऐसा सोचा जाय कि अल्पकाल में तीव्र गति से बदल जायेगा, और यह केन्ज की भूल थी कि उसने इसे यहा सम्मिलित किया।

1. अप्रत्याशित लाभ व हानिया

साधारणत यह माना जाता था कि 1920 29 के अंतिम वर्षों मे हुए उल्लेख-नीय अप्रत्याशित लाभो ने (स्टाक बाजार म प्राप्त लाभ) धनी लागो के उपभोग को, उपभोग व आय के सामान्य सम्बन्ध से, ऊपर उठा दिया। जिस सीमा तक यह सही था उपभोग काय उपर की ओर हट गया। 1925 या उसके आस-पास तक उपभोग आय की अपेक्षाकृत अनुपात म कम तजी से बढा। 1925 के पश्चात (जब स्टाक बाजार की तेजी चल रही थी) तो उपभोग, लगभग आय की वृद्धियो के अनुपात मे बढा। इसके कई अन्य सभव व्याख्याय भी हैं। और यह किसी भी प्रकार स्पष्ट नही है कि वास्तव मे विश्वव्यापी राष्ट्रीय आकडो म यह अप्रत्याशित लाभ कितने महत्वपूण थे।

2. राजकोषीय (Fiscal) नीति मे परिवर्तन

द्वितीय विश्व युद्ध नाटकीय ढग से इस उपादान का उदाहरण प्रस्तुत करता है। युद्ध के वृहत व्यय भारी कर साधनो को नागरिक स्थायी माल के उत्पादन से हटा कर उन्ह अन्यत्र लगाना राशन और मूल्यो पर नियन्त्रण—इन सबने उपभोग और आय के बीच सामान्य मवध को पूणतया अस्त व्यस्त कर दिया। इस कारण उपभाग कार्य अपने सामान्य स्तर से तीव्र गति से नीचे गिर गया। वास्तव मे सीधे सादे शब्दा मे इतना कहना अधिक ठीक होगा कि सभी सामान्य सम्बन्ध इस प्रकार की उथल-पुथल अभ्युत्थानो के प्रभाव के कारण समाप्त हो जाते हैं। अधोमुखी (Downward) विचलन के रूप म इन महान परिवर्तना की व्याख्या सम्भवत उतनी ही व्यर्थ होगी, जितना यह कहना कि किसी भारी तुफान ने ज्वार भाटे के स्तर को विचलित कर दिया है।

इस का एक अपेक्षाकृत सुन्दर उदाहरण शातिकाल मे कर की दरो म किया गया महान परिवतन है। यहा पर इस बाह्य (वस्तुनिष्ठ) उपादान द्वारा किया गया अधोमुखी या उर्ध्वमुखी विचलन के विषय मे कहना निश्चय ही उचित होगा। कल्याण-कारी राज्य की ओर आधुनिक प्रवृत्ति (जो मुख्य रूप मे प्रगामी करो द्वारा अर्थ व्यव स्थित होती है) आय के वितरण को बदल कर उपभोग कार्य को ऊपर की ओर हटाने की प्रवृत्ति रखती है।

3 आशसाओ मे परिवर्तन

इस का अच्छा उदाहरण कारिया का युद्ध है। इसने आर्थिक दृष्टिकोण को

बहुत अधिक परिवर्तित किया। उपभोक्ताओं को सभी प्रकार के उपभोक्ता स्थायी माल के उत्पादन मे भावी छटनी (cutbacks) की प्रत्याशा थी। इसके अतिरिक्त उन्हे ऊचे मूल्यो की भी प्रत्याशा थी। इसके परिणाम स्वरूप माल की खरीद मे दौड-सी मच गई। उपस्थायी माल (खाद्य और कपडा) भी वर्तमान आवश्यकताओ से अधिक मात्रा मे क्रय किया गया। वर्तमान आय के अनुपात मे उपभोग बढ गया। इस स्थिति मे यह कहना ठीक था कि उपभोग कार्य विचलित कर दिया गया।

4 ब्याज दर मे भारी परिवर्तन

ऐसे परिवर्तन ऋण-पत्रो तथा रहन नामो के मूल्यो म भारी कमी या वृद्धि ला सकते है (पृ० 94)। इससे ऐसे अप्रत्याशित हानि अथवा लाभ उत्पन्न हो सकते हैं, जिनके परिणाम ऐसे होगे जिन पर अप्रत्याशित लाभ या हानि शीर्षक के अन्तर्गत विचार किया गया है।

पूँजीगत मूल्यो (capital values) पर प्रभाव के अतिरिक्त ब्याजदर के परिवर्तनो का बचत पर प्रभाव, जनरल थ्योरी के प्रकाशन से बहुत पूर्व से ही अत्यन्त जटिल और अनिश्चित माना जाता था। केन्ज ने युक्ति दी कि "लम्बे समय म ब्याज की दर मे भारी परिवर्तन, सम्भवत सामाजिक स्वभावो को पर्याप्त मात्रा मे बदलने मे प्रवृत्त हो जाने हैं" (पृ० 93), किन्तु अल्पकालीन उच्चावचनो का व्यय पर कोई अधिक प्रत्यक्ष प्रभाव पडने की सभावना नही है।

ब्याज दर के सम्बन्ध मे शुद्ध परिणाम यह निकला कि अल्पकालीन परिवर्तनो की महत्ता गौण होती है। किन्तु जब यह विश्वास किया जाता है कि ब्याज दर मे साधारण परिवर्तन, उपभोग कार्य मे महत्वपूर्ण विचलन नही लाएगे, केन्ज यह सकेत करने मे सावधान थे कि उस प्रकार के परिवर्तन वास्तव मे बचाई हुई मात्रा पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकते हैं। किन्तु जैसा स्थिति को सोचा जाता है, प्रभाव उसके विपरीत होता है। इसका कारण इस प्रकार है—ब्याज दर मे वृद्धि से निवेश कम हो सकता है, और इसका प्रभाव आय को कम करना होगा। पर यदि आय गिर जाती है, तो बचत राशि भी कम हो जाएगी।

सामान्य परिणाम

सामान्य रूप मे इस परिणाम पर पहुँचा जा सकता है कि कुछ वस्तुनिष्ठ उपादानो मे अत्यन्त असामान्य अथवा क्रान्तिकारी परिवर्तनो को छोड कर—जैसे युद्ध, भूकम्प, हडतालें, क्रान्ति आदि असाधारण घटनाओ द्वारा पैदा की गई आशकाए, कर विधान मे बृहत् परिवर्तन, अत्यन्त असाधारण अप्रत्याशित हानि अथवा लाभ—इस

प्रकार के परिवर्तनो को छोडकर "किसी दी हुई आय मे से उपभोग प्रवृत्ति मे" विचलन के गौण महत्ता से अधिक महत्वपूर्ण होने की सभावना नही है (पृ० 110)।

किन्तु जैसा हम ऊपर देख चुके है कि यह कथन होने वाली जटिलताओ को पर्याप्त रूप से ध्यान मे नही रखता है। तब भी प्रथम सन्निकटमान के रूप मे, उपभोग कार्य का केन्ज द्वारा किया गया विश्लेषण—वे उपादान जो इसको हटाते हैं, और वे उपादान जो इसका आकार (ढलान और सामान्य स्थिति) निश्चित करते है—आर्थिक सिद्धातो के इतिहास मे एक महान युग प्रवर्तक घटना है।

यह सिद्धात इस परिणाम की ओर ले जाता है कि "रोजगार भी निवेश मे वृद्धि के केवल समरूप बढ सकता है। वास्तव मे यह तब तक नही हो सकता जब तक उपभोग वृत्ति मे परिवर्तन न हो" (पृ० 98)। यदि आय मे वृद्धि के साथ-साथ सापेक्ष रूप मे उपभोग और आय के बीच अन्तर बढ़ जाऐ, तो समस्त माग समस्त सभरण मूल्य को उस समय तक पाटने मे पर्याप्त न होगी जब तक वह अन्तर निवेश की वृद्धि से पूरा नही किया जाता।

अध्याय 4

सीमांत-उपभोग-प्रवृत्ति और गुणक (Multiplier)

[जनरल थ्योरी, अध्याय 10]

प्रस्तुत अध्याय को पढने से यह ज्ञात हो जायेगा कि केन्ज ने बहुत सक्षेप से गुणक की तीन विभिन्न सकल्पनाओ पर विचार किया है। तीनो ही सकल्पनाए कुछ निश्चित मान्यताओ पर आधारित हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—(1) गुणक के "तर्क सगत' सिद्धात की सकल्पना जिसमे समय की कोई पश्चता नही मानी जाती, (2) गुणक की 'काल विश्लेषण' (period analysis) सकल्पना, जिसमे समय की पश्चता को स्वीकार किया जाता है, और (3) "तुलनात्मक-स्थैतिकी' समयहीन विश्लेषण (timeless analysis) की सकल्पना, जिसमे सतुलन के क्रमिक बिदुओ पर बल दिया जाता है पर सक्रमण प्रक्रिया को बिल्कुल छोड जाता है।

क्षरण (Leakages) और गुणक

इसके विषय मे विस्तार से बाद मे कहा जायेगा। किन्तु पहिले हमे उस तुलना पर ध्यान देना चाहिये जो केन्ज ने 10वें अध्याय मे अपने निवेश गुणक (**investment multiplier**) और काहन (Kahn) के रोजगार गुणक[1] के बीच स्थापित की है।

काहन का रोजगार गुणक एक ऐसा गुणाक (coefficient) है जो मुख्य रोजगार (*primary employment*) (*अर्थात् सार्वजनिक कार्यों*) का कुल रोजगार

1—आर ऐफ काहन (R F Kahn) का लेख "द रिलेशन आव होम इन्वेस्टमेंट टु अनइम्प लायमैन्ट" (The Relation of Home Investment to Unemployment), ईकनामिक जर्नल, जून 1931।

की परिणामिक वृद्धि से जिसमे मुख्य और गौण सम्मिलित हैं, सबध स्थापित कर देता है। अत, यदि मुख्य रोजगार N_2 है, कुल रोजगार N, और k' गुणक है, तो $k' N_2 = N$ के होगा।

फिर भी केन्ज का निवेश गुणक एक ऐसा गुणक है, जो निवेश की वृद्धि का आय की वृद्धि से सवध करा देता है। यदि Y आय हो, I निवेश हो, और k गुणक हो, तो $kI = Y$ होगा।

काहन के गुणक को अकगणित के एक सरल उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। यदि सार्वजनिक कार्यो पर (इसमे प्रयुक्त सामग्री पर लगे हुए आदमी भी सम्मिलित है) 300,000 अतिरिक्त आदमी लगा दिये जाते हैं और इसके परिणामस्वरूप यदि उपभोक्ता माल के उद्योगो मे रोजगार (गौण रोजगार) पर 600,000 आदमी अतिरिक्त लगाने पडें तो रोजगारो की कुल सख्या 900,000 से बढ जायेगी, और रोजगार गुणक 3 होगा। इसी तरह से केन्ज के गुणक के विषय मे भी होगा। यदि 1,000 000 000 अतिरिक्त डालर निजी निर्माण कार्य अथवा सार्वजनिक कार्यो पर व्यय किये जाये और उसके परिणामस्वरूप उपभोग पर अतिरिक्त व्यय 2,000 000,000 डालर से बढ जाये तो कुल व्यय 3,000,000,000 डालर से बढ जायेगा और इस प्रकार निवेश गुणक 3 होगा।

केन्ज कहते है कि k और k नामक दो गुणक समरूप नही है (पृ० 114)। यदि प्रक्रिया मे मजदूरी उपार्जन न करने वालो (non-wage earners) की आय अनुपात मे मजदूरी उपार्जन करने वालो की आय से अधिक हो जाये, तो मजदूरी इकाइयो (wage units) के रूप मे आय, रोजगार से अधिक हो जायेगी। इसके अतिरिक्त, ह्रासमान प्रतिफल (decreasing returns) की अवस्था मे, कुल उपज रोजगार के अनुपात से कम बढेगी। सक्षेप मे, प्रतिशत के अनुसार, मजदूरी इकाई Y_w के रूप मे आय सबसे अधिक बढ सकती है; रोजगार N उससे कम बढेगा, और उपज O सबसे कम बढेगी। फिर भी, अल्पकाल मे, तीनो—मजदूरी इकाइयो के रूप मे आय, रोजगार और उपज मे—इकट्ठे ही बढने और घटने की प्रवृत्ति होगी। इसलिये यदि हम यह मानलें कि रोजगार गुणाक k निवेश गुणक k' के बराबर है, तो यह बिल्कुल ठीक न होते हुए भी काम चलाने के लिये पर्याप्त है और इससे तथ्यो की बहुत अधीक तोडा-मरोडी नहीं होगी।[1]

---

[1]—जैसा हम इस पुस्तक के दूसरे अध्याय में दख चुके है, केन्ज ने मुद्रा के रूप में निवेश को मजदूरी इकाइयों के रूप में वर्णित निवेश परिव्यय में बदल देना पसन्द किया। जैसा ऊपर कहा

तुगन बरनाउस्की तथा विक्सल और उनके बाद के व्यवसाय चक्र सम्बन्धी साहित्य मे निवेश की वृद्धि का आय की वृद्धि (अर्थात् केन्ज का k) से सबध जो है उसकी महत्ता को विस्तृत रूप से स्वीकार किया गया था। किन्तु इन अर्थशास्त्रियो एव इनके अनुयायियो ने इस विषय को अस्पष्ट ही छोड दिया था क्योंकि वे इसको एक प्रवृत्ति कह कर ही सन्तुष्ट थे। काहन के मार्ग पर चलकर, केन्ज ने विश्लेषण के वे साधन प्रदान किये, जिनमे इस विषय पर और अधिक सूक्ष्म विचार होना सम्भव हो सका। जैसे हमे आगे चल कर ज्ञात होगा, उपस्थित समस्या असाधारण रूप से जटिल थी, जिसमे उपभोग कार्य मे ढलान और स्थिति ही नहीं, बल्कि कार्य मे विचलन भी सम्मिलित थे। गुणक पर कोई निश्चित सख्यात्मक मूल्य लगाने मे केन्ज निस्सदेह अत्यत सावधान थे। इस विषय पर और अन्य सबधित विषयो पर भी हम शीघ्र ही प्रकाश डालेंगे। किन्तु यहा पर महत्वपूर्ण बात जो ध्यान देने की है, वह यह है कि काहन और केन्ज के प्रयत्नो का ही यह परिणाम है कि निवेश का आय पर प्रभाव आकने की समस्या को सुलझाने के लिये हम पहिले की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म विश्लेषण के साधन उपलब्ध हो गये हैं।

इस विश्लेषणात्मक समस्या को सुलझाने की कुजी सीमात-उपभोग-प्रवृत्ति है। जितनी सीमात-उपभोग-प्रवृत्ति अधिक या कम होगी, गुणक भी उसके अनुरूप अधिक या कम होगा। यदि एक बार विद्यार्थी इस कथन की गहराई को समझ ले तो उसे यह ज्ञात हो जायेगा कि किस प्रकार यह एक कठिन समस्या को सुलझाने मे अधिक सहायक है। वास्तव मे ईकनॉमिक जर्नल के जून 1931 के अक मे प्रकाशित

जा चुका है कि वे आसानी से आय, निवेश, बचत और उपभोग व्यय को अचल डालरों (अर्थात् उपज या निपन के रूप में व्यक्त कर सकते थे।

यदि उपभोग माल क उद्योगों में, सदन, उपकरण और जन शक्ति की अप्रयुक्त क्षमता है, तो निवेश माल के उद्योगों से कर्मचारियों और मालिकों की आय बढा कर, (मुद्रा के रूप में) निवेश व्यय की वृद्धि उपभोग व्यय में (बिना मूल्यों के बढे) वृद्धि ला सकती है। वास्तविक आय में भी तब ही वृद्धि होगी। नये उत्पन्न किये निवेश माल की मात्रा से ही नहीं, बल्कि नये उत्पन्न हुए उपभोग माल की मात्रा से भी कुल निपन बढ जायेगी। वास्तविक रूप में तो Y, I+C की मात्रा से अधिक हो गई होगी। फिर भी ऐसा नहीं हो सकता था यदि अर्थव्यवस्था पहिले से ही पूर्ण रोजगार की स्थिति में होता। पूर्ण रोजगार की अवस्था में निवेश व्यय में वृद्धि मूल्यों का स्फीतिकरण कर देगी, यदि किसी न किसी तरह से उपभोग व्यय को उतनी ही राशि से कम नहीं किया जाय। इसलिये यहा इस महत्वपूर्ण तथ्य पर फिर बल देना आवश्यक है कि केन्ज अपनी पुस्तक 'जनरल थ्यारी' में सयत्र, उपकरण और कर्मचारियों की अपूर्ण रोजगार की अवस्था से मुख्यत सबद्ध थे।

काहन के लेख का आर्थिक विश्लेषण मे बड़ा भारी महत्व है।

काहन यह दिखलाना चाहते थे कि यदि सरकार सार्वजनिक कार्यो मे रोजगार बढा दें तो कितना गौण अथवा प्रेरित (induced) रोजगार (उपभोग माल के उद्योग मे) बढ जायेगा। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यदि निर्माण कार्य मे एव निर्माण कार्य में प्रयोग होने वाली सामग्री के निर्माण मे रोजगार की कोई भी वृद्धि हो जाती है, तो उपभोक्ता माल की माग मे भी वृद्धि हो जाएगी और उसका परिणाम यह होगा कि मुख्य रोजगार मे वृद्धि के होने से गौण रोजगार मे वृद्धि हो जायेगी। यह समझना कोई कठिन नही है। वास्तव म स्थिति तो यह है कि जैसे ही हम इस पर विचार करते हैं तो हमारे लिये यह समझना बहुत कठिन हो जाता है कि "श्रृखलित प्रतिक्रिया" (chain reaction) निरन्तर क्यो नही चलती रहती। ऐसा क्यो नही होता कि एक हजार व्यक्तियो को रोजगार मिलने से एक हजार और व्यक्तियो को रोजगार मिल जाये, और इससे फिर एक हजार व्यक्तियो को रोजगार मिल जाये और यह श्रृखला तब तक चलती रहे जब तक कि सभी को रोजगार नही मिल जाता।

निस्सदेह यह एक ऐसा प्रश्न था जिसपर चतुर्थ दशक की महान मदी (Great Depression) काल मे अव्यवसायी (amateur) आर्थिक विवेचनो मे घोर वाद विवाद हुआ था और विशेषकर उन अमरीकी शहरो मे जो "पावती-पत्र" (scrip) अथवा 'मुद्राक द्रव्य (stamped money) की योजनाओ[1] पर विचार और कुछ सीमा तक परीक्षण कर रहे थे। व्यावसायिक अर्थशास्त्री बहुधा ठीक ठीक नही बता पाते थे कि श्रृखलित प्रतिक्रिया के तर्क के ढग मे क्या गलती है, और यह स्थिति उस समय तक बनी रही जब तक काहन के प्रसिद्ध लेख ने इसका निश्चयात्मक उत्तर न दिया।

काहन ने यह स्पष्ट किया कि पुर्नानियुक्ति प्रक्रिया क्षरणो के कारण समाप्त हो जाती है। कुछ अत्यत महत्वपूर्ण क्षरण इस प्रकार हैं—(1) आय मे वृद्धि का एक अश ऋण चुकाने के लिये प्रयुक्त होता है, (2) एक अश निष्क्रिय बैंक निक्षेपो के रूप मे बताया जाता है, (3) एक अश दूसरो से ऋण-पत्र खरीदने मे लगाया जाता है। इन ऋण-पत्रो के बचने वाले अपने आगमनो को व्यय नही कर पाते हैं; (4) एक

1. Hector Lazo, **Scrip and Barter: Their Use and Their Service**, Bureau of Foreign and Domestic Commerce, Feb 20, 1933 also **Barter and Scrip in the United States**, Selected References compiled in the Library Bureau of Agricultural Economics, Feb 21, 1933.

अंश आयात पर व्यय होता है, जिससे गृह रोजगार मे कोई वृद्धि नही होती, (5) खरीद के एक भाग की उपभोक्ता माल के अतिरिक्त भडारो से पूर्ति की जाती है, ये वे उपभोक्ता माल होते है जिनकी पुन स्थापना नही हो सकती। इस प्रकार के क्षरणो के कारण थोडे समय मे ही रोजगार प्रक्रिया समाप्त हो जाती है। इस प्रक्रिया मे, निस्सदेह मुख्य रोजगार ने कुछ गौण रोजगार को प्रेरित किया है, पर इस प्रकार से प्रेरित गौण रोजगार उससे कम होता है जिसे मोटे तौर पर मान लिया जाता है।

मान लीजिये कि मुख्य रोजगार पर प्रारभ मे एक बार ही 1,000,000,000 डालर अनावर्ती निवेश[1] व्यय हो जाता है। मान लीजिये प्रत्येक व्यय क्रम पर क्षरण आय धारा (Income stream) का एक-तिहाई होता है। इसका अर्थ यह होता है कि घरेलू माल की सीमात उपभोग प्रवृत्ति $\frac{2}{3}$ है। इस प्रकार कुल व्यय 3 000,000,000 डालर होगा। इस व्यय मे प्रारंभिक निवेश व्यय (मुख्य रोजगार) और उपभोग व्यय का (गौण रोजगार) परिणामिक क्रम दोनो ही सम्मिलित है। यह व्यय क्रम चित्र सख्या 6, मे आरेखीय रूप से दिखलाया गया है।

यहाँ पर यह मान लिया गया है कि सभी क्षरण "नष्ट' हो जाते हैं। उदाहरणार्थ यह बैंको मे ऋण के प्रतिदान के विषय मे आवश्यक रूप से ठीक होगा। इस प्रकार का प्रतिदान किसी निश्चित निक्षेप राशि को सहज मे रद्द कर देगा। इसके अतिरिक्त जहा तक व्ययो का सम्बन्ध है वे बचतें भी जिन्होने निसंचित मुद्राओ अथवा निष्क्रिय बैंक निक्षेप का रूप धारण कर लिया हो, इसी प्रकार नष्ट हो जायेंगी। सक्षेप मे चित्र सख्या 6, उस प्रथम अवस्था को चित्रित करती है जिसमे तथाकथित क्षरण निस्सदेह वास्तविक क्षरण होते हैं। इनके द्वारा पूर्व आय का वह भाग बनता है, जो

[1]—प्रारम्भिक व्यय का विषय एक ऐसा विषय है जिसने भ्रांति उत्पन्न कर दी है। यह आवश्यक नहा है कि वह पूँजी पदार्थों पर परिव्यय हो। वास्तव में प्रारम्भिक व्यय को समझाने के लिए केन्स ने केवल "निवेश" (चाहे निजी हो या सार्वजनिक) का ही नहीं, बल्कि "उधार व्यय" शब्द का भी प्रयोग किया है। यह अनुदान आदि के रूप में उपभोक्ताओं को सीधे रूप में दिये गए धन राशि को यह अपने अन्तंगत लेगा या कर कटौती के परिणामस्वरूप (घाटे की पूर्ति उधार लेकर होगी) यह निवल वेतन में वृद्धि कर देगा। उस सर्न्दभ में प्रारम्भिक वृद्धि कुछ भी हो, चाहे वह निजी या सार्वजनिक निवेश हो या कर कटौती के परिणामस्वरूप निजी उपभोग पर व्यय में वृद्धि हो या सम्भवत निजी नकद सपत्ति के व्यय करने के परिणाम स्वरूप हो, जहा तक गुणक प्रक्रिया का सबध है, प्रभाव समान ही होगा।

कि खर्च नही होता और इसलिए उसकी गणना आय धारा मे नही होती । ऐसी स्थिति मे, प्रारभिक निवेश व्यय द्वारा उत्प्रेरित आय धारा धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है ।

पर हमे अब उस द्वितीय अवस्था पर विचार करना है जिसमे तथाकथित क्षरण केवल इस सीमित रूप मे ही क्षरण होते हैं कि उपभोग माल पर सन्निहित धन-राशिया खर्च नही की जाती, तब भी उन्हे सीधे रूप मे निवेश माल पर खर्च किया जा सकता है । किन्तु फिर क्या ? इस अवस्था मे यह अच्छा होगा कि यदि हम उन्हें केवल 'बचत" ही कहे, जो उपभोग व्यय से वास्तविक क्षरण (अर्थात् विपथन) को प्रदर्शित करती है ; किन्तु फिर भी यह आय विपथन निवेश माल पर व्यय की ओर निर्दिष्ट किये जा सकते है । यदि ऐसा किया जाए तो प्रारम्भिक व्यय काल मे प्राप्त
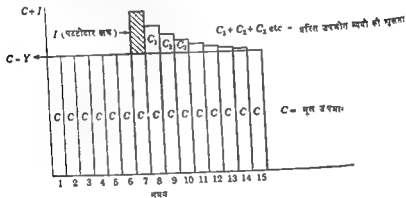
चित्र न० 6 गुणक अवस्था II

आय मे वृद्धि, पूर्ण रूप से उत्तरवर्ती काल मे व्यय हो जाती है। अर्थात् ⅘ उपभोग पर ⅕ निवेश पर किन्तु यदि यह सत्य न होता कि बचाया हुआ अश सीधे रूप मे निवेश माल पर खर्च होता है तो व्यय धारा जल्दी ही समाप्त हो जाएगी । इस स्थिति को चित्र सख्या 7 मे दिखलाया गया है ।

इससे हम उस तृतीय अवस्था मे पहुँच जाते हैं जिसमे एक काल के बाद दूसरे काल मे अधिकारी लोग केवल सार्वजनिक निवेश व्यय की धारा को 1,000,000 डालरों तक अविरत रखते है। पहले की भाति यहा पर भी हम यह मान लेते हैं कि प्रत्येक अनुवर्ती काल मे नव सृजित आय का केवल ⅘ भाग उपभोग पर व्यय होता है । इस स्थिति मे जनता द्वारा प्राप्त आय का वह भाग जो उपभोग से हटा लिया जाता है, उन ऋण-पत्रो पर व्यय किया जाता है, जो सरकार द्वारा इसलिये चलाये

जाते हैं कि जिससे प्रत्येक काल के 1,000,000 डालर के अविरत सार्वजनिक निवेश कार्यक्रम के एक भाग की वित्त व्यवस्था हो सके। इसके अवशेष भाग की वित्तीय व्यवस्था (1) अब तक के निष्क्रिय शेष धन को काम मे लाकर अथवा (2) व्यापारी बैंको को ऋण पत्रो को बेचकर की जाती है। कुल क्रमिक व्यय चित्र सख्या 8 मे दिखाए गए हैं।

यहाँ पर प्रत्यक उत्तरोत्तर काल मे 1,000 000 डालरो की नई निवेश परिव्यय की अविरत राशि लगा दी जाती है। और नई बचत की समस्त राशि
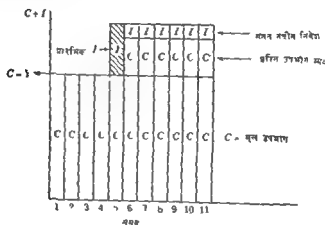
चित्र न० 7 गुणक अवस्था II

(उपभोग व्यय से आय विपयन या क्षरण) नवीन निवेश मे धन लगाने मे काम आती है। अन्त मे नई बचत नई निवेश के लगभग बराबर हो जाती है और इस प्रकार एक नया सन्तुलन स्थापित हो जाता है। नये निवेश का प्रत्यक घान एक नये व्यय क्रम को चालू कर देता है, जो कि "नीचे की ओर दौडता जाता है। जैसा कि C_1, C_2, C_3, C_4, आदि के किसी भी क्रम को देखने से प्रतीत होता है। यह है वह 'खिचाव (drawing off)' जो कुल व्यय धारा (निवेश+उपभोग) को शीघ्र ही समतल कर देती है यद्यपि नये निवेश की मात्रा को प्रारम्भिक अन्त क्षेप उत्प्रेरणा स्तर पर बनाए रखा जाता है।

चतुर्थ अवस्था मे उपभोग से कोई भी क्षरण नही होते। यहा पर हम फिर सदा के लिये अनावर्ती प्रारम्भिक निवेश व्यय को मान लेते हैं। यहा पर प्रारम्भिक

निवेश व्यय मे से श्रमिको एव उद्यमकर्त्ताओ द्वारा प्राप्त की गई समस्त आय आगामी काल मे वस्तुओ और सेवाओं पर व्यय की जाती है। यह व्यय, बारी से नई आय उतनी ही राशि की उत्पन्न कर देता है, जो अनुवर्ती काल मे व्यय की जाती है। अत जब यह एक बार चल पडती है तो व्यय-धारा लगातार आगे चलती रहती है।
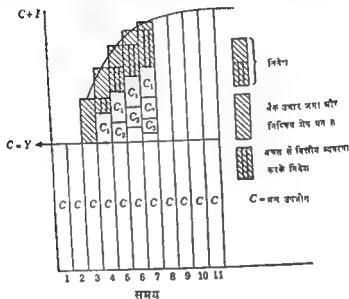
चित्र न० 8. गुणक अवस्था III

सीमान्त उपभोग, प्रवृत्ति इकाई होने के कारण उपभोग व्यय-धारा मे से कोई क्षरण नही होते। यह चित्र सख्या 9 मे दिखाया गया है।

पचम अवस्था मे हम पुन निवेश पर अनावर्ती प्रारम्भिक व्यय मान लेते हैं। किन्तु यहाँ हम मान लेते हैं कि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति शून्य है जिससे कि क्षरण प्रारम्भिक निवेश की वृद्धि से प्राप्त समस्त आय को उपभोग से परे निष्कासन कर देते है, अर्थात् आय की समस्त वृद्धि बच जाती है। हम यह भी मान लेते हैं कि इस प्रकार से बचाई हुई धन-राशियां निवेश माल पर व्यय नही की जाती हैं, वे निष्क्रिय शेष धन के रूप मे रखी रहती है या बैंको मे ऋण के भुगतान के लिये प्रयोग मे लाई जाती है। अत यदि एक बार प्रारम्भिक व्यय पूरा हो जाता है, तो आगे फिर कुछ घटित नही होता है। यह चित्र सख्या 10 मे दिखाया गया है।

चित्र न० 9 स्तर अवस्था IV
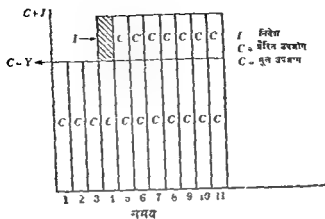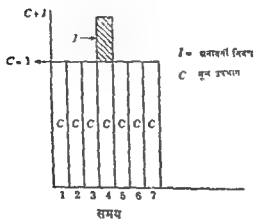
चित्र न० 10 गुणक अवस्था V

अन्त में हम छठी अवस्था पर आते हैं जो कि पंचम अवस्था के एकदम विपरीत है। छठी अवस्था में सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति इकाई है जैसा कि चतुर्थ अवस्था में भी था। लेकिन यहां तृतीय अवस्था की तरह हम यह मानते हैं कि प्रत्येक अनुवर्ती काल में निवेश की प्रारम्भिक मात्रा लगातार स्थिर रखी जाती है। क्योंकि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति इकाई है, इसलिये प्रत्येक अनुवर्ती काल में, आय, नये चलते रहते (new continuing) निवेश की मात्रा से संचित रूप में बढ़ती है। यदि एक बार

पूर्ण रोजगार की प्राप्ति हो जाये, तो यह स्थिति आरोही स्फीति की ओर ले जायेगी। यह अवस्था आरेखीय रूप से चित्र सख्या 11 म दिखाई गई है।
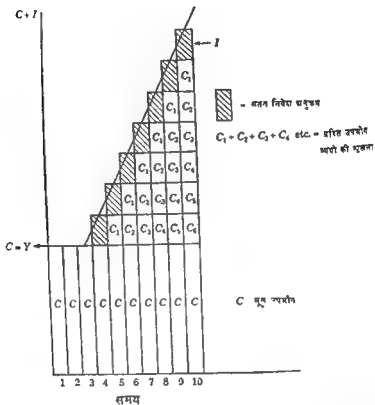
चित्र स० 11 गुणक अवस्था VI

इन विभिन्न अवस्थाओ से हमने यह निष्कर्ष निकाला कि जब सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति शून्य हो तो गुणक एक होगा और जब यह इकाई हो तो गुणक अनन्त (**Infinity**) होगा। इसलिये यदि निवेश की प्रारम्भिक वृद्धि लगातार कायम रखी जाये तो यह अर्थ व्यवस्था को स्फीति की ओर ले जायेगी, जैसा कि चित्र सख्या 11 म दिखाया गया है। पर अधिक सभव स्थिति इन दोनो के कही बीच मे ही है। यदि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति $\frac{2}{3}$ है (अर्थात् यदि सीमान्त बचत प्रवृत्ति $\frac{1}{3}$ है) तो गुणक 3 होगा। गुणक सीमान्त बचाने की प्रवृत्ति का व्युतक्रम होगा; $K = \frac{1}{1 - \frac{\Delta C}{\Delta Y}}$,

अथवा $k = \dfrac{1}{\dfrac{\Delta S}{\Delta Y}}$ ।[1]

जितना उपभोग कार्य वक्र ढलवाँ होता चला जायेगा, उतना ही गुणक भी अधिक होता जायेगा , वक्र जितना सपाट होगा, उतना ही गुणक कम हो जायेगा ।

$$\Delta Y = \Delta I + \Delta C$$

यदि ΔC शून्य है, तब $\Delta Y = \Delta I$, अर्थात् गुणक 1 होगा । जैसे-जैसे $\dfrac{\Delta C}{\Delta Y}$ इकाई के निकट पहुँचता है, वैसे गुणक का मान भी बढ़ता जाता है ।

गुणक सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति से निर्धारित किया जाता है । यह बात अति

---

[1]— $\Delta Y = k \Delta I$, या $k = \dfrac{\Delta Y}{\Delta I}$

ΔI के स्थान पर $\Delta Y - \Delta C$ को स्थानापन्न करके हम $k = \dfrac{\Delta Y}{\Delta Y - \Delta C}$ को प्राप्त करते हैं । इसे ΔY द्वारा भाग देकर हम

$$k = \frac{1}{1 - \dfrac{\Delta C}{\Delta Y}}.$$

यदि हमारा सबंध उस खुली अर्थव्यवस्था से हो जिसमें पर्याप्त आयात निर्यात होते हों तो रूपान्तरण आवश्यक हो जाता है । यदि कोई आयातों की अधिकता करता है, तो वह ऋण निवेश होगा । "ऋण निवेश" के रूप में आयतों की अधिकता में प्रवेश किया जा सकता है । ऐसी अवस्था में व्यय श्रेणी की प्रथम संख्या निबल आयतों की प्रेरित वृद्धि की राशि के बराबर घट जाती है अथवा आयात को ऋण के रूप में माना जा सकता है, पर उस अवस्था में "सीमांत व्यय प्रवृत्ति" नामक वाक्यांश में से "व्यय" में निबल आयातों पर व्यय की गई वृद्धि (अर्थात निर्यात की वृद्धि से आयातों में वृद्धि का आधिक्य) को मनमाने ढंग से सम्मिलित कर लिया गया है । यदि निर्यातों में वृद्धि आयातों में प्रेरित वृद्धि से अधिक बढ़ जाए, तो इस आधिक्य राशि को धनात्मक निवेश माना जा सकता है और उसे गृह निवेश की मात्रा में सम्मिलित किया जा सकता है । इस सब को "विदेशी व्यापार गुणक" पर लिखे गए विषद् साहित्य में विस्तार से विवेचन किया गया है । उदाहरणार्थ देखिये जी. हैबर्लर, प्रॉस्पेरिटी ऐण्ड डिप्रेशन (**Prosperity and Depression**) लीग ऑव नेशन्ज (जिनीवा : 1941) पृ० 461-473 और वहां पर उद्धृत किए गए प्रचुर सदर्भों को भी देखिए ।

सरलता से ग्रारेखो द्वारा दिखायी जा सकती है। यदि वक्र C 45° की रेखा पर स्थित है तो सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति इकाई होगी। यदि वक्र C सपाट हो, तो सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति शून्य होगी। केन्ज ने यह युक्ति दी, जैसा हम (इस पुस्तक के तीसरे अध्याय मे) देख चुके है कि $\Delta Y > \Delta C$। इसका सुगमता से यही अभिप्राय समझा जायेगा कि सामान्य परिस्थितियो मे सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति इकाई से कम मानी जा सकती है।

काहन के विश्लेषण मे प्रथम बार उन ग्रालोचको का स्पष्ट उत्तर प्रस्तुत किया जा ये लम्बी ग्राशाये लगाये हुए थे कि व्यय मे निश्चित वृद्धि से एक ऐसी सचित प्रक्रिया चल पडेगी जो ग्रन्ततोगत्वा स्वत ही पूर्ण रोजगार की ग्रोर ले जाएगी। उन्होने इस बात को उन ग्रवस्थाग्रो को परिशुद्ध निरूपण द्वारा प्रस्तुत किया, जो गुणात्मक प्रक्रिया को सीमित करती है। इस उत्तर की कुजी सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति मे पाई गई। यदि $\frac{\Delta C}{\Delta Y}$=शून्य है तो गुणज प्रसार (multiple expansion) नही होगा। ग्रर्थात् गुणक एक से ग्रधिक नही होगा। पर यदि $\frac{\Delta C}{\Delta Y}$ इकाई है, तो सचित प्रक्रिया ग्रनिश्चित काल तक चलती रहेगी। वास्तव मे क्षरण इसको ऐसा होने से रोकते हैं। यही था वह विश्लेषण, जिसने सदैव के लिए यह प्रकट कर दिया कि उन ग्रव्यवसायी ग्रमरीकी सुधारको का उत्साह उचित नही था जो महान् मन्दी के प्रारम्भिक काल मे पावती-पत्र मुद्रा (script money) व्यय योजनाग्रो को प्रस्तुत कर रहे थे। गुणक उससे बहुत कम है जिसकी वह परिकल्पना कर बैठे थे। दूसरी ग्रोर यह 'न्यू डील' (New Deal) के उन ग्रालोचको की मानी गई सख्या से बडी है जो यह युक्ति देते थे कि सार्वजनिक निर्माण व्यय का रोजगारी प्रभाव पूर्ण रूप से प्रारम्भिक व्यय तक ही सीमित था।

केन्ज ने यह स्पष्ट किया कि रोजगार मे कुल वृद्धि मुख्य रोजगार मे वृद्धि तक ही सीमित रहेगी। "यदि समुदाय रोजगार मे वृद्धि ग्रौर परिणामत ग्रसल ग्राय मे भी वृद्धि के होते हुए भी ग्रपने उपभोग को ग्रपरिवर्तनीय रूप से कायम रख सके" (पृष्ठ सख्या 117)—यह ग्रवस्था शून्य सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति की है। "दूसरी ग्रोर यदि वे ग्राय मे किसी भी वृद्धि की समस्त राशि को उपभोग करने का प्रयत्न करें", सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति का मान इकाई होते हुए तो माग बढती चली जायेगी, जब तक कि पूर्ण रोजगार प्राप्त न हो जाये ग्रौर इसके पश्चात् "मूल्य ग्रबाध रूप से बढते चले जायेंगे।"

अत निवेश मे किसी भी वृद्धि के गौण (अथवा गुणात्मक) प्रभाव सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति के साथ साथ बदल जायेंगे। यदि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति इकाई के निकट है, तो निवेश मे थोडी घटा बढी भी आय और रोजगार मे प्रचड उच्चावचन उत्पन्न कर सकती है। पर यदि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति शून्य से ज्यादा अधिक नही है, तो किन्ही पर्याप्त घटा-बढियो को उत्पन्न करने के लिए निवेश की बहुत अधिक घटा-बढियों की आवश्यकता पडेगी।

यहा पर आवश्यक है कि हम (1) वक्र C के ढलान और (2) इसकी स्थिति अर्थात् यह किस स्तर पर स्थित है, इनके बीच सही भेद जान ले। ढलान सपाट भी हो सकता है पर उस अवस्था मे सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति कम होगी, साथ ही पूर्ण रोजगार के आय स्तरो पर उपभोग और आय के बीच बहुत कम फैलाव होगा, या ऐसा कहिए कि औसत उपभोग प्रवृत्ति अधिक होगी। इस अवस्था मे निवेश मे कोई भी वृद्धि (बेरोजगारी की अवस्था मे प्रारम्भ होकर) सापेक्ष रूप मे आय मे वृद्धि नही करेगी। यह इसलिए ठीक है क्योकि इन मान्यताओ के आधार पर गुणक बहुत कम होगा, तब भी अर्थव्यवस्था से पूर्ण रोजगार तक धकेल लाने के लिए निवेश मे अपेक्षाकृत बहुत ही कम वृद्धि की आवश्यकता होगी। यह इसलिए ठीक है क्योकि इस अवस्था मे पूर्ण रोजगार के स्तरो पर भी उपभोग और आय के बीच अन्तर बहुत कम होगा (देखिए चित्र स० 12)। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था कभी भी पूर्ण रोजगार से बहुत अधिक नीचे नही गिर सकती। निस्सन्देह रोजगार मे घटा बढी हो सकती है किन्तु यह मुख्य रूप से गुणक द्वारा स्पष्ट नही की जाएगी, बल्कि यह निवेश मे घटा-बढियो के कारण होगी, अर्थात् वह निवेश का किसी भी महत्वपूर्ण गुणात्मक प्रभावो से सहायता नही लेता।

वह वैकल्पिक स्थिति जिसमे कोई ऊची सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति और एक ऊची औसत प्रवृत्ति दोनो मान ली जाती हैं चित्र स० 13 मे दिखलाई गई है। इस अवस्था मे घटा-बढी बहुत अधिक हो सकती है (अर्थात् Y_1 से Y_F तक चाहे पूर्ण रोजगार के स्तरों पर C और Y के बीच अन्तर बहुत थोडा हो। गुणक के बहुत ऊचा होने हुए यदि निवेश थोड़ा सा भी घट-बढ़ जाय तो आय बहुत अधिक घटा-बढी हो जायेगी। शून्य निवेश की अवस्था मे (चित्र स० 12 की स्थिति के विपरीत) आय बहुत कम होगी, फिर भी निवेश की थोडी-सी मात्रा भी पूर्ण रोजगार लायेगी, क्योकि गुणक बहुत बडा होगा।

केन्ज ने इस विषय को 10वें अध्याय के पाचवें खण्ड (पृष्ठ 125, 126) मे स्पष्ट किया है। एक छोटे से आरेख से शीघ्र ही उस दृष्टिकोण को स्पष्ट किया

जा सकता था, जिसे वह कहना चाहते थे, किन्तु उस बात को एक अपेक्षाकृत जटिल अकात्मक उदाहरण से अनावश्यक रूप से कठिन बना दिया गया है। उनका सुझाव है (पृ० 126) कि गरीब देशो मे गुणक बहुत अधिक हो सकता है जबकि साथ-साथ उन समुदायो मे औसत उपभोग प्रवृत्ति ऊची है। यही है वह स्थिति जिसे चित्र सख्या 13 मे दिखाया है।
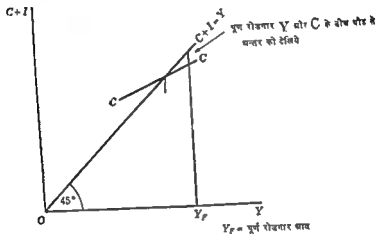
चित्र न० 12 ऊची औसतन और नीची सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति।

निस्सदेह इस स्थिति का यह अर्थ नही है कि उपभोग मानक बहुत उचे हैं, बल्कि गरीब लोग आय मे किसी भी वृद्धि का बहुत बडा भाग व्यय कर देते हैं, और पूर्ण रोजगार की स्थिति पर भी बहुत कम बचाते है, दूसरी ओर अत्यन्त विकसित देशों मे (पृ० 127) औसत उपभोग प्रवृत्ति सापेक्ष रूप से बहुत हो सकती है। ऐसी स्थिति रोजगार मे अपेक्षाकृत महान घटा बढी ला सकती है, ये घटा बढी और अधिक हो सकती हैं यदि कम औसत प्रवृत्ति (पूर्ण रोजगार की अवस्थाओ मे) किसी एक पर्याप्त उची सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति से जोड दी जाए। ऐसी स्थिति कुछ सीमाओ मे सम्भव है, क्योंकि वक्र C का ढलान काफी ढलवां हो सकता है, चाहे वक्र की स्थिति ऐसी हो कि पूर्ण रोजगार के आय-स्तरो पर पूर्ण रोजगार की अवस्था मे उपभोग और आय के बीच अतर बहुत हो।

पृष्ठ 126 पर दी गई केन्ज की व्याख्या को और स्पष्ट करना बहुत कठिन नही होगा। तब भी इन से सम्बद्ध कुछ रोचक सुझाव हैं। (1) वे अवस्थाएँ जिनमे

निवेश मे थोड़ी घटा-बढ़ी से आय मे अधिक घटा-बढ़ी हो जायेगी तथा (2) वह स्थितियाँ जिनमे आय और रोज़गारमे बहुत घटा-बढ़ी लाने के हेतु निवेश मे बहुत घटा-बढ़ी उत्पन्न करने की आवश्यकता होगी। पहिली का अर्थ होता है कि उची
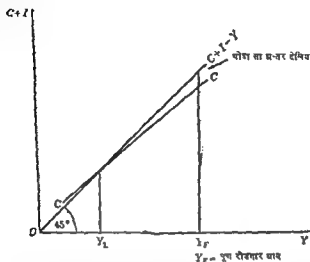
चित्र न० 13 ऊची औसतन और उची सीमात उपभोग प्रवृत्ति।

सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति होनी चाहिये (इसलिये इसका गुणक भी बडा होना चाहिये); दूसरी के लिये कम औसत उपभोग प्रवृत्ति चाहिये जो कि कम सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति से जुड़ी हुई हो।

सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति अन्य रूप से उपभोग कार्य के ढलान पर आश्रित है। किन्तु औसत उपभोग प्रवृत्ति आशिक रूप से ढलान पर और कुछ वक्र C के स्तर या स्थिति पर आश्रित है। केन्ज इस तथ्य पर पूर्णतया स्पष्ट नहीं हैं। विशेषकर देखिए पृष्ठ 126 का अन्तिम वाक्य। यद्यपि हम यह मानते हैं कि एक निर्धन देश म एक उँची सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति और एक उची औसत उपभोग प्रवृ त होती है। फिर भी यह सम्भव है कि इसम रोजगार म प्रचड घटा-बढ़ी हो, यदि C कार्य ने उद्गम से होती हुई एक सीधी रेखा का रूप धारण कर लिया, या वह अधिक ढलवा है जैसा कि चित्र स० 13 मे दिखाया गया है। और यदि हम मनमाने ढग से यह मान ल के एक धनी देश मे कम सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति और कम औसत उपभोग प्रवृत्ति दोनो ही हैं तो रोजगार मे अधिक घटा बढ़ी हो सकती है, यदि निवेश म बहुत घटा बढ़ी हो।

जैसा हम देख चुके है कि केन्ज का आधारभूत नियम यह व्यक्त करता है कि सामान्य परिस्थितियों मे $\triangle Y > \triangle C$ । इन स्थितियो मे उपभोग कार्य इन तीनो मे से कुछ भी हो सकता है—(1) एक सीधी रेखा मूल बिंदू से होती हुई (2) 45° की रेखा को काटती हुई एक सीधी रेखा, अथवा (3) एक वक्र रेखा जो दाईं ओर ढलवा हो। केन्ज यह विश्वास प्रकट करते हैं (पृष्ठ सख्या 127) कि वक्र पर वक्र C सपाट हो जायेगी (अर्थात् दाईं ओर को ढलवा हो जाती है), जैसे ही पूर्ण रोजगार का उपागम हो जाता है। यदि ऐसी बात है तो तेजी के पश्चात की अवस्थाओ की अपेक्षा पुनर्जीवन (recovery) की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे गुणक सापेक्ष रूप से अधिक होगा। "रोजगार के सभी स्तरो पर सीमान्त-उपभोग-प्रवृत्ति स्थिर नही रहती और यह सम्भव हे कि जैसे रोजगार मे वृद्धि होती है, तो सामान्यत इसकी घटने की प्रवृत्ति होगी, जब वास्तविक आय बढती है तो ऐसा कहिये कि लोग इसके उत्तरोत्तर घटते हुए अनुपात का उपभोग करना चाहेगे" (पृष्ठ सख्या 120)।

वे कहते है कि बहुत से लोग बेरोजगारी की एक अधिकाश मात्रा को ऋण बचत से सम्बद्ध कर सकते हे, "क्योकि बेरोजगार लोग या तो अपने तथा अपने मित्रो की बचत पर निर्वाह करते है अथवा सरकारी सहायता पर…"। इसका परिणाम यह होता है कि पुनर्व्यवसाय धीरे-धीरे ऋण बचत के विशेष कार्यों को कम कर देगा (पृष्ठ सख्या 121)।" अत जब आय प्रथम बार बढनी शुरू होती है तो उपभोग बहुत ही कम बढेगा क्योकि आय वृद्धि का अधिकाश भाग तो पहले के अधिव्यय (Dissaving) को पाटने मे ही प्रयुक्त होगा (अर्थात् सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति बहुत ही कम होगी)। यदि एक बार आय-व्यय समान की स्थिति ("Break-even"[1] point) से अधिक हो जाये, तो वृद्धि के बहुत बडे भाग का उपभोग हो जायेगा ; दूसरे शब्दो मे सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति अधिक सामान्य स्तर तक पहुँच जायेगी। पर अन्त मे जब भी तेजी आ जायेगी, तो आय का वितरण सम्पत्तिशालियो के अनुकूल हो सकता है (बडे लाभ) और इसी कारण सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति पुन गिर सकती है। अत किसी घोर मदी से निकलती हुई प्रथम अवस्थाओ मे गुणक बहुत कम हो सकता है। आय के साधारण ऊँचे स्तरो पर यह बढने की ओर प्रवृत्त होगा और अन्त मे बहुत ऊँचे स्तरो पर इसमे फिर गिरावट आ सकती है। इस प्रकार की धारणा केन्ज की थी।

1—"Break even" का यहाँ अभिप्राय आय के उस स्तर से है जिस में निवल बचत शून्य हो जाती है।

किन्तु यह पूर्णत निश्चित नही है। उदाहरणार्थ ड्यूसेनबरी का सिद्धान्त[1] बिल्कुल विपरीत निष्कर्षों की ओर ले जाता है।

ड्यूसेनबरी के अनुसार यदि एक बार मंदी शुरू हो जाये और आय भी कम होने लगे, तो यह पता चलेगा कि प्रतिरूपी (typical) व्यापार चक्र की स्थिति मे परिवार व्यय इकाई निकट भूतकाल मे प्राप्त किये गये जीवनस्तर से नीचे, उपभोग में किसी प्रकार की गिरावट का प्रतिरोध करती है। अत उपभोग, अनुपात मे आय से कम गिरता है। इसी प्रकार पुनर्जीवन पर आय की अपेक्षा उपभोग अनुपात मे कम तेजी से बढ़ेगा, जब तक कि पूर्वकाल मे प्राप्त की हुई आय पुन प्राप्त नही हो जाती। इस बिन्दु पर पहले वाली बचत का आय से अनुपात पुन प्राप्त हो गया है। यदि एक बार ऐसा घटित हो जाए तो परिवार व्यय इकाई बचत का आय से सामान्य अनुपात कायम रखने के लिए तैयार हो जाती है। चाहे आय अब तक के प्राप्त स्तरो से ऊँची क्यो न हो जाए। इसका अर्थ यह हुआ कि उपभोग अब उसी अनुपात मे बढ़ता है, जितना कि आय और यह अनुपात अपरिवर्तनीय रहगा, किन्तु यह चक्र की ऊँची तेजी से अधिक ऊँची सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति को सूचित करेगा। सक्षेप मे पुनर्जीवन की अवस्था मे जब तक कि पहली वाली आय का स्तर प्राप्त नही हो जाता, सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति औसत प्रवृत्ति से कम होगी, किन्तु यदि एक बार पहली आय स्तर पुन प्राप्त हो जाता है तो सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति औसत उपभोग प्रवृत्ति के बराबर हो जायेगी।

1920-1921 मे आई गई तेजी की उपभोग आय दत्त-सामग्री, ड्यूसेनबरी सिद्धान्त का कुछ समर्थन करती प्रतीत होती है। यद्यपि मैं किसी सामान्य सिद्धान्त की खोज का दभ तो नही करता तथापि मैंने अपनी पुस्तक फिस्कल पॉलिसी ऐंड बिजनेस साइकल्ज (1941 मे प्रकाशित) म निम्नलिखित इस प्रवृत्ति की ओर सकेत किया है—यदि एक बार पर्याप्त उच्च आय स्तर प्राप्त हो जाए तो आय के लगभग उतना ही अनुपात का उपभोग होगा। "इसलिए पर्याप्त ऊँची आय के वर्षों मे राष्ट्रीय आय का लगभग 88 प्रतिशत उपभोग मे व्यय हो जाता था सापेक्षतया उच्च आय स्तरो पर यह उपभोग आय प्रतिरूप पर्याप्त स्थिर प्रतीत होता है।" मैंने भी यह सकेत किया था कि 'कम से कम जब तक आय एक साधारण ऊँचे स्तर तक

1—जेम्ज ड्यूसेनबरी, इन्कम, सेविंग ऐण्ड द थ्योरी ऑव कन्ज़्यूमर बिहेवियर, हारवर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1949।

नही पहुँच जाती", आय की अपेक्षा बचत अनुपात मे अधिक तेजी से बढती प्रतीत होती है।[1]

फिर भी यह बहुत कुछ सभव है कि एक विशेष परिस्थिति यह स्पष्ट कर दे कि उपभोग 1920-1921 की तेजी के अंतिम वर्षो मे क्यो अनुपात मे इतनी तेजी से नही बढ़ी जितनी कि आय। अब मैं ऊँचे सट्टा लाभो की ओर निर्देश करता हूँ। अभूतपूर्व सट्टे बाजार की तेजी के कारण विलास वस्तुओ की उपभोग प्रवृत्ति बहुत ऊँचे स्तर तक पहुँच गई। अत आय की तुलना मे उपभोग मे अनुपातिक वृद्धि दिखाने वाली सांख्यकीय दत्त-सामग्री सम्भवत उपभोग कार्यों मे ऊपर की ओर विचलन को सूचित कर सकती है। (जहा तक 1920 29 का सम्बन्ध है) किन्तु यह कार्य की सामान्य दशा नही दर्शाती जैसी ड्यूसेनबरी के सिद्धान्त से प्रकट होता है।

पुनर्जीवन के वर्षो के विपरीत विस्तार अवस्था के तेजी के वर्षों मे उपभोग व आय के कार्यात्मक सम्बन्ध के अतिरिक्त, यह भी एक प्रश्न रह जाता है कि क्या कार्य चक्र की अधोगति (Downswing) तथा सुधार की दशा मे (Upswing) एक ही रूप धारण नही करेगा। सीमित काल को देखते हुए जिसकी हमारे पास पर्याप्त दत्त-सामग्री उपलब्ध है—विशेषकर जब कि युद्ध के अत्यन्त अशान्त वर्षों को निकाल देना आवश्यक है—इस विषय के सम्बन्ध मे निश्चित निष्कर्ष अभी तक प्राप्त नही हुए है।

निवेश मे किसी निश्चित वृद्धि से रोजगार एव आय के सभाव्य विस्तार का आँकने के लिए गुणक के मान को ही नही बल्कि उन सभव क्षतिपूरक उपादानो पर भी विचार करना आवश्यक है जो प्रारम्भिक उत्प्रेरणा को निष्फल (अथवा तीव्र) कर सकते है। अत सार्वजनिक कार्यों पर परिव्यय मे कोई निवल वृद्धि घटे हुए निजी निवेश द्वारा निष्फल हो सकती है (पृ० 119)।

उदाहरणार्थ सार्वजनिक कार्यो मे धन लगाने की विधि ब्याज दरो को बढा सकती है और इस प्रकार निजी निवेश को रोक सकती है। इस प्रतिकूल प्रभाव को रोका जा सकता है यदि सार्वजनिक कार्यों की नीति के साथ-साथ विस्तारवादी मुद्रा

---

[1]—ऐल्विन ऐच. हेन्सन की पुस्तक 'फिस्कल पालिसि ऐण्ड बिजनिस साईक्लज", डब्ल्यू० डब्ल्यू० नाटन ऐण्ट क० 1941, पृ० 237, 246। मूल पाठ में इस वाक्यांश को तिरछे शब्दों में उद्धृत नहीं किया गया है।

नीति अपनायी जाये (पृ० स० 119) यह भी हो सकता है कि सार्वजनिक कार्यों की वृद्धि के कारण पूंजीगत पदार्थों की लागत बढ जाये और इस प्रकार निजी प्रवेश पर प्रतिकूल प्रभाव पड जाये। इसके अतिरिक्त यह भी सभव है कि सरकारी कार्यक्रम "विश्वास" को धक्का पहुँचाये और इस प्रकार निवेश को भी कम कर दे। यह भी सभव है कि किसी खुली अर्थ-व्यवस्था मे सार्वजनिक पूँजीगत व्यय विदेशी माल और विदेशी उपकरणो की माग पैदा कर दे और इस प्रकार अपने देश की बजाय विदेश मे रोजगार की वृद्धि कर दे (पृ० 120)। किन्तु इसमे से कोई परिकल्पना गुणक विश्लेषण को अमान्य नही बना देती। फिर भी यह सत्य है कि सार्वजनिक अथवा निजी निवेश मे किसी निश्चित वृद्धि के निवल प्रभाव को आँकने के लिए इन सब परिकल्पनाओ पर ध्यान दिया जाना चाहिए जैसा कि वास्तव मे केन्ज़ ने किया है।

हम पहले भी कई बार उपभोग कार्य के ढलान और उपभोग कार्य मे विचलन के बीच भेद स्थापित करने की महत्ता को बता चुके है। वह सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति जो कि चक्र की विभिन्न अवस्था मे बदल सकती है और जो वक्र के ढलान द्वारा निर्धारित की जाती है, यह निश्चित करती है कि गुणक क्या होगा किन्तु कार्य के ढलान के अतिरिक्त कार्य मे विचलन का भी प्रश्न है। ठीक जैसे यह माना जा सकता है कि परिचित माग कार्य मे हटाव हो सकते हैं (अर्थात् रुचि बदलने के कारण, स्थानापन्न वस्तुओ के उपक्रम के कारण, आदि) वैसे ही उपभोग कार्यो मे भी हो सकते है।

करो मे परिवर्तनो के कारण उपभोक्ता स्थायी माल की अस्थायी अप्राप्ति के कारण, युद्धकालीन देशभक्तिपूर्ण बचत के कारण, भावी कमियो की आशाओ के कारण (जैसे कि कोरिया के सकट के प्रारम्भ से हुआ था) और अन्य कारणो से भी कार्य मे विचलन हो सकते हैं। केन्ज़ परिवर्तनशील आशाओ की ओर बदलती हुई सस्थाओ के उस गत्यात्मक प्रभाव से भली भांति परिचित थे, जो कि उपभोग कार्यों मे भारी विचलन ला सकता है और उन्होंने जनरल थ्योरी के दसवें अध्याय मे इस सम्बन्ध मे जहा-तहा सुभाव भी दिये हैं।

सर्वसमिका समीकरण बनाम व्यवहार समीकरण (Identy Equations Vs. Behaviour Equations)

शायद जनरल थ्योरी के दसवें अध्याय मे चौथा खण्ड सबसे महत्वपूर्ण

है। यदि केन्ज़ के आलोचकों द्वारा यह ग्रन्थ सावधानी तथा सहानुभूति से अध्ययन किया गया होता तो बहुत कुछ अनावश्यक भ्रान्ति का निश्चित ही परिहार किया जा सकता था। क्योंकि मैंने इस विषय पर एक अन्य स्थल पर पर्याप्त प्रकाश डाला है,[1] यहाँ पर संक्षेप में ही लिखूँगा।

सूक्ष्म विचार से यह पता चलता है कि केन्ज़ ने (1) बचत एवं निवेश के समान होने (सर्वसमिका समीकरणों) तथा (2) "सन्तुलित अवस्था" में बचत और निवेश के (व्यवहार समीकरणों) होने। के बीच अन्तर को स्पष्ट देखा था। साथ ही उन्होंने इनके बीच भी अन्तर पाया—(1) एक गतिमान सन्तुलन (Moving equilibrium) विश्लेषण जिसमें परिवर्तनशील चर सदा एक दूसरे से लगातार सामान्य सम्बन्ध रखते हुए साथ चलते हैं और जिनमें समय पश्चता नहीं होती, (2) एक क्रमिक काल विश्लेषण जिसमें समय पश्चताएँ होती हैं तथा (3) एक तुलनात्मक स्थैतिकी विश्लेषण जो समय रहित होती है।

क्योंकि सर्वसमिका समीकरण पूर्णतया समानार्थक होते हैं। अतः वे कुछ भी स्पष्ट नहीं कर पाते। यह कहना कि 1 नवम्बर, 1950 को शिकागो की मण्डी में खरीदे गए गेहूँ की मात्रा बेची गई गेहूँ की राशि के बराबर थी। इसमें गेहूँ के मूल्य का पता लगाने में सहायता नहीं मिलती। इसी प्रकार जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि सर्वसमिका समीकरण जैसे MV=PT और I=S कुछ भी स्पष्ट नहीं कर पाते।

व्यवहार समीकरणों में और सर्वसमिका मात्र समीकरणों में स्पष्ट भेद स्थापित करना चाहिए। एक व्यवहार समीकरण चरों के बीच कार्यात्मक सम्बन्धों के रूप में चलता है। परिचित माँग वक्र तो एक अनुसूची है जो कि माँगी हुई मात्रा का मूल्य सम्बद्ध कर देती है। यह अनुसूची बाजार व्यवहार के बारे में विवरण है। इस विवरण को बाजार के निरीक्षण द्वारा पर्याप्त यथार्थ रूप से सत्यापित अथवा असिद्ध किया जा सकता है। यह एक सत्यापित परिकल्पना है और यही बात संभरण अनुसूची पर भी लागू होती है। यह कहना कि माँग संभरण के बराबर है, महत्त्व-हीन है। यदि कोई यह कहता है कि अनुसूची के रूप में माँग और संभरण बराबर

1—देखिए मेरा 'मानेटरी थ्योरी एण्ड फिस्कल पालिसी' नामक पुस्तक प्रकाशक मैकग्रा हिल बुक कं० इं० 1949 पृ० 219-225 और मेरा ही पुस्तक 'बिजनेस साइकल्स ऐण्ड नेशनल इन्कम' प्रकाशक डब्ल्यू० डब्ल्यू० नार्टन एण्ड कं० 1951, पृ० 160-163।

हैं, तो वह कुछ सारयुक्त बात कह रहा है अर्थात् यदि इन अनुसूचियो मे ऐसे क्षेत्र होते हैं जो एक-दूसरे को काटते हैं तो मूल्य और मात्रा (क्रय एव विक्रय की गई) परस्पर निर्धारित हो जाती है। दोनो अनुसूचिकाओ मे प्रतिच्छेद के बिन्दु निरीक्षणीय (या वास्तविक) बिन्दु बन जाते हैं। दूसरे बिन्दु प्रतीयमान बिन्दु होते हैं अर्थात् वे बिन्दु जो असल बिन्दु बन सकते हैं यदि विरोधी अनुसूचियाँ समुचित रूप से हट जाएँ। यह भी कहा जा सकता है कि प्रतीयमान बिन्दु दो चरो के सामान्य अथवा इच्छित सम्बन्ध को सूचित करते हैं। यदि मूल्य दिया हुआ है तो लोग निश्चित मात्रा खरीदना चाहेंगे। माँग अनुसूची कोई असल मूल्यो और असल खरीदी हुई मात्राओ की अनुसूची नही है। यह तो ऐसी अनुसूची है जो लोगो की इच्छाओ को अभिव्यक्त करती है। मार्शल की माँग अनुसूची विभिन्न मूल्यो पर 'क्रय प्रवृत्ति' को सूचित करती है। इसी प्रकार केन्ज की उपभोग अनुसूची आय के विभिन्न स्तरो पर 'उपभोग प्रवृत्ति' को सूचित करती है और उनकी बचत अनुसूची विभिन्न आय स्तरो पर 'बचत-प्रवृत्ति' को सूचित करती है।

यदि हम ऐसी अनुसूचियो का प्रयोग करते हैं जो (1) आय को निवेश की माँग से तथा (2) आय को बचत की सभरण से सम्बद्ध करती है तो हम जल्दी ही समझ लेंगे कि आय और निवेशित (अथवा बचाई हुई) राशि दोनो अनुसूचिकाओ के प्रतिच्छेद-बिन्दु पर परस्पर निर्धारित हो जाएँगी।

फिर भी केन्ज मुख्य रूप से समस्त माँग अनुसूची अर्थात् $I+C=(Y)$ पर और आय के स्तर को निर्धारित करने के लिये समस्त सभरण अनुसूची पर विश्वास करते थे। वे मानते थे कि निवेश सीमान्त कुशलता अनुसूची और ब्याज की दर (इसके विषय मे विस्तारपूर्वक आगे कहा जायगा) द्वारा निर्धारित होता है।[1] यदि इस प्रकार से निर्धारित निवेश की मात्रा और उपभोग कार्य दिया हुआ हो तो ये दोनो मिलकर समस्त माँग अनुसूची प्रस्तुत कर देंगे। समस्त माँग अनुसूची एव समस्त सभरण अनसूची का प्रतिच्छेद आय के स्तर को निर्धारित करेगा।

ध्यान मे रहे कि यह कथन केवल एक प्रथम सन्निकटन के रूप मे है क्योंकि *निवेश अनुसूची की सीमान्त कुशलता न तो आय के स्तर और न ही आय मे* परिवर्तनो से मुक्त है। तकनीकी प्रगतियो द्वारा प्राप्त निवेश के अवसर (अर्थात तथा

1—देखिये इस पुस्तक का पाचवा अध्याय।

कथित स्वत प्रेरित निवेश) असल आय मे निम्नस्तरो की अपेक्षा असल आय के उच्च स्तरो पर अधिक अच्छी तरह से प्रयोग म लाये जा सकते है। इसके अतिरिक्त बहुत सा निवेश आय के स्तर मे परिवर्तनो से प्रेरित किया जाता है [त्वरण (acceleration) सिद्धान्त]। अत निवेश माँग अनुसूची (अर्थात् ब्याज की दर से निवेश को सम्बद्ध कर देने वाली अनुसूची) स्वय आय का तथा आय के स्तर मे परिवर्तनो का कार्य है। आवश्यकता तो है एक निवेश माँग अनुसूचियो के वर्ग की और उसी प्रकार से बचत-अनुसूचिकाओ के वर्ग की भी। इस प्रकार की अनुसूचिकाओ की श्रेणी से हम ऐसी अनुसूचिका प्राप्त कर सकते हैं जो ब्याज की दर से आय का सम्बन्ध सूचित करती है अर्थात् जो हिक्स (Hicks) के IS वक्र को दिखाती है। चित्र को पूरा करने के लिये LM वक्र[1] भी चाहिये किन्तु इस विषय पर हम सातवे अध्याय म बाद मे विचार करेंगे।।

जैसा कि हम देखगें, इस जटिल विश्लेपण के लिये विस्तृत व्याख्या अपेक्षित है। किन्तु हम यहा पर एसा नही कर सकते। तब भी यहा पर यह तो मान ही लें कि निवेश की वृद्धि तथा कुछ उपभोग कार्य भी दिया हुआ है। इस प्रकार की दत्त-सामग्री के आधार पर हम गुणक विश्लेपण का उपयोग करके आय मे वृद्धि को (प्रथम सन्निकटन के रूप मे) निर्धारित कर सकते हैं।[2]

गुणक की तीन सकल्पनाऐं (Concepts)

अब विस्तार की प्रक्रिया का इन तीनो मे से किसी भी एक विधि द्वारा विश्लेपण किया जा सकता हैं। ये सब के सब केन्ज द्वारा वर्णित किये गये हैं यद्यपि वे इतने सक्षिप्त हैं कि आसानी से पाठक की समझ मे नही आते। इनमे सबसे पहला गतिमान सन्तुलन है अर्थात् "गुणक का तर्क सिद्धान्त जो समय पश्चता के बिना लगातार ठीक उतरता है" (पृष्ठ स० 122)। दूसरा है काल विश्लेपण जिसम मुख्य रूप से उपभोग व्यय पश्चता होती है, तीसरा है तुलनात्मक स्थैतिकी गुणक जो इस रूप मे "समय रहित" है कि यह दो लगातार स्थैतिकी सन्तुलन अवस्थाओ के बीच समय अवधि के ऊपर कूद जाता है। जब कि केन्ज का विश्लेपण अध्याय के

[1]—LM वक्र और IS वक्र को सातवें अध्याय में विस्तार से स्पष्ट किया जायेगा।

[2]—वास्तव में यह बहुत जटिल है क्योंकि इसमें त्वरक (accelerator) का भी प्रयोग होता है। देखिये मेरी उपर्युक्त रचना "बिज़निस साइकल्ज ऐण्ड नेशनल इन्कम" का 11वा अध्याय।

अधिकांश भाग मे, गुणक के तर्कसगत सिद्धान्त के रूप मे चलता है तो 10वें अध्याय मे चौथा खण्ड समय पश्चता विश्लेषण अथवा काल विश्लेषण से मुख्य रूप से सम्बन्ध है। यह खण्ड इसलिए विशेष रूप से रोचक है क्योकि बहुधा आलोचको ने या तो इसकी उपेक्षा कर दी है या इसको गलत समझ लिया है।

केन्ज इस खण्ड के पाठक को यह स्मरण कराकर प्रारम्भ करते हैं कि युक्ति को गुणक के तर्कसगत सिद्धान्त के आधार पर अर्थात् समय पश्चता के बिना गतिमान् सन्तुलन विश्लेषण उस बिन्दु तक ले जाया गया है जिसमे यह मान लिया गया है कि निवेश मे कोई भी परिवर्तन पहले से ही देख लिया जाता है जिससे न तो कोई उपभोग माल उत्पादन पश्चता ही होती है और न ही उपभोग व्यय पश्चता। इसके विपरीत काल विश्लेषण में यह मान लिया जाता है कि पूँजीगत पदार्थ उद्योगो की निप[illegible]क विस्तार का पूर्णतया अग्रावलोकन नही हो पाता है। अत समय पश्चता का[illegible] ध्यान रखकर विस्तार के परिणाम धीरे धीरे घटित होते हैं। पूरा प्रभाव तो कुछ अवधि के बाद ही प्रतीत होता है।

निवेश में प्रारम्भिक वृद्धि के लिए इस प्रकार के पश्चायित समजन को हम दो भागो मे बाँटा जा सकता है—(1) प्रारम्भिक विस्तार से प्रेरित होकर सम्बन्धित उद्योगो मे निवेश की धीरे धीरे वृद्धि तथा (2) उपभोग व्यय पश्चता। पहली अवस्था मे यह देखा जाता है कि "मध्यावकाश के उत्तरोत्तर कालो मे समस्त निवेश मे लगातार वृद्धि होती रहती है" (पृ० 123)। दूसरी अवस्था मे उपभोग व्यय पश्चता पहले तो $\frac{\Delta C}{\Delta Y}$ को तीव्र गति से गिरा देती है और फिर उत्तरोत्तर कालो मे इसे एक सामान्य अनुपात तक धीरे-धीरे बढा देती है। प्रारम्भ मे उपभोग उस मात्रा से कम बढता है जो चालू आय से सामान्य सम्बन्ध प्राप्त करने के लिए पर्याप्त होती है। चालू आय का वास्तविक उपभोग से सम्बन्ध सामान्य उपभोग प्रवृति से बिल्कुल दूर हट जाता है अत केन्ज कहते हैं कि उपभोग की सीमान्त प्रवृति मे अपने सामान्य मूल्य से अस्थायी विचलन होता है। यद्यपि धीरे धीरे वह प्रवृति फिर वही लौट आती है (पृ० 123)।

यह भाषा बहुत कुछ सम्भ्रान्ति का कारण रही है। क्या अभी-अभी ऊपर लिखा हुआ उद्धरण "सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति" के पद का समुचित उपयोग प्रदर्शित करती है ?" सम्भवत नही। सम्भवतया यह कहा जा सकता है कि शब्दो को सर्वथा

उचित उपयोग के लिए आवश्यक है कि "उपभोग प्रवृत्ति" वाक्याश से आशय सामान्य सम्बन्ध से होना चाहिये न कि उस अस्थायी सम्बन्ध से जो वास्तव मे (विश्लेषण तथा समय पश्चता के कारण) सामान्य इच्छाओ से मेल नही खाता। निस्सदेह केवल यही कहा जा सकता है कि अपने सामान्य मूल्य से परे $\frac{\Delta C}{\Delta Y}$ का अस्थायी विचलन हो जाता है और बाद मे यह धीरे-धीरे इसकी ओर लौट आता है। किन्तु इस प्रकार का कथन यद्यपि निस्सदेह ठीक है तथापि वह इस प्रश्न को हल किये बिना छोड देता है कि क्या एक सतुलित अवस्था से दूसरी अवस्था मे सक्रमण काल मे $\frac{\Delta C}{\Delta Y}$ का मार्ग सत्यापनीय (verifiable) व्यवहार प्रतिरूप पर आश्रित है या यह केवल यत्रतत्रिक स्थिति है। यदि यह केवल यत्रतत्रिक है, तो यह कथन केवल समानार्थक है, यदि मार्ग व्यवहार प्रतिरूप के अनुसार चलता है तो हम कारण उपादानो के एक सही विश्लेषण की बात कर सकते है।

ठीक यही स्थिति मार्शल की परिचित माग और सभरण विश्लेषण के सबध मे उत्पन्न होती है। किन्तु यहाँ पर भी कुछ शिथिल भाषण का ही बहुधा प्रयोग हुआ है। मान लीजिये कि माग अनुसूची मे ऊर्ध्वमुखी विचलन है। इस कारण क्षणिक रूप से मूल्य एकदम बढ जाएगे। सभारक अपने आप को नई माग स्थिति के अनुकूल एकदम नही ढाल सकते। जैसाकि कई बार कहा गया है, "सभरण अनुसूची" मूल्य के सम्बन्ध मे क्षणिक रूप से मूल्य निरपेक्ष बन जाती है। तब भी धीरे-धीरे जैसे सभारक अपने आपको नई माग स्थिति के अनुकूल बना लेते है, सभरण अनुसूचिका भी उत्तरोत्तर मूल्य सापेक्ष बनती जाती है जब तक कि यह पुन सामान्य नही हो जाती। थोडा-थोडा करके समय-पश्चता के बाद सभरण अनुसूची पुन सामान्य मूल्य सापेक्षता प्राप्त कर लेती है।

इस सदर्भ मे क्या "सभरण अनुसूची नामक वाक्याश को प्रयुक्त करना उचित है" ? क्या मूल्य के सबध मे सभरण की क्षणिक मूल्य निरपेक्षता सभरण अनुसूची मे एक ऐसा वास्तविक विचलन माना जा सकता है, जो सभारको की प्रवृत्ति अर्थात् (अल्पकालीन सामान्य व्यवहार) मे परिवर्तन सूचित किया हो इससे पूर्व कि किसी नवीन सामान्य सभरण अनुसूची को प्राप्त किया जाए, नई माग स्थिति से सभरको का समजन स्थापित करने के लिये समय अपेक्षित है। जब तक यह सक्रमण व्यवहार व्यवस्थित और सत्यापनीय है तब तक इसको "अल्पकालीन सामान्य" प्रवृत्ति

कहा जा सकता है। इस अवस्था मे यह कथन समानार्थक मात्र ही नहीं है।

जब समय पश्चतायें अन्तर्ग्रसित है तो आय निर्धारण के सिद्धान्त के विषय मे भी यही पारिभाषिक समस्या उत्पन्न हो जाती है। जैसा हम देख चुके हैं कि एक बदली हुई माँग स्थिति से सभारको को अल्पकालीन समजन को स्पष्ट करने के लिये केन्ज ने उसी रूप मे "उपभोग प्रवृत्ति" नामक वाक्याश को प्रयुक्त किया है, जिस रूप मे लेखको ने "अल्पकालीन सामान्य सभरण अनसूची नामक वाक्याश को प्रयोग किया है। यदि निवेश बढ़ता है तो सम्भवत आय मे वृद्धि के साथ साथ उपभोक्ताओ पर तुरत उसकी प्रतिक्रिया न हो, उपभोग तथा व्यय मे समय पश्चता होती है। "सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति' क्षणिक रूप से शून्य तक पहुच जाती है, या कम से कम 'सामान्य" से बहुत नीचे रहती है। किन्तु शीघ्र ही उपभोक्ता अपने व्ययो को इस तरह समजन कर लेते है जिससे वे आय के सामान्य सबध के अनुरूप हो सक। सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति तब तक बढती चली जायेगी जब तक समय पश्चता के बाद यह पुन सामान्य नही बन जाती। केन्ज ने इसे इसी रूप मे प्रस्तुत किया है।

मान लो "प्रवृत्ति' (अर्थात् एक व्यवहार प्रतिरूप) कहने की अपेक्षा केवल प्रकगणित अनुपात $\frac{\Delta C}{\Delta Y}$ ही का प्रयोग कर लेते है। तो आय मे वृद्धि का निवेष मे वृद्धि से सबध स्थापित करने वाला गुणाक निस्सदेह इस प्रकार है $\frac{1}{1-\frac{\Delta C}{\Delta Y}}$,

किन्तु इस सदर्भ मे गुणाक एक वास्तविक प्रवृत्ति अर्थात् आय से उपभोग का या तो "अल्पकालीन सामान्य तथा दीर्घकालीन सामान्य" सबध पर आधारित नही है। इस प्रकार का गुणाक तो अधिकाश रूप से गणित का गुणाक है। अर्थात् स्वय सिद्ध (truism) है तथा व्यवहार प्रतिरूप पर आधारित एक ऐसा वास्तविक व्यवहार गुणक नही है जो कि उपभोग और आय के बीच एक सत्यापनीय सबध स्थापि करता है। गणित का गुणक मात्र $\frac{1}{1-\frac{\Delta C}{\Delta Y}}$ समानार्थक है। किन्तु वास्तविक गुणक समानार्थक नही है, क्योकि या तो यह अल्पकालीन सामान्य या दीर्घकालीन सामान्य व्यवहार प्रतिरूप पर आधारित हैं।

एक ऐसे समाज की कल्पना कीजिए जिसमे सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति ¾ है। यह भी मान लीजिये कि हम स्थिर आय प्रवाह से प्रारम्भ करते हैं। हम तब दिर्घ-

वालिक आधार पर प्रति वर्ष निवेश की अतिरिक्त सौ इकाइयों का विनियोग कर देते हैं। जब नया निवेश अथवा अन्तःक्षेप किया जायगा तो व्यय पश्चता के कारण, उपभोग प्रथम समयावधि में तनिक भी नहीं बढ़ेगा। मान लो $\Delta C_1 = 0$, $\Delta Y_1 = 110$ है, तो $\frac{\Delta C_1}{\Delta Y_1} = 0$। द्वितीय समयावधि में $\Delta C_2 = 67$ और $\Delta Y_2 = 167$ (यदि प्रारम्भिक स्थिर आधार से मापा जाये) अथवा $\frac{\Delta C_2}{\Delta Y_2} = \frac{67}{167}$। तृतीय समयावधि में $\Delta C_3 = 111.5$ और $\Delta Y_3 = 211.6$, अतः

$$\frac{\Delta C_3}{\Delta Y_3} = \frac{111.5}{211.5}$$

चतुर्थ समयावधि में $\frac{\Delta C_4}{\Delta Y_4} = \frac{141}{240}$ और इसी क्रम से आगे चलता जायगा, जब तक कि $\frac{\Delta C_n}{\Delta Y_n}$ सामान्य सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति की ⅔ सीमा तक नहीं पहुंच जाता।

यह अंकगणित का उदाहरण केन्ज के ऊपर उद्धृत किये गये सामान्य कथन को प्रदर्शित करता है। यह उस मार्ग (निश्चित व्यय-पश्चता व्यवहार प्रतिरूप पर आधारित) की ओर संकेत करता है जिस से होकर गुणक संक्रमण काल में गतिशील होता है। व्यय पश्चता विश्लेषण यह सूचित करता है कि संक्रमण काल के पर्यन्त गुणक किस प्रकार बदलता है। "किन्तु समय की प्रत्येक अवधि में गुणक का सिद्धान्त इस रूप में ठीक उतरता है कि समस्त माग में वृद्धि=निवेश की कुल वृद्धि × सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति के होती है।" अर्थात् परिवर्तनशील सीमान्त प्रवृत्ति व्यवहार प्रतिरूप भावी निश्चित एवं पूर्व कल्पनीय व्यय पश्चता पर आधारित है (पृष्ठ 12.)। वास्तव में यदि यही स्थिति है तो हमें एक ऐसा सत्यापनीय व्यवहार परिकल्पना हो जाती है जो समानार्थक मात्र नहीं है।

संक्रमण (काल-विश्लेषण) के पर्यन्त $\frac{\Delta C}{\Delta Y}$ के मूल्यों की श्रेणियां निम्नलिखित होंगी—(1) उन अनुपातों से जो "यदि विस्तार को पूर्व देख लिया होता तो विद्यमान होते" (अर्थात् गुणक का तर्कमगत सिद्धान्त) अथवा (2) उन अनुपातों से जो

अन्ततोगत्वा प्राप्त होगे जब कि समाज समस्त निवेश के नवीन स्थाई स्तर पर ठहर जाता है" (पृ० 123) अर्थात् गुणक का तुलनात्मक स्थैतिकी सिद्धान्त।

इस बात पर बल देना आवश्यक है कि समय पश्चता विश्लेषण मे ही कठिन अल्पकालीन सामान्य सकल्पना सामने आती है। यदि समय पश्चता सिद्धान्त को समानार्थक होने के आरोप से बचना है तो हमे अल्पकालीन सामान्य व्यवहार प्रतिरूप को मानना ही पडेगा। इस प्रकार की कोई कठिनाई इनमे उपस्थित नही होती या तो (1) उस तर्कसगत सिद्धान्त के विषय मे (इसमे समय-पश्चता के होने हुए एकदम समजन हो जाता है), जिस मे व्यवस्था के चर एक दूसरे से लगातार सामान्य सबध (गतिशील सतुलन) बनाये रहते हैं, (2) तुलनात्मक स्थैतिकी विश्लेषण के सबध में जो समय रहित है और जिसमे नई सतुलित अवस्थाए फिर से किसी सामान्य व्यवहार प्रतिरूप को प्रदर्शित करती हैं।

गतिशील सन्तुलन विश्लेषण "गुणक का वह तर्कसगत सिद्धान्त है जो समय पश्चता के बिना हर समय लगातार ठीक उतरता है" (पृ० 122)। इसमे यह माना जाता है कि समस्त निवेष मे परिवर्तन काफी पहले से इतना देख लिया गया है जिससे पूँजीगत वस्तुओ उद्योगो के साथ साथ उपभोग उद्योग भी आगे बढ सकें (पृ० 122)। यदि विस्तार पहिले से ही देख लिया जाता है तो कोई व्यय पश्चता नही होगी और इस प्रकार आय से उपभोग का सामान्य सबध बना रहेगा। इसीलिये "सामान्य" गुणक लगातार ठीक रहता है। तब भी इसका अर्थ यह नही हो जाता कि गुणक आवश्यक रूप से स्थिराक रहे। जैसे-जैसे आय मे परिवर्तन होता है, वैसे-वैसे उपभोग की आय से इच्छित अनुपात भी धीरे-धीरे बदलता रहेगा। यदि ऐसा है तो सामान्य गुणक भी धीरे-धीरे बदलता रहेगा किन्तु व्यय-पश्चता नही होती। इच्छित उपभोग सदैव वास्तविक उपभोग के बराबर होता है, समय की गति के साथ व्यवस्था बदलती रहेगी किन्तु यह सदा सन्तुलन मे रहेगी अर्थात् गतिमान सतुलन के रूप मे रहेगी।

यह है वह सकल्पना (तुलनात्मक स्थैतिकी विश्लेषण को नही) जिसे इस अध्याय मे केन्ज ने मुख्य रूप से प्रयोग[1] किया है। यह सत्य है और यह स्पष्ट रूप से निम्न बातो से पता चलता है कि 'अब तक विवाद उस समस्त निवेश मे परिवर्तन के

---

[1]– केन्ज पर लिखे गये आलोचनात्मक साहित्य में यह बात साधारणतया छूट गई है। आलोचकों ने प्राय यह मान लिया है कि यहां पर केन्ज के ध्यान में समयरहित तुलनात्मक स्थिति की सकल्पना थी। यह कि यह गलत धारणा है सुगमता से जनरल थ्योरी (पृ० 122) के चौथे खण्ड के प्रथम वाक्य से पता चल सकता है।

आधार पर चलता रहा है जो पर्याप्त पहिले ही देख लिया गया है कि जिससे पूँजीगत वस्तु उद्योगो के साथ साथ उपभोग उद्योग भी आगे बढ सकें" (पृ० 122) अर्थात् किसी गतिमान सतुलन के आधार पर आगे बढे ।

समय रहित गुणक अथवा तुलनात्मक स्थैतिकी विश्लेषण सक्रमण काल को छोड जाता है। यह एक सतुलित अवस्था से दूसरी सतुलित अवस्था पर कूद जाता है। यह इन दोनो के बीच समय मार्ग की उपेक्षा कर देता है। नई सतुलित अवस्था मे आय की वृद्धि (गत सतुलित अवस्था म आय से अधिक) निवेश की वृद्धिगुना गुणक (जो कि सामान्य उपभोग प्रवृत्ति पर आधारित है) के बराबर होगा। इस समस्त सक्रमण काल मे (जिस पर यहा ध्यान नही दिया गया है) वास्तविक बचत, यदि केन्ज की शब्दावली का प्रयोग किया जाये निवेश के बराबर होती है, किन्तु केवल नवीन सतुलन मे आय स्तर पर इच्छित बचत निवेश के बराबर होनी है। दूसरे शब्दो मे जब व्यय पश्चता पर अन्ततोगत्वा विजय पा ली जाती है तो उपभोग, एक बार फिर आय के सामान्य अथवा इच्छित अनुपात तक पहुच जाता है। समय हीन गुणक विश्लेषण सक्रमण की उपेक्षा कर देता है और केवल नवीन सतुलित आय स्तर से सबध स्थापित करता है ' जबकि समाज समस्त निवेश के एक नवीन स्थाई स्तर पर ठहर जाता है (पृ० 123)।

अन्य शब्दो मे यह कटौती की वह दर है जो भावी वार्षिक प्रतिफलो की श्रेणियो के वर्तमान मूल्य को सम्बद्ध पूँजीगत वस्तु की पुन पूँजीयन लागत के बराबर कर देती है। अत पुन पूँजीयन लागत के ऊपर, वार्षिक प्रतिफलो की राशि ऐसी है जो कि निवेश पर ऐसी प्रतिफल दर (अर्थात् लागत पर प्रतिफल दर) दे देगी जो कि कटौती के इंगित दर के बराबर होगी। दूसरे शब्दो मे, प्रत्यक भावी वार्षिक प्रतिफल के दो भाग होते हैं—(1) कटौती तथा (2) मूल्य ह्रास।

केन्ज द्वारा की गई पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता की कठोर परिभाषा मे विशेष बात यह है कि वे ठीक ही पूँजीगत वस्तु के सम्पूर्ण प्रत्याशित जीवनावधि मे वार्षिक "भावी उपज" की सारी श्रेणियो पर विचार करते हैं। साधारणतया पूँजी के सीमान्त उत्पत्ति पर विचार करते हुए, अर्थशास्त्रियो ने उस चालू सीमान्त उत्पत्ति अर्थात् चालू वर्ष की निरपेक्ष वार्षिक उत्पत्ति पर (चालू व्यय और मूल्य ह्रास घटाने के पश्चात) ध्यान केन्द्रित किया था। उस अवस्था म जबकि पूँजी की सीमान्त उत्पत्ति को एक अनुपात के रूप मे वर्णन किया गया हो यह अनुपात निवल चालू उत्पत्ति (अर्थात् चालू व्यय और मूल्य ह्रास दोनो को काटकर) को भाज्य (numerator) और पूँजीगत वस्तु की लागत को हर (denominator) के रूप म प्रयोग करके प्राप्त किया गया था। निस्सदेह यह लागत पर प्रतिफल के चालू दर को बतायेगा। और वास्तव मे यह ही मार्शल द्वारा प्रयुक्त वह रीति है, जिसे जनरल थ्योरी के 139 से 140 पृष्ठो पर दिये गए उद्धरणो मे दिया गया है। किन्तु केन्ज वार्षिक उत्पत्ति की सपूर्ण श्रेणियो मे (उन्होने इन्हे "भावी उपज" कहा है) आशाओ के कार्य पर बल देना चाहते थे और उन्होने उस कटौती दर द्वारा पूँजीगत वस्तु के सपूर्ण प्रत्याशित जीवन मे लागत पर निवल प्रतिफल को अभिनिश्चित किया है, जो इन सपूर्ण श्रेणियो के वर्तमान मूल्य को पुन पूँजीयन लागत के बराबर कर देती है।

केवल आशासित चालू उत्पत्ति ही नही, बल्कि किसी पूँजी परिसपत्ति से भावी उपज की सपूर्ण श्रेणियो से सबद्ध प्रत्याशाए किसी दीर्घकालिक पूँजीगत वस्तु के विषय मे निवेश निर्णयो के लिये विशिष्ट रूप से महत्वपूर्ण कार्य करती है। क्योकि सम्भवत अत के वर्षो मे उस प्रकार की पूँजीगत वस्तु को उस नये उपकरण से प्रतियोगिता करानी पडे, जिसको पुन पूँजीयन लागत प्रति उत्पत्ति इकाई से कम हो अथवा जो कि प्रतिफल के निम्नतर दर से (उस समय प्रचलित निम्नतर ब्याज दर के कारण) सतुष्ट हो (जनरल थ्योरी, परिच्छेद 3, अध्याय 11)।

अन्त म, भावी उपज की श्रेणी मे अन्त स्थ जोखिम तत्व पर केन्ज विचार

अध्याय 5

पूंजी की सीमान्त कार्यकुशलता

[जनरल थ्योरी—अध्याय 11, 12]

जनरल थ्योरी के 11वें और 12वे अध्याय विशेष रूप से स्पष्ट एव सुभावपूर्ण हैं। 11वा अध्याय मौलिक न होते हुए भी निवेश माग अनुसूची का एक अत्यन्त सुन्दर विवरण है। इसमे विक्सल (Wicksell) पुरोगामी थे और इर्विंग फिशर (Irving Fisher) भी केन्ज के प्रत्याशी थे।[1] फिर भी केन्ज ने प्रशत अपने पूर्ववर्तियो से अधिक आशासाओ के कार्य पर बल देकर योगदान किया था। 11वें अध्याय म उन्होंने अपनी और अपने पूर्ववर्तियो की आशासाओ के दृष्टिकोण के बीच विषमता दिखलाई है, जबकि 12वें अध्याय मे दीर्घकालीन आशसाओ, अर्थात् दीर्घकालीन निवेश के निर्धारक के रूप मे आशसाओ के कार्य का पाडित्यपूर्ण, मौलिक और अत्यत यथार्थ विवरण प्रस्तुत किया है।

यदि अतिरिक्त पूंजीगत पदार्थ का मूल्य अपनी लागत (सभरण मूल्य या पुन पूंजीयन लागत) (replacement cost) से अधिक हो जाता है तो पूंजी निवेश की अभिप्रेरणा तीव्र हो जाएगी। अब पूंजीगत पदार्थ की अतिरिक्त इकाई का मूल्य एक ओर तो उन भावी वार्षिक प्रतिफलो की श्रेणी पर निर्भर है, जिनकी आशसा की जा सकती है, और दूसरी ओर ब्याज की उस दर पर आधारित है जिस पर इन आशसित वार्षिक प्रतिफलो की कटौती होती है।

पूंजीगत वस्तुओ की एक इकाई का मूल्य भावी वार्षिक प्रतिफलो की श्रेणी का पूंजीकरण (Capitalizing) कर के ज्ञात किया जा सकता है। अत यदि $R_1+R_2+R_3 \ldots +R_n$ प्रणाली वार्षिक प्रतिफलो या निवेश की श्रेणी है अथवा निवेश की "भावी उपज" है और यदि i ब्याज के बाजार दर के लिये प्रयुक्त हुआ है,

---

[1]—देखिये मेरी पुस्तक 'बिजनेस साइकल्स ऐण्ड नेशनल इन्कम', प्रकाशक डब्ल्यु० डब्ल्यु० नार्टन ऐण्ड क० 1951, अध्याय 17।

जबकि V का उपयोग सम्बद्ध पूँजीगत वस्तु के मूल्य के लिया हो, तो

$$V = \frac{R_1}{1+i} + \frac{R_2}{(1+i)^2} + \frac{R_3}{(1+i)^3} + \cdots \frac{R_n}{(1+i)^n}$$[1]

जब तक किसी पूँजीगत वस्तु का मूल्य (R's और i द्वारा निर्धारित) सभरण मूल्य या किसी पूँजी पदार्थ की पुन पूँजीयन लागत (जिसे C_R कहा जा सकता है) से अधिक होता है, तो निवेश करते रहना लाभप्रद होगा।

निवेश अभिप्रेरणा को पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता (जिसे हम r कह सकते हैं) और ब्याज के बाजार दर i के बीच फैलाव (spread) के रूप मे भी उतनी ही अच्छी प्रकार से वर्णित किया जा सकता है। पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता, r की गणना निम्नलिखित रूप से की जा सकती है

यदि $R_1+R_2+R_3+ \ldots +R_N$ भावी वार्षिक प्रतिफलो की श्रेणी हो अथवा निवेश की भावी उपज हो और C_R पुन पूँजीयन लागत हो, और r का प्रयोग कटौती की दर से लिये हुआ हो, जिससे वार्षिक प्रतिफलो की श्रेणी का वर्तमान मूल्य, पूँजी पदार्थ के सभरण मूल्य (पुन पूँजीयन लागत) के ठीक बराबर हो जाय, तो इस प्रकार

$$C_R = \frac{R_1}{1+r} + \frac{R_2}{(1+r)^2} + \frac{R_3}{(1+r)^3} + \ldots + \frac{R_N}{(1+r)^n}$$

r कटौती की वह दर है जो कि भावी वार्षिक प्रतिफलो के मूल्य को पूँजीगत वस्तु की लागत के बराबर कर देगी, दूसरे शब्दो म, r पूँजी की सीमान्त-कार्यकुशलता (केन्ज) है या लागत पर प्रतिफल की वह दर है (फिशर) जिसकी उस पूँजी परिसम्पत्ति से कमाने की आशा की जा सकती है, जिसकी लागत C_R हो और जो उन प्रतिफलो की श्रेणी प्रदान करें जो $R_1+R_2+R_3+\ldots+R$ द्वारा सूचित की गई हो।

$2 000 की लागत वाली एक मशीन के विषय मे विचार कीजिए जिसकी आयु केवल तीन वर्ष है और जो कि प्रत्येक तीनो वर्षो मे $1,000 की उपज की श्रेणी की सम्भावना प्रस्तुत करती है। $1,000 की यह श्रेणी वह निवल वार्षिक प्रतिफल है, जिसकी आशा चालू व्यय (running expenses) काटकर (किन्तु मूल्य-ह्रास को काट कर नहीं) मशीन से प्राप्त निपज की बिक्री से की जा सकती है। पर यदि अन्य

---

[1]—वही, अध्याय 9।

कोई मशीन को पट्टे पर देता है और उसको चलाता है तो प्रत्येक तीनों वर्षों में $1,000 की श्रेणी वह भाड़ा है जो स्वामी प्राप्त करता है। इस भाड़े में से स्वामी इतना प्राप्त करने की आशा करता है जिससे मशीन का स्थानापन्न किया जा सके और साथ ही कुछ अतिरिक्त आय भी प्राप्त करे जो कि लागत के ऊपर (निरपेक्ष राशि के रूप में) उसका प्रतिफल है। लागत पर प्रतिफल की दर (अर्थात् वह प्रतिशत r जो वह अपने निवेश से अर्जित करता है) की गणना आसानी से की जा सकती है, क्योंकि केवल r ही निम्नलिखित समीकरण में अज्ञात है,

$$2{,}000 = \frac{1{,}000}{1+r} + \frac{1{,}000}{(1+r)^2} + \frac{1{,}000}{(1+r)^3}।$$

किसी निश्चित आशसाओं के प्रतिरूप के अन्तर्गत, निवेश की राशि, जो कि किसी निश्चित काल में आर्थिक रूप से सम्भव (feasible) है, आंशिक रूप में पूँजी की सीमान्त पूँजी अनुसूची की सीमान्त कार्यकुशलता की मूल्य सापेक्षता पर और आंशिक रूप से पूँजीगत वस्तुओं के चालू सभरण मूल्य सापेक्षता पर निर्भर है (पृ० 136)। एक ओर तो पूँजीगत वस्तुओं की प्रत्येक क्रमिक वृद्धि की ह्रासमान सीमांत उत्पादिता भावी उपज (वार्षिक प्रतिफलों की श्रेणी) को कम कर देगी, और दूसरी ओर पूँजीगत वस्तुओं की एक इकाई की लागत बढ़ जायेगी, क्योंकि निवेश का अपेक्षाकृत अधिक परिमाण "उस प्रकार की पूँजी उत्पन्न करने के लिये सुविधाओं पर दबाव" डालेगा (पृ० 136) । जबकि "भावी उपज" (अर्थात् R's की श्रेणी) घटती है और जैसे जैसे C_R बढ़ती है, तो कटौती की दर (अर्थात् r) जोकि प्रतिफलों की श्रेणी के वर्तमान मूल्य को पुन पूँजीयन लागत के बराबर करने के लिये अपेक्षित है, कम हो जायेगी। किसी निश्चित समय की अवधि में निवेश I का परिमाण जितना अधिक होगा, भावी वार्षिक प्रतिफल, अर्थात् R's उतने ही कम होंगे, और उतनी ही अधिक पुन पूँजीगत लागत होगी। तदनुकूल निवेश का परिमाण जितना अधिक होगा, लागत पर प्रतिफल की दर अर्थात् r, उतनी ही कम होगी।

वह अनुसूची जो I और r का सम्बन्ध स्थापित करती है, निवेश माँग अनुसूची होती है। "निवेश-माँग अनुसूची पर" निवेश "उस बिन्दु तक धकेल दिया" जायेगा जहाँ पर सामान्यता पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता ब्याज की बाजार दर के बराबर होती है (पृ० 137)। अत r वक्र (सीमान्त कार्यकुशलता अनुसूची) और i वक्र (ब्याज दर अनुसूची) का प्रतिच्छेद किसी निश्चित अवधि में निवेश के परिमाण को निर्धारित करेगा (पृ० 136-37)।

उसी बात को इस रूप मे भी व्यक्त किया जा सकता है : (उन आशाओं के निश्चित प्रतिरूपो के अन्तर्गत जो आधारभूत रूप से औद्योगिकी विकास और जनसंख्या वृद्धि द्वारा निर्धारित होती है और अल्पकाल मे सभी प्रकार की आशाओं द्वारा निर्धारित होती है) किसी निश्चित समय अवधि म निवेश की मात्रा V वक्र और C_R वक्र के प्रतच्छेद द्वारा निर्धारित होगी।

V वक्र निवेश की मांग मूल्य' (पृ० 137) है और C_R वक्र निवेश का सभरण मूल्य है जब क V पूंजीगत वस्तुओं की इकाई का मूल्य है और C_R पूंजीगत वस्तुओं की एक इकाई की पुन पूंजीयन लागत है। किसी दिए हुए काल मे जैसे-जैसे निवेश म वृद्धि होती है V गिरती जाती है और C_R बढती जाती है। V वक्र पर निवेश उस बिन्दु तक धकेल दिया जायेगा जहां $V = C_R$ के होगा।

परन्तु पृ० 143 पर केन्ज एक भूल कर देते हैं, जब वे कहते हैं कि "ब्याज की दर म कोई भावी गिरावट का प्रभाव पूंजी की सीमान्त कार्यकुशलता की अनुसूची को नीचे गिराने का होगा । उन्हे यह कहना चाहिये था कि ब्याज दर मे गिरावट V अनुसूची का ऊपर और दाइ ओर हटा देगी। अत किसी निश्चित समय मे कुल निवेश (V वक्र और C_R वक्र के प्रतिच्छेदन द्वारा निर्धारित) बढ जायेगा। विकल्पत निम्न ब्याज दर के कारण सीमान्त उपयोगिता (r) अनुसूची का। अनुसूची से प्रतिच्छेदन r वक्र के अपेक्षाकृत नीचे बिन्दु पर होगा। परिणामस्वरूप पूंजीगत वस्तुओ क अपेक्षाकृत बडे स्टाक का अर्थ पूंजी की अपेक्षाकृत कम सीमान्त कार्यकुशलता होना है।

/ अत यदि ब्याज की भावी दर वर्तमान दर से कम होने की सम्भावना हो, तो लागत पर प्रतिफल की अपेक्षाकृत कम दर का आश्वासन देने वाला भावी उपकरण का अपेक्षाकृत अधिक परिमाण भावी वर्षों मे आज के उपकरण से कडी प्रतियोगिता करेगा। भविष्य म निम्नतर ब्याज-दर की इस आशा का चालू निवेश पर कुछ 'अवमादजनक प्रभाव पड सकता है।[1] /

सपूर्ण 11वे अध्याय म केन्ज ने निवेश-मांग अनुसूची से सम्बद्ध आशाओं के कार्य पर बल दिया, और पुन एक बार इसी बात पर बल देते हुए उस अध्याय को समाप्त किया। मुख्यतया ऐसा निवेश मांग अनुसूची द्वारा ही होता है कि "भावी

1—इस बात में यह अच्छा होता यदि केन्ज वेब्लेन (Veblen) की 'थ्योरी ऑव बिजनिस एण्टरप्राइज' (Theory of Business Enterprise) को उद्धृत करते।

आशाएँ वर्तमान को प्रभावित करें। वे कहते हैं कि स्थैतिक अर्थशास्त्र ने यह भूल की है कि उसने पूँजी उपकरण को चालू उपज पर ही प्रधानत ध्यान दिया है। किन्तु यह "केवल उस स्थैतिक अवस्था मे ही ठीक होगा, जहा वर्तमान को प्रभावित करने के लिये कोई परिवर्तनशील भविष्य नही है' (पृ० 145)।

अत केन्ज ने स्वय अपने विश्लेषण को आवश्यक रूप से गतिशील माना है। उन्होंने यह आरोप लगाया है कि "स्थैतिक अवस्था की पूर्वधारणाए वर्तमान काल के आर्थिक सिद्धा त मे बहुधा अध स्थ (underlie) है और इस तथ्य से 'इसके अन्दर अवास्तविकता का विशाल पुट आ जाता है" (पृ० 146)। उनका विश्वास था कि निवेश माँग अनुसूची द्वारा क्रियान्वित होकर क्रय आशाओ पर उनके द्वारा दिये गये बल का प्रभाव उसे "पुन वास्तविकता की ओर लौटा लायेगा'। स्पष्टत यहाँ वे व्यवसाय चक्र सिद्धान्तियो के महाद्वीपीय शाखा के महत्वपूर्ण कार्य को सम्मान प्रदान करने मे असफल हुए हैं।[1]

केन्ज उस सकल्पना से सबद्ध कुछ अस्पष्टताओ पर विचार करते हैं (अध्याय 11) जिन्ह विभिन्न रूप से इस प्रकार कहा जाता है—

1—पूँजी की सीमान्त उत्पादिता
2—पूँजी की सीमान्त उपज
3—पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता
4—पूँजी का सीमान्त तुष्टिगुण

उत्पादिता, उपज, कार्यकुशलता, अथवा तुष्टिगुण नामक शब्दो मे से किस शब्द का प्रयोग होता है, यह सम्भवत कोई बड़े महत्व की बात नही है। केन्ज ने "पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता" वाक्यांश का प्रयोग लागत पर प्रतिफल के दर को निर्दिष्ट करने के लिये चुना, जबकि "प्रत्याशित उपज" वाक्यांश को पूँजीगत वस्तु से प्राप्त निरपेक्ष प्रत्याशित प्रतिफलो की श्रेणी के लिये सुरक्षित रखा। इन दो बिल्कुल विभिन्न सकल्पनाओ के सम्बन्ध मे साहित्य मे कुछ अस्पष्टताएँ हैं।

हम देख चुके हैं कि केन्ज ने "प्रत्याशित उपज" शब्दो का प्रयोग किसी पूँजीगत वस्तु के पूरे जीवन मे प्राप्त वार्षिक प्रतिफलो की श्रेणी के लिये किया। वार्षिक प्रतिफलो की इस श्रेणी मे मूल्यह्रास काट कर नहीं, बल्कि चालू व्यय काट

[1]—देखिये मेरी उपर्युक्त रचना, बिजनेस साइकल्ज ऐण्ड नैशनल इन्कम।

कर, पूँजीगत वस्तु (उदाहरणार्थ यदि किसी किरायेदार को कोई मकान किराये पर दिया हो) से प्राप्त वार्षिक प्राप्ति शामिल है।

निस्सदेह निरपेक्ष वार्षिक प्रतिफलो की श्रेणी को इन दो रूपो मे से किसी एक रूप म वर्णित किया जा सकता है—अर्थात् मूल्य ह्रास के हेतु कटौती करने से पूर्व या कटौती करने के पश्चात। दोनो ही अवस्थाओ मे यहाँ हमारा सबध किसी अनुपात (अर्थात् किसी निवेश पर लगी हुई राशि पर प्रतिफल की दर) से न होकर निरपेक्ष राशियो की श्रेणी से है। निरपेक्ष राशियो की इस श्रेणी मे से किसी एक को भी पूँजी की सीमान्त उत्पत्ति कहा जा सकता है, प्रथम को (अर्थात् मूल्य ह्रास से पूव वाली) को कुल सीमान्त उत्पत्ति' और द्वितीय (मूल्य-ह्रास काट कर) को 'निवल सीमान्त उत्पत्ति' कहा जा सकता है। फिर भी इस बात पर बल देने की आवश्यकता है कि पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता कटौती की वह दर है जो कुल सीमान्त उत्पत्ति को पूँजीगत वस्तु की पुन पूँजीयन लागत के बराबर कर देती है।

केन्ज इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट कराते है कि साहित्य मे यह सदैव स्पष्ट नही है कि क्या पूँजी की सीमान्त उत्पादिता" वाक्याश किसी निरपेक्ष परिमाण की ओर (जैसे निरपेक्ष वार्षिक प्रतिफलो की श्रेणी का मूल्य-ह्रास चाहे निवल हो अथवा कुल) अथवा किसी अनुपात की ओर निर्देश करता है। और यदि यह अनुपात की ओर निर्देश करता है तो सदैव यह स्पष्ट नही किया जाता कि अनुपात के वे दोनो पद (terms) क्या माने जाते हैं।" उदाहरणार्थ, केवल निरपेक्ष वार्षिक प्रतिफलो की सभी श्रेणियो के योगफल के अनुपात को पूँजीगत वस्तु की मूल लागत तक ले जाया जा सकता है। इस प्रकार के "अनुपात से ज्ञात होगा कि किसी पूँजीगत वस्तु से, जिसकी लागत मान लो $ 1,000 है उस पूँजीगत वस्तु के जीवनावधि भर म कुल प्रतिफल मान लो $ 1,500 मिलते है। किन्तु यह कथन कोई अर्थपूर्ण नही है जब तक यह ज्ञात न हो जाये कि सबद्ध पूँजी उपकरण का जीवनकाल कितना है। जैसे ही समय तत्व का प्रवेश किया जाता है तो अनुपात की वही विमिति (dimension) होनी आरम्भ हो जायेगी, जो कि ब्याज के दर की होगी" (पृ० 138)।

जैसा हम देख चुके है केन्ज की पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता की बडे रूप म व्याख्या इस प्रकार है कि यह 'कटौती की वह दर है, जो कि उन वार्षिकियो की श्रेणी के वर्तमान मूल्य को जो पूँजी परिसपत्ति के जीवनकाल मे प्रत्याशित प्रतिफलो द्वारा दिये जाते है इसके सभरण मूल्य के ठीक बराबर कर देती है" (पृ० 135)

अन्य शब्दो मे यह कटौती की वह दर है जो भावी वार्षिक प्रतिफलो की श्रेणियो के वर्तमान मूल्य को सम्बद्ध पूँजीगत वस्तु की पुन पूँजीयन लागत के बराबर कर देती है। अत पुन पूँजीयन लागत के ऊपर, वार्षिक प्रतिफलो की राशि ऐसी है जो कि निवेश पर ऐसी प्रतिफल दर (अर्थात् लागत पर प्रतिफल दर) दे देगी जो कि कटौती के इंगित दर के बराबर होगी। दूसरे शब्दो मे, प्रत्यक भावी वार्षिक प्रतिफल के दो भाग होते हैं—(1) कटौती तथा (2) मूल्य ह्रास।

केन्ज द्वारा की गई पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता की कठोर परिभाषा मे विशेष बात यह है कि वे ठीक ही पूँजीगत वस्तु के सम्पूर्ण प्रत्याशित जीवनावधि मे वार्षिक "भावी उपज" की सारी श्रेणियो पर विचार करते हैं। साधारणतया पूँजी के सीमान्त उत्पत्ति पर विचार करते हुए, अर्थशास्त्रियो ने उस चालू सीमान्त उत्पत्ति अर्थात् चालू वर्ष की निरपेक्ष वार्षिक उत्पत्ति पर (चालू व्यय और मूल्य ह्रास घटाने के पश्चात) ध्यान केन्द्रित किया था। उस अवस्था म जबकि पूँजी की सीमान्त उत्पत्ति को एक अनुपात के रूप मे वर्णन किया गया हो यह अनुपात निबल चालू उत्पत्ति (अर्थात् चालू व्यय और मूल्य ह्रास दोनो को काटकर) को भाज्य (numerator) और पूँजीगत वस्तु की लागत को हर (denominator) के रूप म प्रयोग करके प्राप्त किया गया था। निस्सदेह यह लागत पर प्रतिफल के चालू दर को बतायेगा। और वास्तव मे यह ही मार्शल द्वारा प्रयुक्त वह रीति है, जिसे जनरल थ्योरी के 139 से 140 पृष्ठो पर दिये गए उद्धरणो मे दिया गया है। किन्तु केन्ज वार्षिक उत्पत्ति की सपूर्ण श्रेणियो मे (उन्होने इन्ह "भावी उपज" कहा है) आशाओं के कार्य पर बल देना चाहते थे और उन्होने उस कटौती दर द्वारा पूँजीगत वस्तु के सपूर्ण प्रत्याशित जीवन मे लागत पर निबल प्रतिफल को अभिनिश्चित किया है, जो इन सपूर्ण श्रेणियो के वर्तमान मूल्य को पुन पूँजीयन लागत के बराबर कर देती है।

केवल आशासित चालू उत्पत्ति ही नही, बल्कि किसी पूँजी परिसपत्ति से भावी उपज की सपूर्ण श्रेणियो से सबद्ध प्रत्याशाए किसी दीर्घकालिक पूँजीगत वस्तु के विषय मे निवेश निर्णयो के लिये विशिष्ट रूप से महत्वपूर्ण कार्य करती है। क्योकि सम्भवत अत के वर्षो मे उस प्रकार की पूँजीगत वस्तु को उस नये उपकरण से प्रतियोगिता करानी पडे, जिसकी पुन पूँजीयन लागत प्रति उत्पत्ति इकाई से कम हो अथवा जो कि प्रतिफल के निम्नतर दर से (उस समय प्रचलित निम्नतर ब्याज दर के कारण) सतुष्ट हो (जनरल थ्योरी, परिच्छेद 3, अध्याय 11)।

अन्त म, भावी उपज की श्रेणी मे अन्तस्थ जोखिम तत्व पर केन्ज विचार

करते हैं (परिच्छेद 4, अध्याय 11)। वार्षिक प्रतिफलो की श्रेणियो के योग में—(1) पुन पूँजीयन लागत (मूल्य ह्रास)[1], (2) जोखिम के लिए बीमा, तथा (3) जोखिम के लिए छोड कर "लागत पर" एक विशुद्ध निवल "प्रतिफल" सम्मिलित होंगे। दूसरे शब्दो मे यदि कोई विशुद्ध ब्याज दर से तुलना की जा सकने वाली "लागत पर प्रतिफल की" कोई विशुद्ध 'दर' प्राप्त करना चाहता है, तो वह भावी श्रेणी जिसकी कटौती हुई है जोखिम से निबल होनी चाहिये।

इस सम्ब ध म केन्ज दो प्रकार के जोखिमो पर विचार करते हैं—(1) उद्यमकर्त्ता की वह जोखिम कि प्रत्याशित उपज वास्तव मे प्राप्त ही न हो, और (2) उधारदाता की वह जोखिम कि उद्यमकर्त्ता भुगतान न करे। यदि उद्यमकर्त्ता अपने ही धन को लगाता है तो दूसरी जोखिम नही होगी। पर यदि वह उधार लेता है, तो यह जोखिम पहली जोखिम से भी ऊपर रखनी चाहिये।

यदि एक बार जोखिम प्रारम्भ हो जाये, तो हमारे सम्मुख यह अत्यन्त जटिल समस्या आ जाती है कि किसी परिसपत्ति की भावी उपज को निर्धारित करने वाले कौन से कारक है। आशसाओ का टकराव अनिश्चितताओ और जोखिमो से होता है। और केन्ज अपने पाडित्यपूर्ण इस 12वें अध्याय 'The State of Long term Expectations (दीघकालिक आशसाओ की अवस्था) मे इन विषयो पर विचार करते है।

यह अध्याय निवेश निर्णयो मे अध स्थ एक मुख्य कारक के रूप मे यह विश्वास की अवस्था पर बल देने मे अग्रेजी विचारधारा के अनुरूप है। किन्तु इस प्रसिद्ध अध्याय की मुख्य बात यह है कि यह उस ज्ञान के आधार की अति अनिश्चित स्थिति का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करता है, जिससे हमे भावी उपज के विषय मे अपने अनुमान लगाने पडते है (पृ० 149)। आधुनिक स्थितियो के अन्तर्गत, ये अनुमान स्टाक बाजार मे काम करने वाले लोगो की आशसाओ से बहुधा उतने ही पथ प्रदर्शित होते हैं, जितने कि स्वय उद्यमकर्ता की अपेक्षाकृत अधिक यथार्थ आशसाओ से। अत बहुधा स्टाक बाजार मे चलने वाली मनोभाव को रहस्यात्मक लहरे किसी व्यवसाय के

[1]—यदि मूल्य ह्रास को घटाकर निरपेक्ष वार्षिक प्रतिफलों की श्रेणी को लिया जाये, तो बेमियादी बाड (perpetual bond) अथवा कनसोल (Console) से वार्षिकियों के अनुरूप श्रेणी प्राप्त हो जायेगी। ब्याज की उचित दर द्वारा इस प्रकार की श्रेणी को बट्टा लगाकर मूल्य ह्रास से निवल प्रतिफलों की अनत श्रेणी का वर्तमान पूजीकृत मूल्य (capitalized value) को प्राप्त किया जा सकेगा।

संयंत्र और उपकरण के उस पूंजीकृत मूल्य को जो इसके बकाया ऋण पत्रों (outstanding securities) के मूल्य मे प्रतिबिम्बित हैं, उस सयत्र और उपकरण की पुनः पूंजीयन लागत से कम कर सकती है। इससे नया निवेश रुक सकता है, जो कि उस स्थिति मे लगाया जा सकता था, जबकि यदि सही उद्यमकर्ता की अपेक्षाकृत अधिक ठोस आशाएँ सुव्यस्थित बाजार मे गर्म-गर्म खबरो से प्रभावित नही हो गई होती।

> (केन्ज कहते है) कि हमे यह निष्कर्ष नही निकालना चाहिए कि सब कुछ अविवेकी मनोविज्ञान की लहरो पर निर्भर करता है'''हम केवल अपने आपको यह स्मरण करा रहे है कि भविष्य को प्रभावित करने वाले मानवीय निर्णय, चाहे वे व्यक्तिगत, अथवा राजनीतिक अथवा आर्थिक हो, कोरी गणितीय आशा पर निर्भर नही कर सकते हैं, क्योंकि इस प्रकार की गणनाओ के करने का आधार विद्यमान नही है। वस्तुत यह तो कार्य करने की हमारी अन्तर्जात प्रेरणा है, जिससे कि चक्र चलते हैं, हमारी बुद्धियाँ अपने विवेकानुसार अच्छे से अच्छे विकल्प को चुनती है, जहाँ तक सम्भव हो वहाँ तक हम गणना भी करते हैं, किन्तु बहुधा हमे अपनी उद्देश्य पूर्ति के लिए मनोराज्य (whim) अथवा मनोभावना अथवा सयोग पर निर्भर होना पडता है (पृ० 162-163)।

अध्याय 6

नक़दी तरजीह

[जनरल थ्योरी, अध्याय 13, 15]

जैसा कि हमे बहुत समय से ज्ञात है, द्रव्य के दो मुख्य उद्देश्य होते हैं—(1) विनिमय के माध्यम के रूप मे तथा (2) मूल्य के सग्रह के रूप मे। दूसरी बात के विषय मे कहते हुए केन्ज का कथन है कि यही हमे "चेहरे पर बिना मुस्कराहट लाए"[1] कहा जाता है। वास्तव मे जनरल थ्योरी से पूर्व के द्रव्य और बैंकिंग पर पाठ्य पुस्तकों के लेखक द्रव्य म "मूल्य सग्रह" कार्य की महत्ता को स्पष्ट करने मे असमर्थ रहे। और वास्तव मे "पागल खाने से बाहर कौन व्यक्ति द्रव्य को धन के सग्रह के रूप मे प्रयोग करना चाहेगा"[2] लोग द्रव्य को निष्क्रिय बाकी अथवा 'निसचय" के रूप मे क्यो रखना चाहेगे।

केन्ज इसका उत्तर यह देते है कि ऐसा भविष्य के विषय मे आशका और अनिश्चतता के कारण होता है। हमारे साधनो के एक भाग को द्रव्य के रूप मे रखने की हमारी इच्छा, "भविष्य के विषय मे हमारी अपनी गणनाओ और उपसंधियो के प्रति अविश्वास की मात्रा का माप यन्त्र" है। वास्तविक नक़दी के होने से "हमारी चिन्ता शान्त हो जाती है' और वह ब्याज दर जो कि हम परिसपत्ति को प्राप्त करने के लिए नकदी का विनिमय करने के लिए तैयार होने से पूर्व मागते हैं, वह "हमारी अशांति की मात्रा का माप है'।[3]

आधारभूत रूप मे निसचय की प्रवृत्ति हमारी उन आशसाओ की अनिश्चितता

1—देखिए केन्ज का क्वाटरली जर्नल आव इकनामिक्स में प्रकाशित लेख (1937), जो कि हैरिस की पुस्तक द न्यु इकनॉमिक्स' (प्रकाशक ऐल्फ्रेड ए० नॉफ, इ०) 1947, पृ० 187 में पुन मुद्रित हुआ था।

2—वही।

3—वही।

के कारण होनी है जो "सभी प्रकार के अस्पष्ट संदेहो, एव विश्वास और साहस की बदलती हुई स्थितियो"[1] के कारण है। नकदी तरजीह विश्लेषण इस परिकल्पना पर आधारित है कि हम एक निश्चित और गणन्य भविष्य को नही जान सकते। "दूसरी ओर परम्परानिष्ठ सिद्धात एक ऐसी सरल दुनिया से सबद्ध है जहा सदेह एव विश्वास की घटा बढी का प्रश्न तो नही उठता और इसलिये निष्क्रिय धन राशि रखने का कोई कारण नही प्रतीत होता।"[2] हम निष्क्रिय धन राशि इसलिए रखना चाहते हैं क्योंकि हम यह विश्वास करते हैं कि इस प्रकार के निसचय भावी जोखिम और अनिश्चनताओ से रक्षा करने का कार्य करते हैं। किसी भी दी हुई आशसा की दशा मे लोगो के मन मे नकदी रखने की ओर कुछ सभावना होती है" (पृ० 205)।

यदि पुरस्कार काफी अधिक हो, तो निस्सदेह लोगो को उनकी नकदी के एक भाग को त्यागने के लिए मनाया जा सकता है। केन्ज कहते हैं कि ब्याज की दर तो वह "प्रीमियम" होता है, जो लोगो को इसलिए दिया जाता है कि वे अपने धन को निसचित द्रव्य के रूप मे न रख कर किसी दूसरे रूप म रखने को प्रेरित हो।[3] यदि दूसरी दृष्टि से देखा जाय तो ब्याज की एक निश्चित राशि को एक निश्चित सीमा तक त्यागना ठीक है, क्योंकि इससे वे लाभ प्राप्त हो सकते है जो नकदी स्थिति मे रहने से प्राप्त होते हैं। नकदी का रखने का विकल्प त्याग (opportunity cost) वह ब्याज है जो कि धन को अर्जक परिसपति (earning asset) के रूप मे रखने से प्राप्त किया जा सकता है।

ऊपर लिखे हुए द्रव्य के उपयोगो के परम्परागत दोहरे वर्गीकरण (विनिमय के माध्यम और मूल्य के सग्रह) के स्थान पर, केन्ज ने नकदी रखने के तीन प्रयोजन बतलाय है—(1) लेन देन (transactions) प्रयोजन (2) ऐहतियाती (precautionary) प्रयोजन, और (3) सटटा (speculative) प्रयोजन। पहिला प्रयोजन तो द्रव्य का सक्रिय चलन (active circulation) मे होना और अतिम दो निष्क्रिय धन राशियो के रूप मे द्रव्य को रखना सूचित करत हैं। जबकि हम ऐहतियाती तथा

1—ए०डी० गेयर (Gayer) द्वारा सपादित पुस्तक 'द लेसन्स आव मानेटरी एक्सपीरियस' (**The Lessons of Monetary Experience**) (प्रकाशक राइनहाट ऐण्ड क०, ई०, Rinehart & Company, 1937 में, केन्ज द्वारा लिखित अध्याय के पृ० 151 को पढिये।

2—वही पृ० 151।

3—हैरिस, उपर्युक्त, पृ० 187।

सट्टा नकद निधियो को साथ साथ एक वर्ग मे इसलिये रख देते हैं कि दोनो मे निष्क्रिय धन राशी होती है, किन्तु उनको, जैसा कि हम बाद मे देखेंगे, एक वर्ग मे नही रखा जा सकता, यदि उन कारको पर विचार करें, जो कि अधिकृत निधियो को निर्धारित करते है।

लेन देन प्रयोजन का सबध व्यक्तिगत और व्यावसायिक विनिमय के चालू लेन-देन के लिए नकदी की आवश्यकता से है। ऐहतियाती प्रयोजन का सबध नकदी के रूप मे कुल साधनो को किसी निश्चित अनुपात मे इसलिए प्राप्त करने की इच्छा से है ताकि भावी आवश्यकताओ और अप्रत्याशित आकस्मिक खर्चों को पूरा किया जा सके। इन दोनो ही रूपो मे नक्दी की मात्रा, जो कि लोग अपने पास रखना चाहते है, एक बहुत ही सीमित मात्रा मे द्रव्य की लागत (अर्थात् व्याज-दर) से प्रभावित होती है।

किन्तु सट्टा प्रयोजन का सबध साधनो की नकदी रूप मे रखने की इच्छा से है जिससे बाजार के सचलनो (market movements) से लाभ उठाया जा सके। यह तो सट्टा प्रयोजन ही है जो कि मुख्य रूप से निसचय प्रवृत्ति को लाता है। उद्देश्य यह है 'बाजार'' की अपेक्षा इस अधिक जानकारी से, कि भविष्य मे क्या प्राप्त किया जा सकता है, लाभ प्राप्त किया जाये। भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न रूप मे सम्भावनाओ का अनुमान लगाएंगे। कोई भी व्यक्ति जिसकी सम्मति "बाजार भावो द्वारा अभिव्यक्त प्रबल सम्मति'' से भिन्न है, "यदि वह अपने अनुमान मे ठीक है तो लाभ कमाने के दृष्टि से नक्दी साधनो को रखना उचित समझेगा" (पृ० 169)। अत निवेश परामर्शदाता अपने मुवक्किलो को बहुधा यह परामर्श देते हैं कि वह अपने साधनो का 50 प्रतिशत भाग नकदी मे रखें, जिससे कि वह बाजार सचलनो मे सम्भाव्य परिवर्तन से बाद मे लाभ उठा सके। इसका उद्देश्य "उस हानि की जोखिम'' से बचने का हो सकता है जोकि नक्दी "रखने की तुलना मे एक दीर्घ-कालिक ऋण को क्रय करने मे और बाद मे नकदी के रूप मे बदल देने से प्राप्त हो सकता है" (पृ० 169)। अत नक्दी रखने का सट्टा प्रयोजन इस इच्छा से उत्पन्न होता है कि अपने साधनो की नक्दी के रूप मे इसलिए तैयार रक्खा जाए ताकि बाजार मे किसी परिवर्तन (turn) का लाभ उठाया जा सके और किसी गिरते हुए बाजार मे ऋण पत्रो के रखने से सभाव्य हानि से बचा जा सके।

अब नक्दी की वह राशि जोकि इन तीनो प्रयोजनो मे से प्रत्येक के लिए लोग रखना चाहेगे, वह बहुत कुछ नक्दी को रखने की उस "लागत" अर्थात् व्याज की दर

के अनुसार बदलेगी जिस को परिसपत्ति के अर्जन मे साधनो को लगाने की अपेक्षा नकदी के रूप मे रखने के कारण त्याग देता है। व्यक्तिगत अथवा व्यावसायिक लेन-देनो के लिए अथवा ऐहतियाती प्रयोजनो के लिए (यदि नकदी की लागत अत्यन्त अधिक है) नकदी के उपयोग मे मितव्ययता बरती जायेगी। किन्तु यदि ब्याज दर साधारण सी है, तो प्रचुर नकदी की सुविधा को ध्यान मे रखते हुए व्यक्ति ब्याज को त्यागने के लिए तैयार हो जायेगा (पृ० 168)। फिर भी ब्याज की उच्च दरो पर लेन-देन भी और द्रव्य के लिए ऐहतियाती मागें भी कुछ सीमा तक ब्याज-मूल्य सापेक्ष (interest-elastic) हो जायेगी।[1] किन्तु ब्याज की मामूली या कम दरो पर माग पूर्णतया ब्याज मूल्य निरपेक्ष हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त ऐहतियाती प्रयोजन के सबध मे बात यह है कि सगठित प्रतिभूत बाजारो के होने से नकदी की आवश्यकता बहुत कम हो जाती है, क्योकि नकदी की आवश्यकता के लिए बाण्डो को सरलता से बेचा जा सकता है (पृ० 170)। अत नकदी की वह मात्रा जो कि लोग लेन-देन और ऐहतियाती आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए रखना चाहेगे (इसे हम L′ के नाम से सूचित करें), ब्याज के दर से बहुत अधिक प्रभावित नही हो सकती, जब तक कि यह दर बहुत ऊची न हो।[2] इन प्रयोजनो के लिए द्रव्य की जो राशि अपेक्षित है, वह मुख्य रूप से उस भुगतान के परिमाण का कार्य है, जिसे अवश्य चुकाया जाना चाहिये और साथ मे उससे सबद्ध आकस्मिक व्यय, आभारो और वचन बन्धनोको भी ब्याज की दर i से सबद्ध (जब तक यह बहुत ऊची न हो) अपेक्षित राशि अत्यधिक मूल्य निरपेक्ष

---

[1]—देखिये मेरी पुस्तक 'मानेटरी थ्योरी ऐण्ड फिस्कल पालिसि', प्रकाशक मैक्ग्राहिल बुक क० इ०, 1949, पृ० 66 70।

[2]—विद्यार्थियों को यह बात ध्यानपूर्वक देखनी चाहिए कि इस अध्याय में मेरे द्वारा किया गया नामकरण केन्ज द्वारा प्रयुक्त नामकरण से भिन्न है। प्रथम नकदी तरजीह कार्य (पर्यावर्त माग कार्य) को मैं इस प्रकार से लिखता हूँ $L'=L'(Y)$, जब कि केन्ज ने इसे इस रूप में लिखा : $M_1=L_1(Y)$। द्वितीय नकदी तरजीह कार्य को मैं इस प्रकार लिखता हूँ : $L''=L''(i)$ जबकि केन्ज ने इसे इस प्रकार लिखा : $M_2=L_2(r)$। कुल नकदी तरजीह कार्य मैं इस रूप में लिखता हूँ : $L=L(Y), (i)$, जबकि केन्ज ने इस नामकरण का उपयोग किया $M=L(Y,r)$। मैं M को द्रव्य के परिमाण या सभरण के लिए प्रयुक्त करने के लिए छोड़ देता हूँ, जबकि L द्रव्य की माग अर्थात् नकदी तरजीह को सूचित करता है। यह भी ध्यान में रहे कि मैं i को ब्याज-दर के लिए प्रयुक्त करता हूँ, जबकि केन्ज ने इसके लिए r का प्रयोग किया है।

होगी।[1]

अब जब कि नक्दी की राशि जिसे लोग लेन-देन (और ऐहतियाती) प्रयोजनों के लिए रखना चाहते हैं, वह व्यक्तिगत और व्यावसायिक लेन-देन (अर्थात् व्यापार परिमाण) का मुख्य रूप से कार्य है और साथ ही व्यक्तिगत और व्यावसायिक धन्धों के सचालन में उत्पन्न आकस्मिक व्यय का भी कार्य है, तो अपक्षी प्रयोजनों के लिये द्रव्य की वांछित राशि (इसे हम L″ कहें) मुख्यत व्याज की दर का कार्य है जितनी ऊंची मात्रा में व्याज की दर का कोई व्यक्ति त्यागने को तैयार है यदि वह परिसम्पत्ति के अर्जन को बचाए नक्दी रखता है, तो उतनी ही नक्दी की कम राशि होगी जो सट्टा प्रयोजनों के लिए वह व्यक्ति रखने को तैयार होगा। L″ कार्य 'वह सतत वक्र है जो कि सट्टा प्रयोजन की पूर्ति के लिये द्रव्य माग में परिवर्तनों को व्याज दर में परिवर्तनों से जोड़ देता है" (पृ० 197)। बहुत बड़े अश में L″ व्याज मूल्य सापेक्ष होता है।

केन्ज ने इस बात को अर्थात् L″ कार्य की व्याज मूल्य सापेक्षता पर बहुत अधिक बल दिया है। यह उनके विश्लेषणात्मक साधनों में अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। निवेश माग कार्य और उपभोग कार्य के साथ यह "से" के बाजार नियम और पूर्ण रोजगार की ओर प्रवृत्त स्वत समजन से सम्बद्ध परम्परानिष्ठ सिद्धान्त के प्रति सन्तोष के विरुद्ध आपत्ति करने में महत्वपूर्ण कार्य करता है। और सर्वोपरि यही तो वह बात है जो कि केन्ज को परिमाण सैद्धान्तिकों से एक दम पृथक् कर देता है।

"से" के बाजार नियम पर विचार करने की दो विधियां हैं—(1) "से" का बाजार नियम द्रव्य सभरण के होते हुए भी ठीक है, (2) यह केवल मुद्रा सतुलन की अवस्थाओं में ही ठीक उतरता है। प्रथम स्थिति के अनुसार "से" का बाजार नियम ठीक रहता है चाहे कैसी भी मुद्रा नीति का अनुसरण किया जाए, दूसरी स्थिति के अनुसार केवल मूल्य सापेक्ष मुद्रा नीति में ही पूर्ण रोजगार स्वत ही निश्चित रूप से प्राप्त हो सकता है। केन्ज ने दोनों ही स्थितियों को स्वीकार नहीं किया है। दूसरी स्थिति पर की गई आपत्ति के सबन्ध में वे अपनी नक्दी तरजीह विश्लेषण पर भारी भरोसा रखते थे।

---

[1]—"सञ्चय वक्र में द्रव्य माग और व्याज दर में भी एक सीमा तक परस्पर सबध है। क्योंकि व्याज की उच्चतर दर सक्रिय धनराशियों के अपचारण अधिक मितव्यय प्रयोग की ओर ले जा सकती है।" देखिये केन्ज का अध्याय सेमर की द लेसन्स आफ मानेटरी एक्सपीरियन्स पुस्तक में पृ० 149 पर।

यदि L″ कार्य ब्याज मूल्य सापेक्ष न हो तो खुले बाजार की सक्रियाएं अव्य-वहारिक हो जायेंगी (पृ० 197)। साधारण परिस्थितियों में बैंकों के लिए यह सदैव सम्भव है कि वे बान्डों के मूल्य को थोड़ी-सी राशि ऊपर (या नीचे) बोली बोल कर बान्डों को नकदी से क्रय अथवा विक्रय कर सकते हैं। इसका अर्थ यह है कि जनता को ब्याज की दर में साधारण से परिवर्तन लाकर अधिक (या कम) नकदी रखने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। अत L″ कार्य वह "चिक्कण वक्र" (Smooth curve) है, "जो यह सूचित कर देगा कि जैसे ही द्रव्य परिमाण बढ़ेगा, ब्याज की दर भी गिरेगी" (पृ० 171)।

ब्याज दर के भावी मार्ग की अनिश्चितता (और, जैसा कि हम आगे देखेंगे, पूँजीगत परिसम्पत्ति पर भावी उपज के मार्ग की अनिश्चितता भी) नकदी के उस अपेक्षी प्रयोजन का "एक मात्र समझ में आने वाला स्पष्टीकरण" है जो कि निष्क्रिय शेष-धन राशियों (balances) को रखने की ओर ले जाता है (पृ० 201)। L″ कार्य मूल्य रूप से ब्याज की वर्तमान दर और "आशाओं की अवस्था" के बीच संबंध निर्भर करता है (पृ० 199)। इस बात का कि L″ अनुसूची ब्याज-दर का वह गिरता हुआ कार्य है, जिसका सम्बन्ध "सुरक्षित" भावी ब्याज दर की आशाओं के विषय से है। जो व्यक्ति यह सोचते हैं कि वर्तमान दर सुरक्षित दर से ऊपर है (अर्थात् जो यह विश्वास करते हैं कि बॉड-बाजार बहुत अधिक नीचे है), अधिक नकदी अपने पास रखना नहीं चाहेंगे, बल्कि इसके बजाये अपने साधनों को ऋण पत्रों में रखना चाहेंगे। किन्तु जो व्यक्ति यह समझते हैं कि दर बहुत नीची है (अर्थात् उससे नीचे जिसे वे सुरक्षित या सभाव्य भावी दर समझते हैं), वे नकदी रखना चाहेंगे या कम से कम अपने साधनों के कुछ बड़े भाग को नकदी के रूप में रखना चाहेंगे।[1] इन विरोधी मतों के बीच बाजार, सतुलन स्थापित करता है। अत भावी ब्याज-दर के संबंध में मत का सन्तुलन (balance of opinion) वास्तविक ब्याज दर को प्रभावित करता है।

वास्तविक दर, और जिसे वे संभाव्य भावी दर मानते हैं, के बीच जितना ही चौड़ा फैलाव होगा, उतना ही वे लोग, जो ये समझते हैं कि वर्तमान दर बहुत नीचे है, अपने पास नकदी को अधिक से अधिक रखना चाहेंगे। अत प्रत्येक ऐसे व्यक्ति के

---

[1]—यह इसलिए सत्य है क्योंकि यदि दर को बहुत नीचा मान लिया जाए, तो ये व्यक्ति हानि उठाने से डरते हैं, यदि ये उनके पास उनकी परिसम्पत्ति अतिमूल्य ऋण पत्रों (over-priced) के रूप में हैं।

लिए हम एक ऐसी अनुसूची की कल्पना कर सकते हैं जो कि यह दिखलाएगी कि सभाव्य भावी दर अपनी विशेष आशाओं को ध्यान मे रखते हुये विभिन्न ब्याज दरो पर कितनी नकदी की मात्रा अपने पास रखना चाहेगा। समग्र अर्थव्यवस्था के लिये ऐसी प्रत्येक अनुसूचिकाओं के सतुलन से समस्त नकदी तरजीह अनुसूचिका L' प्राप्त हो जायेगी।

जो कुछ भी ऊपर कहा गया है उसका सम्बन्ध वास्तविक ब्याज दर और सभाव्य भावी दर के बीच अन्तर से है। जितना ही यह अन्तर अधिक होगा, उतनी ही अधिक नकदी की मात्रा लोग अपने पास रखना चाहेंगे। किन्तु यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि L' कार्य की मूल्य सापेक्षता चालू ब्याज दर के निरपेक्ष स्तर से भी प्रभावित होती है। जितनी ही ब्याज दर शून्य के समीप पहुँचती है, उतनी ही अधिक पूँजी खाते मे बाडो और अन्य स्थिर आय परिसम्पत्तियों के रखने मे हानि का भय हो जाता है। जब बाण्डो के मूल्य की बोली इतनी ऊँची बोली आ चुकी है कि ब्याज की दर उदाहरणार्थ केवल २ प्रतिशत या कम है, तो बाण्डो के मूल्यो मे बहुत थोडी सी कमी आय को पूर्णतया समाप्त कर देगी और थोडी-सी और कमी का परिणाम होगा मूलधन के कुछ भाग की हानि। जितना ही ऊँचा बान्डो का मूल्य होगा (उतनी ही नीची ब्याज दर होगी) 'उतनी ही कम आय उस अनकदी (illiquidity) से प्राप्त होगी, जो पूँजीगत खाते मे हानि की जोखिम को बराबर करने के लिये एक बीमे की प्रीमियम के से रूप मे उपलब्ध है" (पृ० 202)। अत जैसे ही दर निम्न स्तरो तक गिरेगी, वक्र बाहर की तरफ चपटा होने की ओर प्रवृत्त होगी, अर्थात् बहुत अधिक ब्याज मूल्य सापेक्ष हो जाएगा। तब इससे हमे ज्ञात होता है कि ब्याज की दर को बहुत नीचे स्तर तक गिरने मे मुख्य रुकावट (जितना ही हम ब्याज की शून्य दर के निकट पहुँचेंगे) पूँजीगत लेखा पर सभाव्य हानि का ह्रासमान क्षति पूर्ति है। 'ब्याज की दीर्घकालिक (उदाहरणार्थ) 2 प्रतिशत दर आशा की अपेक्षा भय अधिक देती है, और साथ ही साथ उस चालू आय को भी देती है जो कि भय की एक बहुत थोडी मात्रा को दूर करने मात्र के लिये पर्याप्त है" (पृ० 202)। अत नकदी तरजीह "वास्तव मे निरपेक्ष इस रूप मे" हो सकती है "कि लगभग प्रत्येक आदमी एक ऐसे ऋण रखने की अपेक्षा जिससे बहुत ही कम ब्याज दर प्राप्त हो, नकदी को रखना पसन्द करता है' (पृ० 207)।[1] लेकिन बिल्कुल असामान्य परिस्थितियो मे कार्य का

[1] – यहा पर केन्ज एक विचित्र और अमेल बात कह देते है। वह यह है कि 'जब कि यह सीमात कारी स्थिति भविष्य में व्यवहारिक रूप से महत्वपूर्ण बन सकती है, किन्तु मुझे अब तक इस प्रकार के किसी उदाहरण का पता नहीं है" (पृ० 207)। वास्तव में 1930 से 1931 तक (विशेषकर 1934 से आगे) सयुक्त राज्य अमरीका इस का एक अच्छा उदाहरण था।

इस प्रकार बाहर की ओर चपटा होना व्याज की बहुत अधिक ऊँची दर पर घटित हो सकता है, उदाहरणार्थ 1932 मे सयुक्त राज्य अमरीका मे 'परिसमापन (liquidation) के सकट' के समय हुआ था, जब कठिनाई मे ही किसी को इसलिए प्रेरित किया जा सकता था कि वह किसी भी उचित शर्तों पर अपने द्रव्य की अधिकृत पूँजी को दे दे (पृ० 207 208)।

तदनुरूप L" अनुसूची की आकृति और स्थिति दोनो ही किसी दी हुई "आशाओ की स्थिति" पर निर्भर होगी। किन्तु विभिन्न व्यक्ति जिनसे बाजार बनता है, की आशाओ मे परिवर्तन L" कार्य मे विचलन उत्पन्न कर देगा। यदि बाजार की आशाए पहिले से प्रत्याशित दर की अपेक्षा अधिक ऊँची सुरक्षित ब्याज दर की ओर निर्दिष्ट करें, तो अनुसूची ऊपर की ओर या दाई ओर हट जाएगी। यदि बाजार का मत ऐसे विश्वास को जन्म दे देता है कि भविष्य मे ब्याज की दर जैसा पहिले के विश्वास किया गया था, उससे अपेक्षाकृत नीची रहेगी, तो अनुसूची नीचे या बाईं ओर को हट जाएगी।

यदि यह मान लिया जाये कि आशाओ मे कोई परिवर्तन न होगा तो, सट्टा प्रयोजन के लिए उपलब्ध द्रव्य परिमाण मे वृद्धि, उतनी राशि से ब्याज दर को कम कर देगी, जितनी कि L" कार्य की ब्याज मूल्य सापेक्षता की सीमा से निर्धारित होती है। बाण्डो के मूल्यो को (खुले बाजार की सक्रियाओ द्वारा) इतना बढाया जा सकता है कि यह किसी तेजड़िये (Bull) को इसलिये प्रेरित किया जाए कि वह अपने बोण्डो को नकदी के बदले बेच दे और "मंदड़ियों" की ब्रिग्रेड म शामिल हो जाए" (पृ० 171)। इस दशा मे हम अनुसूची से नीचे उतर आते है। किन्तु खुले बाजार की सक्रियाएँ, जिनका उद्देश्य द्रव्य परिमाण मे वृद्धि करने का है अनुसूची म विचलन भी ला सकती है, क्योकि इस प्रकार की सक्रियाएँ 'केन्द्रीय बैंक या सरकार की भावी नीति के सम्बन्ध मे परिवर्तित आशाओ" को जन्म दे देगी (पृ० 189)। किन्तु ऐसा होना निश्चित नही है। नई नई घटनाएँ केवल वे बडे बडे मत भेद उत्पन्न कर सकती हैं, जो समस्त L" अनुसूची म आवश्यक रूप से कोई हटाव लाए बिना बॉण्ड बाजार मे अधिक हलचल उत्पन्न कर सकती हैं। यदि बाजार की आशाओ का सतुलन बदल जाता है तो अनुसूची मे हटाव आ जाएगा। केन्द्रीय बैंक की उस नीति का, जिसका उद्देश्य द्रव्य सभरण को बढाना है, L" कार्य मे विचलन द्वारा सामना किया जा सकता हैं। और इससे ब्याज दर पर वस्तुत कोई प्रभाव नही पडेगा (पृ० 198)। अत कुछ परिस्थितियो मे द्रव्य परिमाण मे बडी वृद्धि ब्याज की दर पर बहुत ही कम प्रभाव डाल सकती है। ब्याज दर के भविष्य के सबध मे

मत 'इतना एक मत हो सकता है" कि वर्तमान दरो मे थोडा-सा ही परिवर्तन नकदी रखने के लिए सामूहिक सचलन उत्पन्न कर सकती है (पृ० 172)। "जबकि द्रव्य परिमाण मे वृद्धि से यह आशसा की जा सकती है कि यह (यदि अन्य बातें **समान हो**) ब्याज की दर को घटा दे, किन्तु ऐसा नही होगा, यदि जनता की नकदी तरजीह द्रव्य परिमाण से अधिक बढ रही है" (पृ० 173)।

दूसरी ओर इस बात पर बल देने की आवश्यकता है कि अनुसूची मे **विचलन** आशसाओ को प्रभावित करने वाले विभिन्न प्रकार के परिवर्तनो के कारण हैं और सभवत द्रव्य परिमाण मे परिवर्तनो से उनका कोई सबध न हो। नकदी तरजीह अनुसूची L" मे परिवर्तनो तथा निसचित द्रव्य की मात्रा मे परिवर्तनो के बीच बहुधा सभ्रान्ति हो जाती है। अनुसूची मे विचलन वास्तव मे निसचित राशि नही बदल देगा। 'निसचय की मात्रा" तो केवल द्रव्य आय और द्राव्यिक भुगतान की मात्रा द्वारा वास्तविक द्रव्य सभरण को बदलने से अथवा द्रव्य की लेन-देन माग L' को बदलने से बदली जा सकती है। अनुसूची L" मे विचलन सचमुच मे निसचित राशि (अर्थात् निष्क्रिय शेष जमा राशियो) को नही, बल्कि केवल ब्याज की दर को बदलेंगे। अत यह सत्य नही है, जैसा कि कभी-कभी कहा जाता है, कि "नकदी तरजीह" "सचलन-वेग" (Velocity of Circulation) का नया नाम है। यह सामान्यत माना जाता है कि निसचय के परिमाण मे परिवर्तन 'सचलन वेग' पर प्रभाव डाल कर मूल्य स्तर पर सीधा अनुपातिक प्रभाव" डाल सकता है। किन्तु "निसचय प्रवृत्ति" (अर्थात् नकदी तरजीह L" की दशा मे परिवर्तन) "मूल्य रूप से मूल्यो पर नही, बल्कि ब्याज-दर पर प्रभाव डालेगी।"[1]

---

[1]—देखिये हैरिस का उपर्युक्त रचना पृ० 187 पर पुनर्मुद्रित केन्ज का लेख। इस विषय के टवथ में 15वें अध्याय (जनरल थ्योरी के) में केन्ज ने यह दावा करते हुए इस बात को बुरी तरह प्रारम्भ किया कि द्रव्य या नकदी तरजीह द्रव्य के आय वेग से बहुत अधिक सबद्ध है। बाद में उन्हें पता चला कि यह भ्रान्तिजनक बात है और उन्होंने विनर (Viner) के उत्तर में क्वार्टरली जर्नल आव इकनॉमिक्स (1937) में इस बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया। यहां पर उन्होंने यह स्पष्ट किया कि नकदी तरजीह में वृद्धि (अर्थात् L" कार्य में वृद्धि) का अर्थ केवल ब्याज की अपेक्षाकृत ऊंची दर से हो सकता है न कि निष्क्रिय शेष जमा राशियों में लाया हुआ अधिक द्रव्य से (अर्थात् वेग में कमी)। 15वें अध्याय में और अन्यत्र जनरल थ्योरी में भी आंशिक रूप से कठिनाई यह है कि वे अनुसूचियों और अनुसूचियों में प्रेक्षण योग्य बिन्दुओं के बीच पर्याप्त रूप मे भेद नही करते।

किस प्रकार द्रव्य परिमाण मे परिवर्तन, एक ओर तो समस्त आय मे (और शायद पदार्थ मूल्यो मे) और दूसरी ओर ब्याज की दर मे परिवर्तन ला सकते हैं, यह पहिले तो इस बात पर निर्भर है कि किस प्रकार द्रव्य मे परिवर्तन घटित होते हैं। मान लीजिये कि स्वर्ण खनन (gold mining) के परिणामस्वरूप द्रव्य संभरण बढ जाता है। यह नया सोना किसी-न-किसी को आय के रूप मे प्राप्त होता है, या मान लीजिए कि सरकार अपने खर्च को चलाने के लिए नोट छापती है। यह नया द्रव्य भी किसी-न किसी की आय के रूप मे प्राप्त होगा। यह नई आय मुख्यत उपभोक्ता माल पर व्यय की जाएगी, जिससे समस्त आय बढ जायेगी और इसलिए नये द्रव्य के एक अश की लेन-देनो के लिए आवश्यकता होगी। किन्तु कुछ नया द्रव्य प्रतिभूतियो के क्रय करने मे व्यय हो सकता है, और इससे ब्याज दर गिर जाएगी। इससे यह अर्थ निकला कि जिनके पास पहले से प्रतिभूतियाँ थी, उनको नकदी के बदले बोण्डो को या अन्य अर्जक परिसपत्ति को बचने के लिए प्रेरित किया गया है। इस द्रव्य को निष्क्रिय बकाया के रूप मे रखा जा सकता है। नए द्रव्य का कुछ भाग तो लेन देन प्रयोजनो के लिए और कुछ भाग सट्टा प्रयोजको के लिए रखा जाता है। अत नए द्रव्य के एक भाग ने समस्त आय मे (और सम्भवत पदार्थ मूल्यो मे भी) वृद्धि कर दी है और एक अश ने ब्याज-दर मे कमी कर दी है।

किन्तु हमे वेग के विषय पर इस चक्करदार मार्ग को छोड देना चाहिए और लौट कर मुख्य मार्ग अर्थात् आशसाओ की दशा नकदी तरजीह और ब्याज दर पर आ जाना चाहिए। वास्तव मे आशसाओ की दशा मे ब्याज-दर के सम्बन्ध मे बाजार निर्णयो की अपेक्षा बहुत कुछ अधिक अन्तर्ग्रस्त है। निस्सदेह भावी ब्याज-दर की आशसाओ मे, सामान्य पूजी परिसपत्ति पर भावी आय के सम्बन्ध मे निर्णय अ तर्ग्रस्त होत हैं। एक धनपति के लिए तीन विकल्प है। वह अपनी सपत्ति को (1) नकदी (2) ऋण अथवा (3) असल पूँजीगत परिसपत्ति अर्थात् ईक्विटी शेअरो (equities) के रूप मे रख सकता है। यदि असल पूँजीगत परिसपत्ति पर भावी आय के विषय मे बाजार की अपेक्षा अधिक निराशावादी है तो या तो वह नकदी रखेगा या ऋण। और इन दोनो मे से भी वह नक्दी को रखना चाहेगा, यदि उसे यह विश्वास है कि भावी ब्याज दर चालू बाजार दर से अधिक होगी, अर्थात् यदि उनका विश्वास है कि बॉण्ड बाजार गिर जायेगा (देखिये पाद टिप्पणी, पृ० 170)।

L' कार्य का कोई भी विश्लेषण इन तीन प्रकार की सम्पत्ति, अर्थात्, असली पूजीगत परिसपत्ति, ऋण और नकदी को लाये बिना पूर्ण नहीं हो सकता। इस

सबंध मे जनरल थ्योरी का अत्यन्त महत्वपूर्ण परिशिष्ट केन्ज के क्वार्टरली जनल ऑव ईक्नामिक्स (1937) मे प्रकाशित एक लेख मे पाया जा सकता है।[1] नकदी तरजीह का विश्लेषण बहुत अधिक अच्छा हो सकता था, यदि पूंजी परिसपत्ति पर इस सामग्री का जनरल थ्योरी म सम्मिलित कर लिया गया होता।

धन रखने वालो के सामने जो तीन विकल्प—द्रव्य, द्रव्य ऋण, असल पूंजीगत परिसपत्ति है उन्हे "प्रत्येक सीमान्त निवेशकर्त्ता को उनमे से प्रत्येक विकल्प मे बराबर का लाभ' अवश्य प्रदान करना चाहिए। असली पूंजीगत परिसपत्ति के मूल्यो को उनसे भावी आय को ध्यान मे रखते हुए, और सदेह और अनिश्चतता के उन सब तत्वो को ध्यान म रखते हुए जो कि निवेशकर्त्ता के मन को प्रभावित करते है अवश्य ही हटना चाहिए जब तक कि वे उस सीमान्त निवेशकर्त्ता को समान स्पष्ट लाभ न प्रदान करे, जोकि यह निश्चय नही कर पा रहा है कि वह अपने धन को (1) एक असल पूंजी परिसपत्ति म रखे अथवा (2) एक द्राव्यिक ऋण मे अथवा (3) नकदी के रूप म रखे।[2]

यदि द्रव्य परिमाण दिया हुआ हो, तो एक ऊँची निसचय प्रवृत्ति का अर्थ ब्याज की ऊँची दर होगा। और यदि किसी पूंजी सचय की भावी आय दी हुई हो, तो ब्याज-दर म वृद्धि पूंजीगत परिसपत्ति के मूल्य को कम कर देगी। अत जब तेजी समाप्त होने की सभावना हो तो ब्याज की बढती हुई दर समान्य स्टाक के शेयरो के बढते हुए मूल्यो को कम करने की ओर प्रवृत्त होगी, किन्तु बढती हुई ब्याज दरो का —निरुत्साहित करने वाला प्रभाव कुछ समय तक क्षति पूर्ति से अधिक हो सकता है। यदि भावी उपज अथवा आय को बढा दिया जाये।

असल पूंजीगत परिसपत्ति को नए ढग से उत्पन्न किया जा सकता है। उनकी उत्पत्ति का पैमाना 'उसकी उत्पादन लागत तथा उनके उन मूल्यो के, सम्बन्ध पर निर्भर करता है जो वह बाजार म प्राप्त करने की आशा करते हैं।" एक ओर तो उनकी लागत और दूसरी ओर उनकी भावी उपज और साथ मे वह ब्याज-दर जिस पर भावी आय पूंजीकृत होती है चालू निवेश की मात्रा को निर्धारित करेगी।[3]

अत मुख्यत भविष्य के विषय म दो प्रकार के निर्णय हैं (एक का सम्बन्ध

[1]—हैरिस की उपयुक्त रचना में पुनर्मुद्रित, अध्याय 15।
[2]—वही, पृ० 188।
[3]—वही।

ब्याज-दर से और दूसरे का भावी आय या उपज से है), जो कि निवेश की मात्रा को निर्धारित करते हैं, किन्तु "उन दोनो मे से कोई भी किसी पर्याप्त या दृढ नीव पर आधारित नही है।" ये निर्णय निसचय प्रवृत्ति को प्रभावित करते हैं। तेजी की सकट-कालीन दशा मे "नकदी सकट" (liquidity crisis) आ सकता है, और बढती हुई अनिश्चतता के कारण अधिक निसचय प्रवृत्ति हो सकती है। और साथ ही साथ भावी उपज के विषय मे अधिक निराशावादी दृष्टिकोण भी हो सकता है। अत असल पूंजीगत परिसपत्तियो (अर्थात् ईक्विटी शेअरो) तथा ऋण-पत्रो से हट कर नकदी की ओर सचलन होगा। दूसरी ओर चक्र की पुनर्लाभ स्थिति मे निसचय प्रवृत्ति कम हो सकती है और साथ ही भावी उपज के विषय मे अधिक आशावादी दृष्टिकोण हो सकता है। अतः ये दोनो उपादान केवल ऊपर ही नही बल्कि नीचे परावर्तन बिंदु पर भी एक-दूसरे को सहायता प्रदान करते हैं। ठोस रूप मे इसका यह अर्थ है कि सकट स्थिति मे ब्याज की बढती हुई दर (बढी हुई नकदी तरजीह) असल पूंजीगत परिसपत्ति की भावी उपज मे गिरावट को सचलित कर देती है, जिससे कि दोनो ही स्थितियो मे पूंजी परिसपत्तियो के मूल्य तेजी से नीचे गिरा दिए जाते हैं, और सभवत उनकी उत्पादन की लागतो से भी बहुत नीचे गिरा दिये जाते हैं। दूसरी ओर उपलब्धि की अवस्था मे गिरती हुई ब्याज दर (घटी हुई निसचय प्रवृत्ति) और साथ ही भावी उपज मे वृद्धि परिसपत्ति के मूल्य को उनकी उत्पादन की लागतो से ऊपर धकेल देंगी और इस प्रकार निवेश परिव्यय मे वृद्धि, तथा आय और रोजगार मे सामान्य वृद्धि को प्रेरित करेगी।

चक्र की फैलाव अवस्था मे (अर्थात् उपलब्धि अवस्था और सकट अवस्था के बीच) ब्याज की दर के बढने की सम्भावना है, और यह भावी उपज या आय मे वृद्धि से प्राप्त असल पूंजीगत परिसम्पत्ति के मूल्यो पर कुछ-न-कुछ अनुकूल प्रभाव को शिथिल कर देगी। ब्याज-दर मे वृद्धि इस तथ्य को सूचित करती है कि चक्र की इस अवस्था मे धन के स्वामी बाडो और गिरवी से ईक्विटी शेअरो की ओर हटने को प्रवृत्त होगे। इसके अतिरिक्त बाड मूल्यो मे गिरावट इस आशसा की ओर ले जा सकती है कि वे और गिरेंगे और इसलिए ब्याज दरें सचित ढग से और ऊँची चढ जाएगी।

चक्र की आकुचन (contraction) अवस्था मे (अर्थात् सकट और सुधार की अवस्था के बीच) ब्याज-दर विशिष्ट रूप से गिर जाएगी और यह भावी कम (और सम्भवत गिरती हुई) उपज से प्राप्त असल पूंजीगत परिसम्पत्ति के मूल्यो पर

प्रतिकूल प्रभाव को कुछ हद तक दूर कर देगी। ब्याज-दर मे गिरावट इस तथ्य को सूचित करती है कि चक्र की इस अवस्था मे पूँजीगत परिसम्पत्ति से भावी आय के विषय मे निराश होकर धन के स्वामी ईक्विटी शेअरो को छोड उच्च स्तर के बॉण्डो (स्थिर द्रव्य दावो) को लेने की ओर बढ़ेगे। इसमे बॉण्डो के मूल्य बढ जाएगे और ब्याज-दर कम हो जाएगी।

अत सक्षेप मे इस प्रकार कहा जा सकता है (1) सकट अवस्था मे ईक्विटी शेअरो और बॉण्डो दोनो से हट कर नकदी की ओर प्रवृत्त हो सकती है, (2) सुधार की अवस्था मे नक्दी से ईक्विटी शेअरो और बाण्डो की ओर (मुख्यतया ईक्विटी शेअरो मे) विचलन हो जाएगा, (3) फैलाव अवस्था मे विचलन बाण्डो से ईक्विटी शेअरो मे होगा, (4) आकुचन अवस्था मे विचलन ईक्विटी शेअरो से बाण्डो मे होगा।

सकट अवस्था मे नकदी का निसचये होगा और सुधार अवस्था मे इसका असचय (dishoarded) होगा। किन्तु विस्तार और आकुचन अवस्थाओ मे नकदी रखने की प्रवृत्ति के विषय मे क्या होगा ?[1]

निस्सदेह यह एक जटिल प्रश्न है, जिसका केन्ज ने कोई निश्चित उत्तर नही दिया, किन्त फिर भी उनका सामान्य विश्लेपण कम-से-कम अस्थायी निष्कर्षों की ओर सकेत करता है। सकट-स्थिति सबसे अधिक अनिश्चितता का काल है। अत इस अवस्था मे निमचय प्रवृत्ति सबसे अधिक होती है। सुधार की अवस्था सबसे अधिक शान्ति और सुरक्षा का काल है, अत इस अवस्था मे निसचय प्रवृत्ति कम-से-कम होती है किन्तु जैसे जैसे अर्थ व्यवस्था तेजी (विस्तार) अवस्था मे प्रविष्ट होती जाती है, अनिश्चितताएँ बढती जाती हैं और निसचय प्रवृत्ति (नकदी तरजीह) बलवती होती जाती है। धन को तीन रूपो म (बाण्डो, ईक्विटी शेअरो और नक्दी) से जैसे ही विस्तार मे प्रगति होती है, बाण्ड उत्तरोतर अवाच्छनीय होते जाते है (स्टाक मूल्य तेजी से ऊपर की ओर बढने जाते है)। यहा तक कि अन्त मे सकट से कई मास पूर्व अनिश्चितताएँ और सदेह बढने प्रारम्भ हो जाते है और जिससे सम्भाव्य हानि की रक्षा के लिए नकदी न रखना अधिकाधिक अपेक्षित होता जाता है। अधिकाधिक व्यक्ति निर्दिष्ट दिशा मे अपनी अधिकृत पूँजी मे विचलन करने की ओर प्रवृत्त होगे। अधिकाधिक व्यक्ति उत्तरोतर निराशावादी होते जाते हैं, क्योकि उनको ऐसा प्रतीत होता है कि तेजी अपने चरम विन्दु की ओर जा रही है। यह अनिश्चितता और बढती हुई

[1]—यहा पर चक्र को चार अवस्थाओं में विभाजित किया गया है—(1) उपलब्धि (2) विस्तार, (3) सकट, और (4) आकुंचन।

निराशा समस्त निसचय प्रवृत्ति को पैदा कर देती है। बाण्डो से वह हटाव जो कि विस्तार की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे ईक्विटी शेयरो की ओर तेजी से बढ गया था, अब जैसे ही मदडिया (bear) सम्मति अत्यधिक तेजी की समाप्ति की ओर जाती है, निसचयो की ओर उत्तरोत्तर बढता चला जाएगा। इससे ठीक विपरीत प्रवृत्तिया आकुचन अवस्था मे दृष्टिगोचर होती हैं।

अत उपलब्धि और विस्तार की प्रारम्भिक अवस्था मे निसचय प्रवृत्ति सबसे कम होती है और सकट अवस्था मे सबसे अधिक होती है पर आवश्यक रूप से, इसका यह अर्थ नही है कि सचय की राशि सुधार की दशा मे सबसे कम और सकट अवस्था मे सबसे अधिक होती है। बल्कि यह तो ब्याज दर है जोकि उपलब्धि अवस्था मे सबसे नीची होगी और सकट अवस्था मे सबसे ऊँची होगी। निसचय की वास्तविक राशि क्या होगी, यह तो वास्तविक द्रव्य सभरण और द्रव्य की लेन देन माग की सापेक्षिक शक्ति पर निर्भर करेगा। यह भी हो सकता है कि तेजी अत्यन्त आशावाद की लहर से बहायी जाकर इतनी ऊँचे बिन्दु तक पहुँच जाए (सम्भवत स्फीति विकासो द्वारा बहुत ऊँचे पहुच जाए) कि द्रव्य की एक बहुत बडी मात्रा लेन-देन उपयोग मे आ जाए, किन्तु इस प्रकार के अत्यन्त आशावादी तेजियो मे भी कुछ ऐसे सावधान व्यक्ति भी होंगे, जो भविष्य के भय से अपने धन को सुरक्षित रखने के लिए नकदी के रूप मे रखना चाहेंगे और बहुत ऊँचे चालू प्रीमियम (अर्थात् ब्याज दर) पर भी अपनी नक्दी को छोडना स्वीकार नही करेंगे। ऐसी परिस्थितियो म निसचय प्रवृत्ति की शक्ति मुख्यत. निसचय के रूप मे रखी गई वास्तविक राशि की अपेक्षा उच्च ब्याज दर म प्रकट होगी।

अध्याय 7

संस्थापित, उधार देय-निधि, और केन्जवादी ब्याज सिद्धान्त

[जनरल थ्योरी, अध्याय 14]

केन्ज ने सस्थापित ब्याज सिद्धान्त पर इस कारण आपत्ति की थी क्योकि यह अनिश्चित है।

सस्थापित सिद्धान्त के अनुसार दर, निवेश माग अनुसूची और बचत अनुसूची के प्रतिच्छेद द्वारा निर्धारित होती है। ये अनुसूचिया निवेश और बचत का ब्याज दर से सम्बन्ध सूचित करती है (पृ० 175)।

फिर भी कोई समाधान सम्भव नही है, क्योकि बचत अनुसूची की स्थिति असल आय के स्तर के साथ बदल जायेगी। जैसे ही आय बढेगी, अनुसूची दाईं ओर विचलित हो जाएगी। अत हम ब्याज-दर को तब तक नही जान सकते, जब तक हमे पहिले से आय स्तर ज्ञात न हो। और हम आय-स्तर को पहले से ब्याज दर के जाने बिना नही जान सकते, क्योकि अपेक्षाकृत निम्न ब्याज-दर का अर्थ होगा निवेश का अपेक्षाकृत अधिक परिमाण, और इसलिए गुणक के द्वारा असल आय का अपेक्षाकृत ऊँचा स्तर। अत सस्थापित विश्लेषण कोई समाधान प्रस्तुत नही कर पाता।

ठीक यही आलोचना केन्ज के अपेक्षाकृत सरल सिद्धान्त पर भी लागू होती है। केन्जवादी सिद्धान्त के अनुसार ब्याज-दर द्रव्य की सभरण अनुसूची (यदि मुद्राधिकारी द्वारा कडे रूप से निर्धारित की जाए तो शायद ब्याज मूल्य निरपेक्षता) और द्रव्य की माग अनुसूची (नकदी तरजीह अनुसूचिका) के प्रतिच्छेद से निर्धारित होती है। यह विश्लेषण भी अनिश्चित है, क्योकि आय स्तर मे परिवर्तनो के साथ नकदी तरजीह अनुसूची ऊपर अथवा नीचे विचलित जाएगी। यहा पर हमारा सम्बन्ध कुल नकदी तरजीह अनुसूची से है जिसमे लेन-देन माग और द्रव्य की परिसपत्ति (asset) माग दोनो ही सम्मिलित है। यदि हम द्रव्य की कुल माग अनुसूची को

दो सघटक भागो मे पृथक्-पृथक् कर दें, तो सम्भवत हम यह युक्ति दे सकते हैं कि "विशुद्ध" नकदी तरजीह अनुसूची (परिसम्पत्ति के रूप मे रखने के लिए द्रव्य की माग) आय के स्तर पर निर्भर नही रहती है।[1] किन्तु इससे काम नही चलता, क्योकि यदि कुल द्रव्य सभरण दिया हुआ हो तो तब भी हम उस समय तक जान नही सकते कि परिसपत्ति के रूप मे रखने के लिए कितना द्रव्य उपलब्ध होगा, जब तक कि हम पहिले आय स्तर को नही जान लें और इसलिए द्रव्य की कितनी लेन-देन माग होगी। अत सस्थापित सिद्धान्त के समान केन्जवादी सिद्धान्त भी अनिश्चित है। केन्जवादी मामले मे द्रव्य सभरण और माग अनुसूचिया तब तक व्याज दर ज्ञात नही करा सकती जब तक हमे पहिले से आय स्तर का ज्ञान न हो। सस्थापित अवस्था मे तो जब तक आय ज्ञात न हो बचत की माग और सभरण अनुसूचिया कोई समाधान प्रस्तुत नही करती। सस्थापित सिद्धान्त की केन्ज द्वारा की गई आलोचना उनके ही अपने सिद्धान्त पर भी समान रूप से लागू होती है।

बिल्कुल यही बात उधार देय-निधि सिद्धान्त के विषय मे भी ठीक है। उधार देय निधि विश्लेषण के अनुसार व्याज-दर उधार देय-निधियो की माग अनुसूची और सभरण अनुसूची के प्रतिच्छेदन से निर्धारित होती है। अब उधार देय निधियो की सभरण अनुसूची बचत (राबर्टसन के सिद्धान्त के अनुसार) एव नए द्रव्य से उधार देय निधियो मे नए योगो और निष्क्रिय शेष धन राशियो के असचय से मिलकर बनी है। किन्तु क्योकि अनुसूची का "बचत" भाग "स्वायत्त 'आय[2] के स्तर के साथ बदल जाता है, इसलिये इससे यह परिणाम निकला कि उधार देय-निधियो की कुल सभरण अनुसूची भी आय के साथ बदल जायेगी।[3] अत यह सिद्धान्त भी अनिश्चित है।

उधार देय-निधि सिद्धान्त मे, सबद्ध सभरण अनुसूची उधार देय-निधियो (अर्थात् "ऐच्छिक" बचत + नये द्रव्य) के रूप मे सोची जाती है। पीगू जिन्होने केन्ज-

---

[1]—वास्तव में, क्योंकि आशमाए आय के स्तर से प्रभावित होता है, इस लिए यह कोई सम्य पूर्व धारणा (permissible assumption) नहीं है। इसलिए नकदी तरजीह का मामला यहां पर जैसा निर्दिष्ट किया गया उससे भ. अपेक्षाकृत कमजोर पड जाता है।

[2]—यहां पर "स्वायत्त आय" को राबर्टसन सिद्धान्त के अनुसार अर्थात् कल की आय के रूप में प्रयोग किया गया है।

[3]—मामले को और अधिक सशक्त बनाने के लिए यह भी कह देना चाहिए कि उधार देय निधियों के "नए द्रव्य और सक्रियित (activated balances) शेषधन राशिया" का भाग वर्तमान आय में वृद्धियों और कमियों के साथ-साथ बढ़ेगा और घटेगा।

वादी परिभाषाओं को स्वीकार किया है, द्वारा किए गए विश्लेषण मे सभरण अनुसूची को वर्तमान आय मे से बचत के रूप मे सोचा गया है। "उपभोग की व्यवस्था करने मे की गई सेवाओ के बदले मे प्राप्त आय पर जो कुल आय का आधिक्य है, उसी को बचत कहा गया है।"[1] उसी प्रकार "उपभोग माल पर व्यय के ऊपर जो द्रव्य आय का आधिक्य" है, उसे "समस्त द्रव्य बचत" कहा गया है।[2] वास्तव मे, जैसा कि ऊपर देखा जा चुका है, पीगू की परिभाषाए केन्ज़वादी परिभाषाओं के समरूप हैं। द्रव्य बचते वर्तमान आय की वे भाग हैं, जो कि उपभोग मे नही लायी जाती।

अब यह देखिए कि वर्तमान आय चालू व्यय से प्राप्त होती है। चाहे चालू आय अशत नए द्रव्य के अन्त क्षेपण से, या निष्क्रिय शेष धन राशियो के सक्रियकरण से पूर्ण की जाती है, अथवा नही। पीगूवादी परिभाषा के दृष्टिकोण से इससे कोई अन्तर नही पडता।[3] आय तो आय होती है, चाहे बैंको से उधार ली हुई निधियो को खर्च करने से प्राप्त हो या "पूर्व" (prior) आय के खर्च करने से प्राप्त हो, और इस आय से प्राप्त बचत बचत होती है चाहे आय की उत्पत्ति की प्रक्रिया मे बैंक की साख (bank credit) ने इसमे कोई कार्य किया हो या नही।[4]

अत पीगूवादी सिद्धान्त मे वस्तुत "बचत" वही चीज होती है, जिसे "उधार देय निधि कहा जाता है। वास्तव मे राबर्टसनवादी भाषा मे "उधार देय-निधि', ऐच्छिक बचत (अर्थात् "स्वायत्त' आय से प्राप्त बचत) और उधार लिए हुए बैंक की निधियो व सञ्चियित निष्क्रिय शेषनिधियो को मिला कर बनती है। पीगूवादी भाषा मे चालू आय मे से बचत भली भाति 'ऐच्छिक" (या राबर्टसनवादी) बचत से उस सीमा तक बढ सकती है, जितनी कि चालू आय बैंक के कर्जों से या निष्क्रिय शेष धन राशियो की अन्त क्षेपण से बढ जाती है। अत बचत की पीगूवादी सभरण अनुसूची का वही अर्थ होता है, जो कि **उधार देय-निधियो** की राबर्टसनवादी या

---

[1]—देखिये ए सी पीगू की पुस्तक 'इम्प्लायमेंट ऐण्ड इक्विलिब्रियम, दूसरा संस्करण प्रकाशक मैकमिलन एण्ड क०, लि०, लदन, 1949, पृ० 30।

[2] – वही पृ० 31।

[3]—"जब जनता या सरकारें बैंको से उधार लेती है, तो इन परिभाषाओं के आशयों के विषय में स्पष्ट ज्ञान होना आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति इसमे सहमत है कि इस प्रकार से उधार लिया हुआ द्रव्य, आय तभी बनता है, जब इसे उत्पत्ति के कारकों की सेवाओं के बदले में दे दिया जाता है" (वही पृ० 30)।

[4]—वही पृ० 30।

स्वेडन की (Swedish) सभरण अनुसूची का अर्थ होता है। अतः इन दोनों में आगे कोई भेद करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार अब से एक ओर तो मैं केवल उधार देय-निधि[1] विश्लेषण और दूसरी ओर केन्जवादी नक्दी तरजीह विश्लेषण का उल्लेख करूंगा।

यदि नव संस्थापित (उधार देय निधि) नियमन और केन्जवादी नियमन को साथ साथ लिया जाए, तो यह हमें ब्याज-दर का उचित सिद्धान्त प्रदान करते हैं। उधार देय निधियों के नियमन से आय के विभिन्न स्तरों पर (देखिए चित्र 14 A) हम उधार देय-निधि अनुसूचियों के परिवार (या केन्ज पीगूवादी अर्थ में बचत अनुसूचियां) को प्राप्त करते हैं। ये दोनों निवेश मांग अनुसूची[2] से मिलकर हमें हिक्सवादी IS वक्र (देखिये चित्र 14 B) प्रदान करती हैं। अन्य शब्दों में नव संस्थापित नियमन हमें यह सूचित करता है कि ब्याज की विभिन्न दरों पर आय के विभिन्न स्तर (यदि निवेश मांग अनुसूची और उधार देय निधि अनुसूचियों का परिवार दिया हुआ हो) क्या होंगे। पर हमें यह सूचित नहीं करता कि ब्याज की दर क्या होगी।

केन्जवादी नियम से विभिन्न आय स्तरों पर हम द्रव्य तरजीह अनुसूचियों का एक परिवार प्राप्त करते हैं (देखिये चित्र 15 A)।

---

[1]—उक्त विशेष अवस्था में संस्थापित सिद्धान्त को उधार देय-निधि सिद्धान्त के अनुरूप कहा जा सकता है, जब कि बैंकिंग प्रणाली से किसी नए द्रव्य की उत्पत्ति नहीं होती और जब कि निष्क्रिय जमा निधियों का अपचय नहीं हो रहा होता। संस्थापन सिद्धान्त (स्थानिक संतुलन) ने यह मान लिया है कि बचत और निवेश बराबर और संतुलित अवस्था में हैं। राबर्टसनवादी या स्वेडन की परिकल्पना के अनुसार उधार देय निधियां जब हो बचत के बराबर हों, जब प्रणाली संतुलित अवस्था में हो, फिर भी निम्नवत् समय पश्चगाएं हो सकती हैं। केन्जवादी और पीगूवादी परिकल्पनाओं में (इस बात पर केन्ज और पीगू सहमत थे) बचत सदैव निवेश के बराबर होती है, किन्तु आवश्यक रूप से यह संतुलन में नहीं होती। किन्तु केन्ज पीगू 'बचत'' सदैव ही राबर्टसन स्वेडन की "उधार देय-निधियों" के बराबर होती है।

[2]—शायद प्रत्येक आय स्तर के लिए, निवेश मांग अनुसूचियों का एक परिवार होगा। प्रत्येक अदनी इस बात से सहमत होगा कि आय स्तर में कोई भी परिवर्तन निवेश परिमाण को प्रभावित करता है, लेकिन हर एक इससे सहमत नहीं होगा कि आय स्तर निवल निवेश का निर्धारक है।
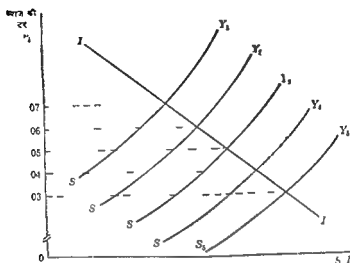
चित्र न० 14A बचत अनुसूचिकाओ का परिवार IS अनुसूची = उधार देय निधि अनुसूची (रावटसन के शब्दो मे) या बचत अनसूची (पीगू के शब्दो मे)। टिप्पणी—मान लो आय $Y_1=100$, $Y_2=120$ $Y_3=150$ $Y_4=200$ और $Y_5=260$। तो IS अनुसूची (जो कि Y से I का कार्यात्मक सम्बन्ध सूचित करती है) इस प्रकार होगी
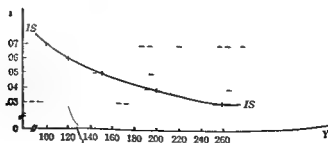
चित्र न० 14 II

यह मुद्रा अधिकारी द्वारा निश्चित स्थिर किये हुए द्रव्य के सभरण से मिलकर हमे हिक्सवादी L वक्र (जिसे मैं LM वक्र[1] कहना पसद करता हू) प्रदान करेंगे (देखिए चित्र 15 B)।

LM वक्र हमे यह सूचित करता है कि आय के विभिन्न स्तरो पर ब्याज की भिन्न भिन्न दरें (यदि द्रव्य परिमाण और नकदी तरजीह वक्रो का परिवार दिया हुआ हो) क्या होगी। किन्तु अकेली नकदी अनुसूचिका हमे यह नही बतला सकती कि ब्याज-दर क्या होगी।
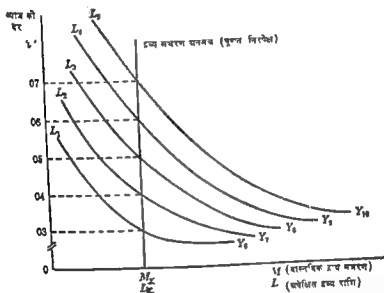
चित्र न० 15 A नकदी तरजीह अनुसूचिकाओ का परिवार। टिप्पणी—मान लो $Y_6=100$, $Y_7=155$, $Y_8=170$, $Y_9=180$ और $Y_{10}=185$, तो LM अनुसूचिका (जो कि "i" का "y" के कार्यात्मक सम्बन्ध सूचित करती है) इस प्रकार होगी :

---

[1]—देखिए मेरी पुस्तक 'मानेटरी थ्योरी ऐण्ड फिस्कल पालिसी,' (प्रकाशक मैक्ग्रहिल बुक क०, ई० 1949) का अध्याय 5। LM वक्र एक ऐसी स्थिति को सूचित करता है, जबकि सतुलितावस्था के अर्थ में (जबकि L द्रव्य माग को और M सभरण को सूचित करे) L=M के होगा। उसी तरह से, IS वक्र एक ऐसी अवस्था को प्रकट करता है जब कि सतुलितावस्था में I=S के होगा (अर्थात् गुणाक प्रक्रिया ने अपने आप को पूर्णत सम्पन्न कर लिया है)।
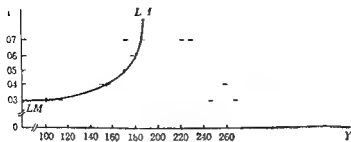
चित्र न० 15 B

IS वक्र और LM वक्र व अनुसूचिया है जोकि (1) आय और (2) व्याज दर नामक चरो म सबन्ध कराती है। अत इन दो वक्रो अथवा अनसूचियो के प्रतिच्छेदन बिंदु पर (देखिय चित्र 16 आय और व्याज दर को साथ-साथ निर्धारित होती है। इस बिंदु पर आय और व्याज दर एक दूसरे से इस प्रकार सम्बधित हो जाते है कि (1) निवेश और बचत सतुलितावस्था म होत है (अर्थात वास्तविक बचत और निवश अपेक्षित बचत के बराबर होते है) और (2) द्रव्य माग सभरण मे स तुलन होता है (अथात द्रव्य की अपेक्षित राशि वास्तविक द्रव्य सभरण के बराबर होती है)।
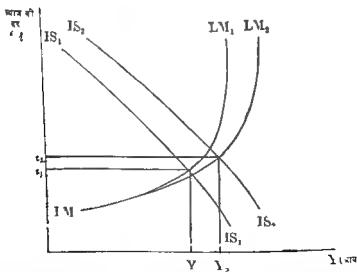
चित्र न० 16 IS और LM वक्र। टिप्पणी—IS_1 से IS_2 तक IS वक्र का हटाव या तो अर्तनिहित निवेश माग कार्य के उपरिमुखी हटाव के कारण है और/या बचत कार्य मे अधोमुखी हटाव के कारण है। LM_1 से LM_2 तक LM वक्र का हटाव या तो द्रव्य सभरण मे वृद्धि के कारण है और/या अर्तनिहित नकदी तरजीह अनुसूची मे कमी के कारण है।

अन ब्याज का निर्धारक सिद्धान्त इन बातों पर आधारित है—(1) निवेश मांग कार्य, (2) बचत कार्य (अथवा विलामत उपभाग कार्य), (3) नकदी तरजीह कार्य, और (4) द्रव्य परिमाण। यदि समग्र रूप म देखा जाए तो केन्जवादी विश्लेषण म य सब बातें आ जाती हैं। इस रूप म, नव सस्यापना के विपरीत केन्ज का निश्चय ही निर्धारक ब्याज सिद्धान्त था। किन्तु केन्ज न कभी भी इन सब तत्वों को एक समाकलित ब्याज सिद्धान्त को स्पष्टतापूर्वक बनाने के लिए व्यापक ढग से इकट्ठा नहीं किया। उन्होंने विशिष्ट रूप से यह नहीं कहा कि नकदी तरजीह। द्रव्य परिमाण, ब्याज दर नहीं, केवल LM वक्र दे सकती है। यह काम हिक्स[1] ने किया कि उन्होंने केन्जवादी साधना का इस ढग से प्रयोग किया कि जिससे सम्पूर्ण चित्र को मूलतः अनमत हो गया, अर्थात यह कि उत्पादिता, मितव्ययता नकदी तरजीह तथा द्रव्य सभरण, एक व्यापक और निर्धारक ब्याज सिद्धान्त म आवश्यक तत्व होते हैं।

केन्ज ने स्पष्ट रूप से इस विश्लेषण के प्रथम भाग को देखा अर्थात यह कि सस्यापित (या नव सस्यापित) नियमन कोई ब्याज सिद्धान्त नहीं देता वरन् केवल IS वक्र देता है, और वस्तुत उन्होंने उसको इस रूप म व्यक्त भी किया (पृ० 178)। IS वक्र वह अनुसूची है जो कि समस्त आय और ब्याज दर नामक दो चरो म सबध स्थापित करा देती है। स्पष्ट रूप से केन्ज इस कार्यात्मक सम्बन्ध का उल्लेख करते हैं। यदि पूजी के लिए माग वक्र और बचत के लिए सभरण वक्र का एसा परिवार हो, जिसम प्रत्येक आय स्तर के लिए एक वक्र हो, तो हम IS वक्र की गणना कर सकते हैं, क्योंकि इन अवस्थाओं म जैसा कि केन्ज कहते हैं "आय का स्तर और ब्याज की दर अद्वितीय ढग से अवश्य ही सहसम्बन्धित होनी चाहिए" (पृ० 178)।[2]

---

[1]—ईकनामीट्रिका (Econometrica) भाग 5 पृ० 147 159, 1937।

[2]—यही प्रस्थापना को पृ० 179 में प्रारम्भ में पुन कहा गया है। किन्तु यह कहना सत्य नहीं है कि जनरल थ्योरी में पृ० 180 पर किया गया आरेख हिक्स क IS वक्र म बहुत मिलता जुलता है। यह इसलिये सत्य नहीं है, क्योंकि विभिन्न अक्षों (axes) पर जब कि एक अक्ष Y ... आय हो, और दूसरा अक्ष ı अथवा ब्याज की दर हो, तो पूर्ण बात को पुन [illegible] लिए गुणक का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। IS वक्र का [illegible] होगा जाकि केन्ज के आरेख में बचत वक्रों क परिवार और निवेश [illegible] को मिलाना है।

कथा के प्रथम भाग को समझने के पश्चात् केन्ज ने फिर भी यह नहीं देखा कि उनका अपना ब्याज सिद्धान्त समान रूप से अनिश्चित है। उनका तुरत यह कहना है (पृ० 181) कि "नकदी तरजीह" तथा "द्रव्य परिमाण" हमें यह बतलाते हैं कि ब्याज की दर क्या होगी (पृ० 181)। किन्तु यह सत्य नहीं है, क्योंकि प्रत्येक आय स्तर के लिए एक नकदी तरजीह वक्र होता है। जब तक हमें आय स्तर ज्ञात नहीं होगा, हम ब्याज दर की मात्रा को नहीं जान सकते। नकदी तरजीह चक्रों के परिवार और द्रव्य परिमाण इन दोनों को मिलाकर हम यह मान सकते हैं कि LM वक्र क्या होगा किन्तु यह अकेला वक्र ब्याज की दर को निर्धारित नहीं कर सकता।

यह बात स्पष्ट है कि अनेक स्थलों पर केन्ज इस विषय में स्पष्ट नहीं थे। यह पृ० 183 के नीचे वाले पैरे से विदित होता है। यहां पर वे यह कहते हैं कि बचत और निवेश प्रणाली के निर्धारक नहीं बल्कि निर्धारित" हैं। निस्सदेह यह सत्य भी है। किन्तु उससे अगले ही वाक्य में वे ब्याज दर के साथ-साथ उपभोग प्रवृत्ति और पूंजी की सीमान्त कार्यकुशलता की अनुसूची को भी प्रणाली के निर्धारक के रूप में सम्मिलित कर लेते हैं। किन्तु यही है वह जो गलत है। वास्तव में आय के स्तर के साथ ब्याज दर प्रणाली का निर्धारक नहीं बल्कि निर्धारित है। ये वे तीन कार्य है, जो निर्धारक माने जाते है—(1) बचत (या विलोमत उपभोग) कार्य, (2) निवेश माग कार्य तथा (3) नकदी, तरजीह कार्य, (4) द्रव्य का परिमाण। यदि केन्ज-वादी यह और द्रव्य सभरण दिये हुए हो, तो ब्याज दर और आय का स्तर पारस्परिक रूप से निर्धारित हो जाते हैं। फिर भी केन्ज ने निश्चय ही निर्धारित सिद्धान्त के लिए आवश्यक लुप्त कड़ी (अर्थात् नकदी तरजीह) को प्रदान किया।

लर्नर ने इसे प्रस्तुत[1] करने का एक दूसरे ढंग का सुझाव दिया है (जोकि ठीक होते हुए भी पर्याप्त नहीं है और सम्भवत भ्रांति उत्पन्न करने वाला है) जो यह दिखलाता है कि किस प्रकार से ये तीन कार्य—ीमान्त कार्यकुशलता अनुसूची, उपभोग अनुसूची, तथा नकदी तरजीह अनुसूची—द्रव्य सभरण के साथ ब्याज की दर को निर्धारित करते हैं। यह इन दो वक्रों—(क) द्रव्य सभरण, और (ख) एक नवीन "दूषित' (Sophisticated) वक्र (जिसे मैं LIS का नाम दूंगा) के प्रतिच्छेदन से ब्याज दर के निर्धारण को प्रकट करने का प्रयत्न है।

इस वक्र से यह दिखलाने का प्रयत्न किया जाता है कि किस प्रकार द्रव्य की

---

[1]—अच्छा पो० लर्नर की पुस्तक 'इकनामिक्स ऑव इम्पलायमेंट' प्रकाशक मैक्ग्राहिल बुक क० ई०, 1951, ृ० 265।

कुल माग, जिसमे लेन-देन माग और परिसपति (asset) माँग सम्मिलित हैं, आय मे उन परिवर्तनो से प्रभावित होती हैं, जोकि निवेश की दर मे परिवर्तनो से मेल खाते हैं (जबकि गुणक को ध्यान मे ले लिया गया हो) और जोकि ब्याज दर मे परिवर्तनो से सगत खाते हैं। इस जटिल मामले को चित्र 17 से अच्छी तरह समझा जा सकता है।
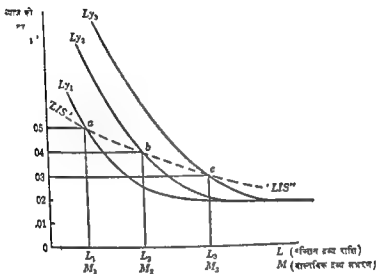
चित्र न 17 LIS वक्र।

मान लो LY_1, LY_2 और LY_3 तीन सामान्य कुल नकदी तरजीह अनुसूचिय हैं। LY_1 आय Y_1 के समुचित नकदी तरजीह अनुसूची है, LY_2 आय Y_2 के समुचित अनुसूची है, और LY_3 आय Y_3 के समुचित अनुसूची है। यह भी मान लीजिये कि आय Y_1 और 5 प्रतिशत ब्याज दर किसी दी हुई सीमात कार्यकुशलता अनुसूची, किसी दिये हुए उपभोग कार्य, और किसी दिये हुए द्रव्य सभरण M_1 के समुचित है। अब यह मान लीजिये कि द्रव्य सभरण M_1 से M_2 मे बदल जाता है। इससे ब्याज दर 4 प्रतिशत नीचे गिर जायेगी और आय-स्तर Y_2 तक बढ जायेगा। यह इसलिये ठीक है क्योकि 4 प्रतिशत ब्याज दर, और, Y_2 का आय स्तर ही दी हुई सीमात कार्यकुशलता अनुसूची, दिये हुए उपभोग कार्य, नकदी तरजीहियो को दिये हुए परिवार, और दिये हुए नकदी सभरण से सगत खाते हैं। आय मे वृद्धि की राशि निवेश माग कार्य की ब्याज मूल्य सापेक्षता और सीमात उपभोग प्रवृत्ति पर निर्भर करेगी। क्योकि आय Y_1 से Y_2 तक बढ गई है, इसलिये नकदी तरजीह अनुसची, जोकि अब सबद्ध हो जायेगी, LY_2 हो जायेगी।

इसी प्रकार M_2 से M_3 तक द्रव्य सभरण में वृद्धि ब्याज दर को 3 प्रतिशत तक कम कर देगी Y_3 तक आय को बढा देगी, और LY_3 को सबद्ध नकदी तरजीह अनुसूची बना देगी।

अब हम वक्र LIS बनाने के लिये a, b और c बिंदुओं को जोड सकते हैं। यदि वास्तव में नकदी तरजीह अनुसूची नहीं है। यह तो ब्याज की विभिन्न दरों पर द्रव्य की कुल माग को सूचित करने की अनुसूची है जबकि आय के उन विभिन्न स्तरों को ध्यान में रखा जाता है जोकि दी हुई निवेश माग अनुसूची और दिये हुए उपभोग कार्य को ध्यान में रखते हुये ब्याज के इन विभिन्न दरों के समुचित हैं।

यह बात ध्यान में रखने की है कि चित्र 17 में LIS वक्र इस कल्पना पर आधारित है कि दी हुई निवेश माग अनुसूची और दिये हुए उपभोग कार्य में कोई परिवर्तन नहीं होता। यदि इनमें से किसी एक कार्य में विचलन हो जाये तो यह परिवर्तन LIS वक्र में ऊपर या नीचे विचलन उत्पन्न कर देंगे।

अत LIS वक्र एक विचित्र ढंग की मिश्रित वक्र है। इसके पीछे नकदी तरजीह अनुसूचियों का परिवार दृष्टीगोचर होता है, और इसी के पीछे निवेश माग कार्य और उपभोग कार्य छिपे रहते हैं। अत LIS वक्र, इन तीनों कार्यों को एक वक्र में उपनय करने के प्रयत्न को सूचित करता है। यह तब तक ठीक है जब तक कोई इन तीन कार्यों को भूल नहीं जाता। किन्तु इसमें भय है कि कहीं कोई छिपे हुए कार्यों को भूल न जाय और LIS वक्र को नकदी तरजीह वक्र कहना न शुरू कर दे। यदि कोई एक गलती कर बैठता है तो वह आगे भी यह कहने की भयकर भूल कर सकता है कि ब्याज की दर पूर्णतया नकदी तरजीह और द्रव्य सभरण द्वारा निर्धारित होती है और यहां तक कह सकता है कि सीमान्त कार्यकुशलता अनुसूची और बचत कार्य (अथवा विलोमत उपभोग कार्य) का ब्याज दर से कोई सबध नहीं है। इस भूल को कर बैठने के कारण वह यह भी कह देगा कि निवेश को लगाने का बढे हुए अवसरों को सूचित करने वाली निवेश माग अनुसूची में विचलन का ब्याज दर पर कुछ भी प्रभाव न पडेगा।[1]

1— इस भूल के उदाहरण के लिए देखिए लनर की उपर्युक्त पुस्तक का पृ० 106। लर्नर जैसा स्पष्ट लेखक भी जब यह गलती करता है, तो यह एक नियमन को प्रयोग करने के खतरे को भली भांति सूचित करता है, जो कि स्पष्ट रूप से विश्लेषण के IS और LM के विधियों में प्रयुक्त सभी कार्यों को प्रयोग में नहीं लाता। द्विस्मवादी विधि में इन चार निर्धारकों (तीन कार्यों और एक द्रव्य सभरण) की उपेक्षा हो जाना असम्भव है।

जनरल थ्योरी के 14वें अध्याय से ये दो मुख्य परिणाम निकाले जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ मनोरंजन प्रासंगिक बातें भी निकल आती है। जहाँ तक केन्ज का संबंध है वे इससे सहमत हैं कि बचत ब्याज दर का बढ़ता हुआ कार्य है (पृ० 178), पर दूसरी ओर वे यह प्रकल्पना कर लेते हैं कि संस्थापक इस बात से मना नहीं करेंगे कि बचत आय स्तर का एक कार्य है। यह एक मनोरंजक कथन है और इस पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिये। अतः S=S (i, Y)। इसको आरेख रूप में या तो उन बचत वक्रों के परिवार के रूप में दर्शाया जा सकता है, जो चित्र 18A में दिखलाए गए ब्याज-दर से संबंध है और जिनमें प्रत्येक वक्र प्रत्येक आय स्तर के लिए प्रयुक्त है, या विकल्प रूप से वक्रों के उस परिवार के रूप में सूचित किया जा सकता है, जो चित्र 18 B में दिखलाए गए आय स्तर से संबद्ध हैं, और जिनमें प्रत्येक वक्र, प्रत्येक ब्याज-दर के लिए प्रयुक्त है।

किन्तु जबकि केन्ज इस बात से सहमत हैं कि शायद बचत, ब्याज दर का कार्य है, फिर भी उन्होंने यह देखा कि नव-संस्थापकों को इस बात पर संदेह है और वास्तव में उन्हें पूर्ण विश्वास नहीं था कि बचत अनुसूची ब्याज-दर का कम-से-कम दरों के पर्याप्त परास (considerable range) में बढ़ता हुआ कार्य है।

एक दूसरी गौण बात के विषय में केन्ज स्पष्टतः गलती पर है। वे संस्थापित सिद्धान्त की इस असफलता की ओर ध्यान आकर्षित कराते हैं कि प्रथम खंड में मूल्य के सिद्धान्त से संबद्ध ब्याज-दर के सिद्धान्त में और द्वितीय खंड में द्रव्य के सिद्धान्त से संबद्ध ब्याज-दर के सिद्धान्त में अंतर को भर नहीं सके। कम से-कम बहुत से लेखकों के लिए तो औपचारिक रूप से यह ठीक है, किन्तु बाद में वे आगे यह बात कहते हैं कि नव संस्थापित सिद्धान्तवादियों ने भी इन दोनों के बीच खाई पाटने का अस्पष्ट प्रयत्न किया है। निश्चित रूप से यह विक्सल के विषय में नहीं कहा जा सकता। यह पैरा (पृ० 183) तनिक भी प्रत्यायक नहीं है। बचत की राबर्टसनवादी परिभाषा, जोकि वास्तव में विक्सल और टुगन-बरनाऊस्की द्वारा पहले से प्रयुक्त संकल्पनाएं हैं, बहुधा अत्यंत उपयोगी है, यद्यपि अधिकांश रूपों में केन्जवादी परिभाषा[1] को तरजीह दी जानी चाहिये। जैसा कि केन्ज ने कहा है, विक्सल और रोबर्टसन द्वारा प्रयुक्त शब्दावली में निवेश (उधार देय), निधियों के "दो साधन" है

बाद में (पृ० 110 पर) लर्नर ने स्वयं ही अपने संकुचित नियमन में एक शोधन प्रस्तुत किया है। फिर भी उनकी पुस्तक पढ़ने के उपरान्त विद्यार्थी ब्याज-दर के अपेक्षाकृत संकुचित नकदी तरजीह सिद्धान्त को ग्रहण कर सकता है।

[1]—जैसा कि हम देख चुके हैं, केन्जवादी परिभाषा को पीगू ने अपनाया था।

—(1) "चोरी बचत" और (2) नया द्रव्य और निष्क्रिय शेष धन राशियाँ। निश्चय ही इसमें कोई गलती नहीं है। चाहे राबर्टसनवादी या केन्जवादी परिभाषा को अपनाया
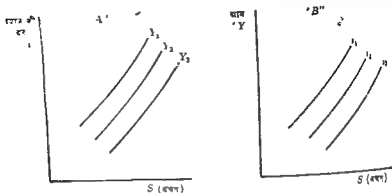
चित्र न 18 S=Fs (i, Y)

जाये, आवश्यकता यह है कि एक ही प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया जाये। केन्ज द्वारा किया गया "अस्पष्टता" का आरोप ठीक नहीं है।

दूसरी बात मे केन्ज का आधार सुदृढ था। विक्सल के "सामान्य" दर का उल्लेख करने के अतिरिक्त वे "तटस्थ" (neutral) दर हेयक (Hayek) पर भी विचार (पृ० 183) करते है। विक्सल की सतुलन दर का रूपाकन मूल्य स्थिरता बनाये रखने के लिए किया गया था, जबकि किसी प्रगतिशील समाज मे हेयक के "तटस्थ" दर का उद्देश्य द्रव्य आय को स्थिर रखने और पदार्थों के हमेशा बढते हुए परिमाण के मूल्यो को नीचे धकेलना था। अपेक्षाकृत नीचे मूल्य बढी हुई उत्पादिता को सूचित करते है। किसी तटस्थ मुद्रा नीति के अनुसरण न कर पाने के कारण जो तथाकथित बुराइया आती है, उनके सबध मे मेरा विश्वास है कि केन्ज का निर्णय ठीक था। उनकी धारणा थी कि जब तटस्थ द्रव्य का प्रश्न आता है, तो "हम गहरे पानी मे होते हैं," और यही पर ही उन्होने सारे विवाद को इब्सन की "वाइल्ड डक" (Wild Duck) नामक पुस्तक से एक कटाक्ष उदाहरण देते हुए समाप्त कर दिया। मेरा विश्वास है कि अब अधिकाश अर्थशास्त्री इस निर्णय से सहमत हैं।

अत मे 14वें अध्याय की समाप्ति (पृ० 185) पर और प्रारभ (पृ० 177) मे केन्ज एक महत्वपूर्ण बात कहते हैं। वह इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं कि प्रस्तुत विषय के सबध मे वे ऐसी धारणा स्वीकार करते हैं, जोकि सस्थापित सिद्धान्त के एक दम विपरीत है। सस्थापितो का यह विचार था कि बचत स्वय ही

निवेश की ओर ले जाती है। केन्ज का मत बिल्कुल इसके विपरीत था, अर्थात् यह कि निवेश स्वत ही चालू आय मे से की हुई बचत की ओर ले जाता है। सस्थापकों का यह मत था कि निवेश को सदैव ही अधिक बचत द्वारा बढाया जा सकता है। इसके विपरीत केन्ज का यह मत था कि गुणक द्वारा निवेश, आय स्तर को बढा देगा, जब तक कि अतिरिक्त बचत अपेक्षाकृत अधिक आय मे से इतनी उत्पन्न न की जा सके कि जा नये निवेश की बराबरी के लिये पर्याप्त हो। अत गुणक प्रक्रिया के द्वारा निवेश, बचत के परिमाण का मुख्य निर्धारक है, किन्तु विलोमत ठीक नहीं है।

इस सब का उपसिद्धान्त (Corollary) भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। मितव्यय मे वृद्धि (अपेक्षाकृत कम उपभोग प्रवृत्ति) आय को गिरा सकती है और इस प्रकार से बचत के कुल परिमाण को कम कर सकती है। अत सस्थापिता की बातें बिल्कुल उलट गई। जनरल थ्योरी का यह एक बहुत बडा गुण है कि इसने एक बार और सदा के लिए उस उलझी हुई विचारधारा को समाप्त कर दिया, जो कि बचत प्रवृत्ति (अर्थात् मितव्यय) को बचाई हुई राशि के बीच सम्भ्रान्ति उत्पन्न कर दती थी।

अध्याय 8

पूंजी, ब्याज और द्रव्य के स्वभाव (Nature) और गुणधर्म (Properties)

[जनरल थ्योरी, अध्याय 16 और 17]

जनरल थ्योरी के 16वें अध्याय के प्रथम परिच्छेद मे भी केन्ज ने इस सस्थापित दृष्टिकोण पर आपत्ति की कि बचत सीधे ही निवेश की ओर ले जाती है। विक्सल ने तो वास्तव मे बहुत पहिले ही यह बात कही थी, किन्तु विक्सलवादी विश्लेषण अंग्रेजी विचारधारा मे प्रभावपूर्ण स्थान पा नही सका था। इस कारण केन्ज का चुनौती देने वाला यह कथन आवश्यक था, किन्तु बहुधा यह कहा जाता है कि उन्होने इस बात को अधिक बढा कर कहा। बचत का अधिक भाग निस्सदेह सीधे ही निवेश मे परिणत हो जाता है, उदाहरणार्थ मालिक-अधिभोक्ता द्वारा बनाए गए अपने मकान मे या किसी फार्म मे किए गए सुधारो मे निवेश हो जाता है। निस्सदेह केन्ज ने इसे स्वीकार किया है। उनका कहना (पृ० 108) था कि बचत का एक प्रयोजन व्यावसायिक योजना को कार्यान्वित करना है। पृ० 221 पर वे पुन यह स्वीकार करते है कि कुछ बचत सीधी ही निवेश मे चली जाती है। फिर भी आधुनिक स्थिति मे बचत-कर्ता तथा असल निवेश-कर्ता बहुत हद तक विभिन्न वर्ग है।

असली महत्वपूर्ण बात तो स्पष्ट रूप से यह देखने की है कि बचत प्रवृत्ति मे वृद्धि (अर्थात् मितव्यय) निवेश की राशि को नही बढा देगी, बल्कि बात तो यह है कि उपभोग को कम करने से आय घट जाएगी। इससे निवेश मे भी कमी आ जायेगी और इसीलिए बचत की राशि भी कम हो जाएगी।

पृ० 213 पर केन्ज यह युक्ति देते हुए प्रतीत होते हैं कि बचत प्रवृत्ति मे कोई वृद्धि ब्याज की दर पर प्रभाव नही डाल सकती। यह गलत धारणा है, और इस तथ्य से यह भली-भान्ति स्पष्ट हो जाता है कि उनका बहुधा (सम्भवत अधि-

कतर) यह विचार था कि ब्याज की दर को पर्याप्त रूप मे नकदी तरजीह और द्रव्य परिमाण के द्वारा पूर्णतया स्पष्ट किया जा सकता है। जैसा कि इस पुस्तक के सातवें अध्याय मे दिखाया गया है, यह बात गलत है क्योंकि जब तक कि हमे पहिले से आय के स्तर का पता न हो, हम कभी भी यह जान नही पाते कि कौन-सी नकदी तरजीह अनुसूची लागू होगी। यदि वे इस समस्या पर हिक्स के IS और LM वक्रो के रूप मे विचार करते, तो वे यह कभी नहीं पूछते कि "क्या कारण है कि जब द्रव्य परिमाण अपरिवर्तनीय होता है, बचत का एक नवीन कार्य उस राशि को कम कर देगा, जिसे यह विद्यमान ब्याज की दर पर नकदी के रूप मे रखना वाछनीय है' (पृ० 213)। यह अन्तर्निहित उत्तर जो कि वे पाठक से निकालने की आशसा करते थे, गलत है।

पूर्ववती अध्यायो से इस प्रकार का प्रारम्भिक सपर्क स्थापित करके वे पूँजी के स्वभाव पर कुछ अपेक्षाकृत अमूर्त विचारो की ओर ध्यान देते हैं (16-17 अध्यायो मे)। निस्सदेह ये अध्याय दूसरा चक्रीय मार्ग हैं, जिनको मुख्य विषय को बिना हानि पहुँचाए छोडा जा सकता है। दूसरा परिच्छेद इस युक्ति से प्रारम्भ होता है जोकि "दुर्लभता को उत्पादिता पर पूँजी के मूल्य के स्पष्टीकरण के रूप मे तरजीह देती है। इससे कैसल के "दुर्लभता के सिद्धान्त" (द थ्योरी ऑव सोशल इकॉनमी) का स्मरण हो आता है। किन्तु यह विवाद उपयोगी नही है। "दुर्लभता" का इसके अतिरिक्त कोई आर्थिक महत्ता नही है, कि यह इस बात को निर्धारित करती है कि सीमान्त उत्पादिता अनुसूची का कौन-सा बिन्दु "परेक्षण-योग्य" (observable) बिन्दु बन जाएगा। "यदि पूँजी कम दुर्लभ हो जाती है, तो अतिरिक्त उपज कम हो जायेगी" (पृ० 213), जिसका अर्थ केन्ज के कथन के विपरीत यह है कि यह कम उत्पादक होगा।[1]

केन्ज का यह स्पष्ट कथन है (पृ० 213) कि उन्हे इस "पूर्व सस्थापित" सिद्धान्त से सहानुभूति है, जिसके अनुसार प्रत्येक चीज तकनीक, प्राकृतिक साधन तथा "परिसम्पत्तियो के रूप मे उपस्थित गत श्रम" की सहायता से 'श्रम द्वारा उत्पन्न" की जाती है। केन्ज का उक्त कथन बहुधा मूल्य के श्रम सिद्धान्त (labour theory

---

1—उनके कथन से सम्भवत कुछ ठीक मतलब निकाला जा सके कि यदि उनके विश्लेषण को घरों पर लागू किया जाये, तो यह भौतिक रूप से कम से कम अल्प उत्पादक नहीं होगा। यदि घरों का स्टाक बढ जाता है, तो उनकी आय (अर्थात् वार्षिक किराये) कम हो जाएगी, किन्तु उसी आकार और उसी कोटि के सौवें घर से भौतिक सुविधाए वही होंगी, जोकि पचासवें घर से होंगी।

of value) के समर्थन में उद्धृत किया जाता है। "उस श्रम को जिसमें निस्संदेह उद्यमकर्त्ता और उनके सहायकों की व्यक्तिगत सेवाएं सम्मिलित हैं, यह मानना अच्छा है कि यह किसी दी हुई तकनीक, दिये हुए प्राकृतिक साधनों, पूंजी उपकरण और समय मांग के वातावरण में काम करने वाला उत्पादन का एक मात्र कारक है (पृ० 213 214)। वे कहते हैं कि श्रम द्रव्य और समय ही केवल वे भौतिक इकाइयां हैं जिनकी अपने विश्लेषण के लिये उन्हें आवश्यकता है। किन्तु क्या इसका यह अर्थ है कि वे मूल्य के श्रम सिद्धान्त का पालन करते हैं? निश्चय ही नहीं। माप के साधन के रूप में 'श्रम इकाइयों' को प्रयोग करना एक बात है और मूल्य के एक मात्र निर्धारक के रूप में श्रम को मानना दूसरी बात है।

केन्ज यह युक्ति देते हैं कि पूंजी का मूल्य इसलिए है, क्योंकि यह दुर्लभ है। और इसके दुर्लभ होने के कारण पूंजी में लम्बी या चक्करदार प्रक्रियाएँ होती हैं[1]। प्रक्रिया का चक्करदार होना ही पूंजी को पर्याप्त दुर्लभ बना देता है, जिससे कि इसकी प्रत्याशित भावी आय की राशि (वार्षिक आय या किराए) उत्पादन की लागत से बढ़ जायेंगे। अन्य शब्दों में चक्करदार प्रक्रियाओं को अर्थात् पूंजी प्रयोग विधि को तब तक काम में नहीं लाया जाएगा जब तक कि प्रत्याशित आगम श्रम के सीधे प्रयुक्ति के आगम से बढ़ न जाए। अतः यदि ब्याज दर शून्य से बढ़ जाए तो "लागत का एक ऐसा नया तत्व आ जाएगा जो कि प्रक्रिया की लम्बाई के साथ बढ़ता चला जाएगा (पृ० 217)। तदनुसार जब तक कि भावी वार्षिक आय 'बढ़ी हुई लागत का पालन करने के लिए पर्याप्त नहीं बढ़ गई है, पूंजी का संभरण कम कर दिया जाएगा (पृ० 216)। पूंजी को पर्याप्त दुर्लभ रखना पड़ेगा, ताकि "एक ऐसी सीमान्त दक्षता को प्राप्त किया जा सके जो कम-से-कम ब्याज की दर के बराबर हो" (पृ० 217)। निश्चय ही यह कोई मूल्य का श्रम सिद्धान्त नहीं है।

पर अब दो बातों की कल्पना कर लीजिये—(1) एक ऐसे समाज की 'जिसमें पूंजी इतनी लगी हुई है कि इसकी सीमान्त कार्यकुशलता शून्य है" (पृ० 217),

---

1—केन्ज यह युक्ति देते हैं (पृ० 215) कि पूंजी की दुर्लभता के अन्य बहुत से कारण हैं, जिनमें "दुर्गन्धयुक्त" (smelly) या शोरगुलदार प्रक्रियाओं जैसी प्रस्तुत प्रतिकूल परिस्थितियां सम्मिलित हैं, किन्तु यह दलील आवश्यक नहीं है क्योंकि इस प्रकार से प्रस्तुत प्रतिकूल परिस्थितियां सीधी उत्पादक प्रक्रियाओं पर भी लागू होती है। यह तो पूंजी प्रयोगात्मक प्रक्रिया का वह चक्करदार होना है, जो कि पूंजी को काफी दुर्लभ बना देता है, जिससे इसकी प्रत्याशित आयों की राशि इसकी पुनः पूंजीयन लागत से बढ़ जाएगी।

किन्तु फिर भी उस समाज मे ऐसी मुद्रा प्रणाली है, जिसमे संग्रह करने की लागत उपेक्षणीय होते हुए द्रव्य "रखा" जा सकेगा, और (2) एक ऐसा समाज जिसमे शून्य ब्याज दर पर भी पूर्ण रोजगार की अवस्थाओ मे बचत की प्रवृत्ति होगी। इन परिस्थितियो मे उद्यमकर्त्ता हानि उठायेंगे, यदि वे पूंजी व्यय से निवल बचत को विस्थित (offset) करके पूर्ण रोजगार को देने का प्रयत्न करते हैं।[1] ऐसी हानिया रोजगार को तब तक गिरा देंगी, जब तक कि आय इतनी नीचे न गिर जाए कि उससे "बचत शून्य तक आ जाए" (पृ० 218)। इसका विकल्प एक ऐसी स्थिति होगी, जिसमें "भविष्य के लिए व्यवस्था करने की जनता की समस्त इच्छा" (पृ० 218) इतनी तृप्ति हो गई हो, कि वह पूर्ण रोजगार आय की अवस्था मे कुछ नही बचायेंगे।[2]

अब हम द्रव्य के रूप मे "ऐसे सस्थानिक कारक" को मान लें जोकि ब्याज की दर को ऋणात्मक होने से रोकते हैं (पृष्ठ 218)। वास्तव मे सस्थानिक और मनोवैज्ञानिक कारक इसलिये "शून्य से बहुत ऊपर सीमा निर्धारित करते है," क्योंकि भविष्य के विषय मे अनिश्चितता के अतिरिक्त (अर्थात् विशुद्ध दर) ऐसी 'लागतें' भी हैं, जोकि "ऋण लेने वालो तथा ऋण दाताओं को मिला देती हैं" (पृ० 219)। अब निम्नतर सीमा "दीर्घकाल मे" शून्य न होकर "2 या 2½ प्रतिशत हो सकती है (पृ० 219)। जब पूंजी का स्टाक इतना अधिक हो जायगा कि पूंजी की सीमान्त कार्यकुशलता ब्याज के न्यूनतम दर तक पहुंच जाए, तो निवल निवेश बंद हो जाएगा, और जब तक बचत भी शून्य तक नही कम हो जाती, रोजगार और आय घट जायेंगे।

केन्ज कहते हैं कि यह स्थिति ग्रेट ब्रिटेन और अमरीका द्वारा दो महायुद्धो के काल के बीच मे प्राप्त हुए अनुभवो को बतलाती प्रतीत होती है (पृ० 219)। एक वह समाज जिसके पास पूंजी का अपेक्षाकृत कम स्टाक है (किन्तु तकनीक वही है) और इसीलिए पूंजी की अपेक्षाकृत अधिक सीमान्त कार्यकुशलता के साथ, अधिक निवेश और आय एवं रजोगार के अपेक्षाकृत ऊंचे स्तर को प्राप्त कर सकता है, अपेक्षाकृत एक ऐसे समाज के, जिसमे पूंजी इतनी अधिक हो कि जिससे पूंजी की सीमान्त कार्य-

---

[1]—यह इसलिए सत्य है क्योंकि पूंजी के विद्यमान विशाल स्टाक के कारण निवल निवेश पर प्रतिफल की दर से कम होगी। अत पूर्ण रोजगार की अवस्था में सभी संभाव्य उपलब्ध बचत को निवेश में लगाने का प्रयत्न हानियों का कारण बन जाएगा।

[2]—जनरल थ्योरी का यह परिच्छेद बुरे ढंग से लिखा गया है।

कुशलता ब्याज की न्यूनतम दर अथवा उससे भी नीचे घट गई है। वह समाज, जोकि पूंजी पदार्थों मे समृद्ध है, निर्धन समुदाय से इस रूप मे बुरा है कि पहिले वाला तो बेरोजगारी से पीडित हो सकता है, जबकि बाद वाला विशाल अप्रयुक्त निवेश अवसरो के कारण पूर्ण रोजगार को अनुभव कर सकता है। किन्तु निस्सदेह जो कुछ भी यहाँ केन्ज़ ने कहा है उसम कोई बहुत विरोधाभासी बात नही है। उदाहरणार्थ, हम बहुत पहिले स ही जानते हैं कि तजी की समाप्ति पर समाज पूंजी पदार्थों के स्टाक म अपक्षाकृत समृद्ध होता है। स्थिर पूंजी से परितृप्त होने के कारण निवेश मे गिरावट आ जाती है, बेरोजगारी और मन्दी उसके पीछे आती है।

अब मान लीजिय कि 'राज्य की कार्यवाही एक ऐसे सतुलक उपादान के रूप मे आती है जिसस कि पूंजी उपकरण की 'वृद्धि" तब तक (ब्याज की घटती हुई दर के साथ) होती रहती है, जब तक पूंजी की सीमान्त कार्यकुशलता शून्य तक नीचे नही आ जाती। तब हमे पूर्ण निवश की स्थिति प्राप्त हो जानी चाहिए थी, जिसम कोई ब्याज लागत नही होगी और जिसम "पूंजी द्वारा की गई उत्पत्ति" एक ऐसे मूल्य पर नय होगी जो श्रम इत्यादि के उस अनुपात मे हो, "जो उसमे सम्मिलित हैं (पृ० 221)। वास्तव मे तब हम श्रम के मूल्य सिद्धा त (दुर्लभ प्राकृतिक साधनो की जमाबदी मूल्य के अतिरिक्त) पर पहुँच जाना चाहिए था।

केन्ज़ के विचार 19वी शताब्दी के आरम्भ मे होने वाले काल्पनिक सत साइमनवादियो के विचारो से बहुत अधिक मिलते-जुलते हैं। इन सत साइमनवादियो ने उद्यम के पुरस्कार पर बहुत बल दिया, किन्तु सगृहीत धन के पुरस्कार को कम कर दिया। यद्यपि किरायाजीवी वर्ग का लोप हो जाएगा, तथापि उद्यम और कौशल के लिए फिर भी स्थान रहेगा (पृ० 221)। वास्तव मे जहा तक धन के स्वामित्व का सम्बन्ध है चाहे ब्याज की विशुद्ध दर शून्य क्यो न हो, "परिसपत्ति की कुल आय, जिसम जोखिम से सबद्ध प्रतिफल भी सम्मिलित है," फिर भी प्राप्त होगी (पृ० 221)।

अब 16वें अध्याय मे हम केन्ज़ को एक ऐसी अर्थव्यवस्था के विषय में स्वतत्र रूप से विचार करते हुए पाते हैं जिसम पूंजी की सीमान्त कार्य कुशलता और सभवत ब्याज दर भी किसी न किसी प्रकार (इस विधि को स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं किया गया है) शून्य तक नीचे गिर जाती है। अन्यत्र 15वें तथा 17वें अध्याय मे और 16वें अध्याय के भी कुछ भागो म उन्होने यह विश्वास दिलाने के लिए सस्थानिक कारण प्रस्तुत किये हैं कि ब्याज दर एक निश्चित न्यूनतम सीमा से नीचे

नही गिर सकती। 'किरायाजीवी सुख मृत्यु" (rentier euthanasia) विवाद एक ऐसा "स्वतन्त्र घूमने वाला" चक्र ("free-wheeling detour) है जिसे केन्ज ने अपेक्षाकृत कम उत्तरदायित्व के क्षणो मे प्रस्तुत किया है।

यह सब कुछ शान्तिकाल मे लिखा गया था, जब केन्ज सम्भवत सीधे सादे ढग से एक ऐसे शातिपूर्ण ससार की ओर ताक रहे थे, जो निरन्तर चलता रहेगा। युद्ध और उसके पश्चात के परिणामो ने जिनमे पूंजी की कमी और स्फीतिकारक दबाव सम्मिलित हैं, ब्याज दर चित्र को बहुत अधिक बदल दिया है। अपनी मृत्यु से पूर्व इन आधारभूत परिवर्तनो के विषय मे केन्ज भली-भाति परिचित थे।[1] व्यावहारिक नीतियो को परिवर्तित परिस्थितियो के अनुकूल अवश्य ही ढाला जाना चाहिए। केन्ज का आधारभूत सैद्धान्तिक ढाचा अपने ही ऊपर आश्रित है और इसी कारण इस अध्याय मे वर्णित कुछ अस्पष्ट विचारो से इसका सम्बन्ध नही है। इसके अतिरिक्त व्यवहारिक नीतियो से सबद्ध उनम सैद्धान्तिक विश्लेषण को पूंजी की कमी और स्फीति अवस्थाओ और साथ ही अपूर्ण रोजगार की समस्याओ पर लागू किया जा सकता है।

ब्याज और द्रव्य के गुणधर्म से सबद्ध 17वा अध्याय द्रव्य और नकदी तरजीह (जो कि 13वे और 15वें अध्याय के विषय है) जुड़ा हुआ है। किन्तु विषय अत्यन्त सूक्ष्म स्तर तक पहुचा दिया गया है। जनरल थ्योरी के एकदम प्रकाशन के पश्चात 17वें अध्याय का निस्सदेह आशिक रूप से इसकी अस्पष्टता के कारण काफी आकर्षण था, किन्तु जब यह पता चल गया कि इस अध्याय मे कोई विशेष महत्वपूर्ण तथ्य नही है, तो इस क्षेत्र मे वाद विवाद शीघ्र ही समाप्त हो गया। फिर भी विचार-विमर्श (यद्यपि निश्चित रूप से इसे सुधारा-बनाया जा सकता था) पूर्णतया गुणो से शून्य नही है, और इसमे से कुछ उपयोगी बातें निकाली जा सकती हैं, किन्तु सामान्यतया कोई बहुत बडी हानि नही होती, यदि यह अध्याय लिखा ही नही गया होता।

लर्नर ने यह प्रकट कर दिया है कि केन्ज अपनी शब्दावली म स्पष्ट नही है (पृ० 223)। निस्सदेह प्रत्येक पदार्थ के लिए अपनी ही तथाकथित ब्याज-दर होती है और वह तब सामने आती है, जब वह विशेष पदार्थ उधार के रूप मे दिया

---

[1]—देखिये जान एच० विलियम्स (John H. Williams) की प्रोसीडिंग्स आव द अमेरिकन इकनॉमिक रिव्यू (Proceedings of the American Economic Review) मई, 1948, पृ० 287, टिप्पणी 33।

[2]—ए०पी० लर्नर का लेख 'द इसेन्शल प्रॉपर्टीज ऑव इट्रेस्ट ऐण्ड मनि (The Essential Properties of Interest & Money), क्वार्टरली जर्नल ऑव ईकनामिक्स, मई, 1952।

जाता है। किन्तु ब्याज की अल्पकाल दर वही रहती है चाहे द्रव्य के रूप मे व्यक्त की जाये अथवा उदाहरणार्थ गेहू के रूप मे व्यक्त की जाए, क्योकि ब्याज की अल्पकाल दर द्रव्य उधार देने से प्राप्त फीस का ही नाम है। गेहूँ की ब्याज-दर का प्रश्न तभी सामने आता है जब गेहूँ उधार दिया जाता है और इस गेहूँ की उधार दर को द्रव्य के रूप मे या गेहूँ के रूप मे व्यक्त किया जा सकता है। 17वें अध्याय के प्रथम परिच्छेद मे केन्ज ने जो विचार-विमर्श किया है, वह स्पष्ट है और उसकी कोई वास्तविक महत्ता नही है।

ब्याज की निजी दर, अर्थात गृह दर गेहूँ दर, और द्रव्य दर वास्तव मे एक इकाई की सीमान्त कार्य कुशलता है, चाहे वह इकाई एक घर हो, गेहूँ की एक बुशल हो और चाह द्रव्य की एक राशि हो। अब यह बात सामने आती है कि द्रव्य पर ब्याज दर द्रव्य की सीमान्त कार्य कुशलता है, किन्तु यह तो एक विशेष अवस्था है। तथाकथित ब्याज की निजी दर के लिए प्रयुक्त व्यापक शब्द सीमान्त कार्यकुशलता दर है, या सबद्ध पूजीगत परिसपत्ति की वृद्धि मे निवेश से लागत पर प्रतिफल की दर है।

जैसाकि केन्ज यहा पर कहते है (पृ० 225) "प्रत्येक पदार्थ पर प्रतिफलो" से सबद्ध भिन्न-भिन्न मात्राओ मे उपस्थित तीन गुणो पर विचार अवश्य किया जाना चाहिए। कुछ परिसपत्तियाँ उपज q को उत्पन्न करती है, दूसरी परिसपत्तिया वहन लागत c को बिना लगाए नही रखी जा सकती, और यदि कोई निपज है तो उसमे से अवश्य घटा देना चाहिये। अत मे परिसपत्ति "द्रव्य" आता है, जिसकी न कोई उपज है और न ही कोई वहन लागत है, किन्तु जिसका एक महत्वपूर्ण गुण नकदी प्रीमियम l है। मकानो के सम्बन्ध मे c और l उपेक्षणीय है, गेहु के सम्बन्ध मे q और l उपेक्षणीय है, और द्रव्य के सम्बन्ध मे कोई उपज नही है, और वहन लागत उपेक्षणीय है। यदि मकानो और गेहूँ के मूल्य (द्रव्य के रूप मे) कुछ समय तक स्थिर रहे तो इन तीनो मे से प्रत्येक पदार्थो की सीमान्त कार्य कुशलता (इसे r कह लीजिए) को निम्न रूप से कहा जा सकता है (पादाक्षर 1 मकानो के लिए, 2 गेहूँ के लिए और 3 द्रव्य के लिए प्रयुक्त हुए —

मकान $r_1 = q_1$

गेहूँ $r_2 = -c_2$

द्रव्य $r_3 = l_3$

किन्तु द्रव्य के रूप मे किसी परिसपत्ति की सभाव्य प्रत्याशित मूल्य वृद्धि a

(अथवा मूल्य ह्रास—a) का भी अवश्य प्रज्ञान करना चाहिये। इस अवस्था मे प्रत्येक परिसपत्ति की सीमान्त कार्यकुशलता निम्न रूप से लिखी जा सकती है (पृ० 227 228)—

$$\text{मकान} \quad r_1 = a_1 + q_1$$
$$\text{गेहूँ} \quad r_2 = a_2 - c_2$$
$$\text{द्रव्य} \quad r_3 = l_3$$

अब द्रव्य की सीमान्त कार्यकुशलता (अर्थात् ब्याज दर) बहुत ऊँची उठ सकती है, किन्तु एक निश्चित न्यूनतम सीमा से नीचे नही गिर सकती। इसके विपरीत अन्य पदार्थों का जहाँ तक सम्बन्ध है, सीमान्त कार्य-कुशलता पर बहुत ऊँची नही उठ सकती, किन्तु आसानी से शून्य तक गिर सकती है। यह बात ध्यान म रखना आवश्यक है कि द्रव्य की सीमान्त कार्यकुशलता वास्तव मे ब्याज की दर है। अत इससे यह परिणाम निकला कि कुछ अवस्थाओ मे सामान्य रूप से चाहे पूँजी परिसपत्ति की सीमान्त कार्यकुशलता साधारण-सी ऊँची भी हो, नकदी सकट मे ब्याज की दर और भी अधिक बढ जाएगी, जिससे आगे निवेश का लगाया जाना अवरुद्ध हो जायेगा, जबकि अन्य परिस्थितियो मे चाहे ब्याज-दर न्यूतम सीमा पर हो, पूँजीगत परिसपत्ति की सीमान्त कार्यकुशलता इतनी नीचे गिर सकती है कि कोई निवेश लगाना सभव न हो। यह सब बातें ठीक किस प्रकार हैं ?

द्रव्य मे उत्पादन की कम मूल्य सापेक्षता (स्वर्ण मान अवस्थाओ मे) है। अत सभरण की मूल्य निरपेक्षता के कारण द्रव्य की माग मे अधिक वृद्धि, द्रव्य की सीमान्त कार्य कुशलता (अर्थात् ब्याज-दर) को बहुत ऊँचा ले जा सकती है (पृ० 230)। किन्तु जब माग बढती है, तो अधिकाश पूँजीगत परिसपत्ति के सभरण को एक दम बढाया जा सकता है, अत इस प्रकार की परिसपत्ति मे ▪ की वृद्धि रुक जाएगी।

उसी तरह से अधिकाश पूँजी परिसपत्ति की उच्च स्थानापत्ति सीमा (high elasticity of substitution) है। यदि माग के प्रसार के प्रभाव के कारण मूल्य बढ रहा, तो स्थानापन्न वस्तुएँ आ जाती है और सबद्ध परिसपत्ति के मूल्य की वृद्धि को रोक देते हैं। किन्तु द्रव्य के विषय मे स्थानापत्ति सीमा वास्तव मे शून्य होती है। अत द्रव्य की माँग मे तेजी से वृद्धि इसकी सीमान्तकार्य कुशलता (अर्थात् ब्याज दर) को बहुत ऊँचे ले जा सकती है (पृ० 231)।

अन्त मे कुछ विशेष कारण हैं जिनसे ब्याज की दर क्यो अनिश्चित रूप से नहो

गिर सकेगी, चाहे मजदूरी और मूल्यो मे गिरावट के कारण द्रव्य सभरण, द्रव्य श्राय की श्रपेक्षा बढ जाये। नकद मजदूरी दरा मे कमी, श्रौर अधिक कमी की श्राशसा उत्पन्न कर सकती है। इसका सामान्य रूप से पूँजी परिसम्पत्ति की सीमान्त कार्य-कुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव पडेगा। निस्सदेह मजदूरी दरो मे गिरावट लेन-देन क्षेत्र से नकदी मोचन कर देगी श्रौर इस प्रकार से ब्याज दर मे कमी ला सकती है। किन्तु जैसा हम देख चुके है ऐसे प्रभावपूर्ण कारण होते है जिससे "ब्याज की अल्पकाल दर बहुत कम होने से बहुधा रुकी रहेगी' (पृ० 232), चाहे द्रव्य परिमाण मे सापेक्ष वृद्धि भी हो। इसके श्रतिरिक्त नकद मजदूरी की स्थिर रहने (stickiness) के कारण व्यवहार मे ब्याज दर को कम करने का यह विशेष साधन श्रप्रभावी सिद्ध हो सकता है (पृ० 232 233)। श्रत मे चाहे श्राय की श्रपेक्षा द्रव्य सभरण नकद मजदूरी मे गिरावट के कारण बहुत श्रधिक बढ जाये, नकदी तरजीह की श्रनुसूची ब्याज के कम दरो पर उत्तरोतर मूल्य सापेक्ष होती चली जाएगी, जिससे 'परिमाण मे वृद्धि के फलस्वरूप नकदी से प्राप्त द्रव्य श्राय उस सीमा तक नही गिरती है, जिस सीमा तक श्रन्य प्रकार की परिसम्पत्ति से प्राप्त श्राय गिर जाती है, जबकि उनका परिमाण तुलनात्मक दृष्टि से बढ गया हो' (पृ० 233)।

श्रत जबकि उत्पादन मूल्य सापेक्ष हो, द्रव्य की निपज को प्रेरणा दिये बिना 'ब्याज की अल्पकाल दर मे वृद्धि" अन्य पूँजी परिसम्पत्ति की निपज को रोक देती है (पृ० 234)। ब्याज की अल्पकाल दर श्रन्य सब वस्तुश्रो की दरो (पूँजीगत परिसम्पत्ति के सीमान्त कार्यकुशलता दरो) की गति निर्धारण कर देती है (पृ० 235)। द्रव्य, जिसकी उत्पादन श्रौर स्थानापन्न की शून्य श्रथवा बहुत कम सीमाएँ है (पृ० 237)—वह परिसम्पत्ति है, जिसकी सीमान्त कार्यकुशलता (श्रर्थात् नकदी प्रीमियम का ब्याज दर), "जैसे जैसे निपज बढती है, तो पूँजी परिसम्पत्ति की सीमान्त कार्यकुशलता की श्रपेक्षा धीरे धीरे घटती है" (पृ० 237)।

"यह श्राशसा कि नकद मजदूरी सापेक्ष रूप से स्थिर होगी "द्रव्य की नकदी प्रीमियम को बढा देती है' (पृ० 238)। यदि मजदूरी को "मजदूरी पदार्थों के रूप मे" श्रर्थात् उपभोक्ता माल के मूल्य सूचकाक के रूप मे निर्धारित किया जाये (जैसा कि श्राजकल श्रमरीका मे जनरल मोटर्ज के कुछ सविदाश्रो मे होता है), तो इसका "परिणाम यह होगा कि द्रव्य मूल्यो मे एक घोर दोलन घटित हो जाएगा" (पृ० 239)। यह तो नकद मजदूरी की श्रपरिवर्तनशीलता है, जोकि उपभोग-प्रवृत्ति श्रौर निवेश-प्रेरणा के छोटे-मोटे परिवर्तनो को "मूल्यो पर तीव्र प्रभाव उत्पन्न करने से रोक देती है" (पृ० 239)। द्रव्य श्रपनी नकदी के गुण को खो देगा, यदि इसका सभरण बहुत

अधिक बढा दिया जाय। और यदि सापेक्ष रूप से कहा जाए तो इसका सभरण बहुत बढ जाएगा, यदि नकद मजदूरी नीचे की ओर बहुत अधिक नम्य हो (पृ० 241)।

द्रव्य की विचित्रता आवश्यक रूप से इस लक्षण मे सबद्ध है कि इसकी नकदी इसकी वहन लागत की अपेक्षा ऊँची है (पृ० 239)। "कुछ ऐतिहासिक अवस्थाओं मे भूमि की धारण का अर्थ उच्च नकदी प्रीमियम रहा है" (पृ० 241)। इसके अतिरिक्त "भूमि द्रव्य से इस रूप मे समान है कि इसकी उत्पादन और स्थानापत्ति सीमाएँ बहुत नीचे हो सकती हैं" (पृ० 241)। "भूमि को गिरवी रखने से प्राप्त ब्याज की उच्च दरें, बहुधा भूमि को जोतने से प्राप्त सभाव्य निवल उपज से अधिक होना बहुत सी कृषि अर्थ व्यवस्थाओं का पूर्व परिचित लक्षण रहा है (पृ० 241)। गिरवी पर उच्च ब्याज-दर की प्रतियोगिता नवउत्पादित पूंजीगत परिसम्पत्तिया म चालू निवेश से धन की वृद्धि रोकने मे वही प्रभाव होगा जोकि ऊँची ब्याज-दरों का प्रभाव दीर्घकालीन ऋणों पर अभी हाल के समय मे हुआ है।" (पृ० 241)।

केन्ज ने यह युक्ति दी कि पूंजी परिसपत्तियो की कमी ससार मे इसी लिए नही रहती कि उपभोग प्रवृत्ति ऊँची है, बल्कि उन उच्च नकदी प्रीमियम के कारण होती है जोकि "पहिले भूमि के स्वामित्व से प्राप्त होते थे और अब द्रव्य से प्राप्त होते हैं" (पृ० 242)। निश्चय ही यह कहने का एक अति सरल ढग है। निस्सदेह नकदी तरजीह का अपना महत्त्व है, किन्तु उतना ही महत्त्व निवेश माँग कार्य की ब्याज मूल्य निरपेक्षता का है, जिसके कारण पंजी की सीमान्त कार्यकुशलता तेजी से ब्याज की न्यूनतम दर के नीचे तक धकेल दी जाती है। इसलिए इससे पूर्व कि उस पूंजी के स्टाक मे वृद्धि करने की कोई प्रेरणा हो, जोकि पहिले से ही उच्च जीवन स्तर को प्रदान करने के लिए पर्याप्त विशाल है, नवीन औद्योगिकी उन्नति करनी होगी। अन्तिम विश्लेषण मे तो यह औद्योगिकी ही है जो जीवन स्तरो को निर्धारित करती है। पूंजी का वह स्टाक जोकि औद्योगिकी के किसी दिए हुए स्तर के लिए अपेक्षित है, अपेक्षाकृत शिघ्रता से उन्नत देशो मे उपलब्ध हो सकते हैं। इस सम्बन्ध मे पाठक का ध्यान जॉन स्टूअर्ट मिल की पुस्तक 'प्रिंसिपल्ज' (Principles) के चौथ खण्ड के चौथे अध्याय मे दिए गए पाडित्यपूर्ण विश्लेषण की ओर आकृष्ट कराया जाता है।

जैसा कि लर्नर[2] ने दिखलाया है, केन्ज के 17वें अध्याय से यह अत्यन्त महत्त्व-

---

[1]—द्रव्य अपने आप ही तेजी से 'नकदी' के गुण को खो देगा, यदि इस के भावी सभरण में तीव्र परिवर्तनों के आने की आशका हो। (पाद टिप्पणी, पृ० 241)।

[2]—उपर्युक्त, पृ० 191-193।

पुन निष्कर्ष अवश्य निकलता है कि यदि नकद मजदूरी ने अपरिवर्तनशीलता को त्याग दिया तो द्रव्य अपने इस आवश्यक गुण अर्थात् क्रय शक्ति की उचित स्थिरता को खो देगा। यदि नकद मजदूरी नीचे की ओर पूर्णतया नम्य हो तो उससे उत्पन्न द्रुतगामी अवमूल्यन (racing deflation) द्रव्य को इसके अद्वितीय गुण से वंचित कर देगा। प्रगतिशील अवस्फीति अर्थव्यवस्था को वस्तु विनिमय (barter) की ओर ले जायगी। द्रव्य के आवश्यक गुण को एक घोर अवस्फीति द्वारा उतना ही निश्चितता से समाप्त किया जा सकता है जितना कि खगोलीय स्फीति (astronomical inflation) द्वारा। यदि कोई तथाकथित पीगू प्रभाव की वैधता को आंकना चाहता है तो स्पष्टतः यह ऐसी बात है जिसपर गम्भीरता से विचार करना चाहिए। यदि द्रव्य को इसके सबसे अधिक आवश्यक गुणधर्म को बनाए रखना है तो मजदूरी की अपरिवर्तनशीलता और उचित मूल्य स्थिरता आवश्यक है।

अध्याय II

पुनर्कथित रोजगार का सामान्य सिद्धान्त

[जनरल थ्योरी, अध्याय 18]

केन्ज इस अध्याय के प्रारम्भ मे उन तत्वो का उल्लेख करते हैं, जिन्ह वे आर्थिक व्यवस्था मे दिया हुआ मानते हैं। निस्सन्देह इन उपादानो मे परिवर्तन हो सकते हैं, किन्तु उनकी सैद्धान्तिक प्रणाली मे इन परिवर्तनो के प्रभावो पर ध्यान नही दिया जाता। सबसे अधिक महत्वपूर्ण दिए हुए तत्व इस प्रकार है —श्रम और पूँजी उपकरण के गुण और परिणाम, वर्तमान तकनीक, प्रतियोगिता की मात्रा उपभोक्ता रुचि और वह सामाजिक ढाचा जो कि आय के वितरण को प्रभावित करता है।

उनकी प्रणाली मे स्वतन्त्र चर (independent variables) और आश्रित चर (dependent variables) रहते है। स्वतन्त्र चर समाज के व्यवहार प्रकार हैं। ये वे आधारभूत कार्य या सम्बन्ध है जो कि केन्ज के सिद्धान्त मे अर्तनिहित हैं। वे यहाँ पर पूर्ण रूप से इनकी व्याख्या नही करते, पर यदि उनकी पूर्ण पद्धति पर विचार किया जाए तो इनको निम्न प्रकार से लिखना उपयुक्त होगा।

1 उपभोग कार्य
2 निवेश अनुसूची की सीमान्त कार्यकुशलता
3 नकदी तरजीह अनुसूची
4 मुद्राधिकारी द्वारा निर्धारित द्रव्य परिमाण

इन सब चरो को उस मजदूरी इकाई के रूप मे उल्लेख किया गया है, जोकि सौदाकारी द्वारा निर्धारित होती है।

अन्त मे आश्रित चर इस प्रकार हैं—

1 राष्ट्रीय आय और रोजगार की मात्रा
2 ब्याज की दर (पृ० 245)

वास्तव मे केन्ज ब्याज की दर को एक स्वतन्त्र चर मानते हैं (पृ० 245),

किन्त य ठीक नही है। उनकी भूल इस कारण से है कि उन्होने बहुधा—शायद सामान्यतया— याज दर को अनन्य रूप से नकदी तरजीह और द्रव्य परिमाण पर निर्भर माना है। निस्मदेह यहा पर वे उन दो अद्यास्थ कार्यो (अर्थात् नक्दी तरजीह और द्रव्य सभरण जो ब्याज की दर को निश्चित करने वाले समझे जाते है) के स्थान पर ब्याज-दर से एक स्वतन्त्र चर का काय कर लेते है। वास्तव मे ब्याज की दर निर्धारित होती है निर्धारक (determinant) नही। ब्याज की दर और राष्ट्रीय आय पारस्परिक रूप से साथ साथ ऊपर लिखे तीन आधारभूत कार्यो से, जिनकी सूची ऊपर दी गयी है और द्रव्य परिमाण से निर्धारित होती है।

उपभोग अनुसूची का आधार मनोवैज्ञानिक उपभोग प्रवृत्ति है, सीमान्त कार्यकुशलता अनुसची के पीछे पूंजी परिसम्पत्ति से प्राप्त भावी उपज की मनोवैज्ञानिक आशसा है तथा नक्दी अनुसूची के पीछे नकदी के प्रति मनोवैज्ञानिक अभिवृत्ति (भावी ब्याज दरो से सम्बद्ध आशसाएं) है। इन स्वतन्त्र चरो के अतिरिक्त जो कि व्यवहार प्रकारो और आशसाओ मे गडे हुए है, वह द्रव्य परिमाण आता है जो सट्रल बैंक के काय द्वारा निर्धारित होता है, जोकि सस्थानिक व्यवहार प्रकार है (पृ० 246 247)।

अत प्रणाली के **निर्धारक** इस प्रकार है—(1) वे उपादान जोकि दिए हुए मान लिये गए है और (२) ऊपर लिखे गए चार व्यवहार प्रकार इन निर्धारको का इन दो वर्गो (दिये हुए उपादानो और चार व्यवहार प्रकारो) मे विभाजन निस्सदेह कुछ-न कुछ मन माना है और पूणतया अनुभव पर आधारित है। वे उपादान जोकि दिये हुए मान लिए गए है इतने धीरे धीरे परिवर्तित होते है कि उनका अल्पकालिक परिवर्तन उपेक्षणीय हो जाता है। अत स्वतन्त्र चरो और व्यवहार प्रति रूपो मे होने वाले परिवतन वे हैं, जोकि प्रणाली को **मुख्यत** प्रभावित करने वाले माने जाते हैं।

अर्थशास्त्र इतना जटिल विषय है कि इसमे आय और रोजगार के केवल **मुख्य** निर्धारको का ही पता लग सकता है। यह समस्या का सैद्धान्तिक पहलू है। इससे सबन्धित नीति का प्रश्न भी है कि कौन से चार अभीष्ट आर्थिक लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए सामाजिक नियन्त्रण के प्रति प्रभाववश्य हैं (पृ० 247)?

आय का और रोजगार के सभी निर्धारको का सक्षिप्त साराश केन्ज ने 18वें अध्याय के दूसरे परिच्छेद मे दिया है। इस सक्षिप्त नियमन के बाद दो पैरे दिए गये है, जिनपर विशेष ध्यान देना चाहिये क्योकि सामान्यत इनकी उपेक्षा उन आलोचको ने की है, जो यह कहते हैं कि केन्ज ने अपने सैद्धान्तिक उपकरण को अति सरल करके

प्रति अनम्य बना दिया। यहा पर उन्होने सन्तुलन की ही स्थिति पर आय निर्धारण की प्रक्रिया की प्रतिक्रियाओ पर बल दिया है। उनका कहना है कि सभी निर्धारको में परिवर्तन आ सकते हैं और इसलिए घटनाओ का वास्तविक क्रम बहुत जटिल हो सकता है। फिर भी केन्द्रवादी निर्धारक "वे उपादान प्रतीत होने हैं जिन्हे पृथक् करना उपयोगी एव सुविधाजनक होगा" (पृ० 249)। इस अवस्था मे कोई भी सैद्धान्तिक योजना आर्थिक जीवन की समस्त जटिलता को पर्याप्त रूप से ध्यान मे नही रख सकती। अपने इस सिद्धान्त को हमे व्यावहारिक अन्त प्रज्ञा (intuition) से अवश्य ही पूर्ण एव ठीक करना चाहिये, क्योकि इसी प्रकार हम "तथ्यो के अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत जटिलता को ध्यान मे रख सकते है, जितनी की सामान्य सिद्धान्तो से नही की जा सकती" (पृ० 249)। मुख्य चरो को पृथक् करके सामग्री कार्य करने के लिए कम जटिल तथा एक सतुलित निर्णय पर पहुचने के लिए अधिक सरल बन जाती है।

वे कहते हैं कि हम इसे तर्क द्वारा नही, बल्कि अनुभव द्वारा जान सकते हैं कि हम आर्थिक प्रणाली घटती-बढती रहते हुए भी बहुत अधिक अस्थिर नही है। वास्तव मे ऐसा प्रतीत होता है कि यह 'बहुत लम्बे समय तक पुनर्जीवन या पूर्ण समाप्ति की ओर कोई विशेष प्रवृति के बिना, असामान्य क्रिया की दीर्घकालीन अवस्था मे रह सकने योग्य है" (पृ० 249)। पूर्ण रोजगार सन्तुलन की ओर कोई आग्रही झुकाव नही है। सघृत सचित सचलनो का उपर नीचे जाना सामान्यत नही होता। उपरिमुखी और अधोमुखी हलचल (thrusts) शीघ्र ही अपने आपको समाप्त कर लेते हैं और उनका एक दूसरे से उत्क्रमण हो जाता है। कुछ गडबड के पश्चात (जैसा 1950 मे कोरिया के समय हुआ था) मूल्य परिवर्तन "एक ऐसा तल प्राप्त कर लेते हैं, जिसपर कुछ समय के लिए सामान्य स्थिर रह सकते हैं" (पृ० 250)— (फरवरी 1951 के पश्चात सयुक्त राज्य अमरीका मे मूल्यो मे लम्बे समय तक पाई जाने वाली स्थिरता की ओर ध्यान दीजिये।)

"अनुभव पर आधारित तथ्य आवश्यक रूप से तर्क से सिद्ध नही होते"[1] (पृ० 250)। किन्तु वे यह सुझाव देते है कि प्रणाली को स्थिरता की निश्चित अवस्थाओ मे अवश्य क्रियाशील होना चाहिये। एक अवस्था तो यह होगी कि गुणक (सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति के आधार पर) बहुत बडा न हो। दूसरी अवस्था यह है कि भावी

---

[1]—1787 के कांस्टिट्यूशनल कनवेन्शन (Constitutional Convention) के एक सदस्य जॉन डिकिन्सन ने प्रतिनिधियों को अपील करते हुए यह कहा था—"श्रीमन्, अनुभव हमारा पथ प्रदर्शक होना चाहिये; विवेक हमें पथभ्रष्ट कर सकता है।"

निपज अथवा ब्याज दरो मे इस प्रकार के परिवर्तन जोकि वास्तविक रूप से अनुभव किए जाते है, 'निवेश की दर मे बहुत बडे परिवर्तन नही लाते है" (पृ० 250)। तृतीय अवस्था यह है कि रोजगार मे साधारण से परिवर्तन "नकद मजदूरी मे बहुत बडे परिवतन नही लाते' और मूल्य सामान्यत पर्याप्त रूप से स्थिर रहते है (पृ० 251)। चतुथ अवस्था यह है कि जब भी प्रणाली अपना "अतिलघन" कर देती है, तो समयान्तर एक विलोम गति प्रारम्भ हो जाती है। यदि उदाहरणार्थ निवेश अपनी दीघकालीन प्रवृत्ति का अतिलघन कर देता है तो पूजी की सीमान्त कार्यकुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड जाता है।

ऊपर कहे हुए पर यदि प्रत्येक बात पर क्रमश विचार किया जाये, तो केन्ज ऐसा मान लेना उचित समझते है कि गुणक बहुत बडा नही है, क्योकि जैसे असल आय बढती है वतमान आवश्यकताओ का आग्रह अथवा तीव्रता कम हो जाती है और सुस्थापित जीवन स्तर का सीमान्त बढ जाता है (पृ० 251)। जब आय बढती है, तो उपभाग का प्रसार होता है किन्तु 'असल आय की पूर्ण वृद्धि की मात्रा से कम बढता है (पृ० 251)। केन्ज इस मनोवैज्ञानिक नियम" को ठीक समझते है, क्योकि हमारा ज्ञात अनुभव अत्यन्त भिन्न होगा, यदि यह नियम ठीक लागू न हो' (पृ० 251) किन्तु यदि यह ठीक लागू न हुआ, तो निवेश मे वृद्धि एक ऐसे सचीय प्रसार को प्रारम्भ कर देगी जो उस समय तक बढता ही चला जायेगा, जब तक कि पूण रोजगार स्थिति प्राप्त नही हो जाती।

यह उल्लेखनीय है कि जे० आर० हिक्स अपनी पुस्तक ट्रेड साइकल (**Trade Cycle**) म ठीक इसके विपरीत स्थिति को ग्रहण करते है। हिक्स यह मानते हैं कि त्वरक द्वारा सहायता प्राप्त गुणक इतना बडा है कि अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार की उच्चतम सीमा तक पहुचने की ओर प्रवृत्त होगी।

दूसरी बात अर्थात भावी उपज मे काफी बडे परिवर्तन के होते हुए भी निवेश मे मामूली से उच्चावचन के विषय मे केन्ज का सुझाव है कि इसका स्पष्टीकरण स्थिर पूजी उत्पन्न करने वाले उद्योगो की सभरण अवस्थाओ मे पाया जा सकता है। निवेश क्रिया की उच्च दर पूजीगत पदार्थो की उत्पत्ति लागत को बढा देगी और इससे निवेश की सीमान्त कार्यकुशलता कम हो जायेगी।

तीसरी वात अर्थात् मजदूरी गतियो के सबध मे यह है कि अनुभव से पता चलता है कि मजदूरी दर अपेक्षाकृत अपरिवर्तनीय (sticking) होती है। यदि ऐसा न हो, तो बेरोजगार श्रमिको मे प्रतियोगिता "मूल्य स्तर मे" घोर "अस्थिरता' उत्पन्न कर देगी (पृ० 253)। और यदि नकद मजदूरी ऊपर और नीचे

की ओर अत्यन्त नम्य न हो, तो क्या पूर्ण रोजगार शीघ्र ही एक भयकर स्फीति को उत्पन्न नही कर देगा ?

यद्यपि कोई निर्देश नही दिया गया है, तथापि अध्याय की समाप्ति उस व्यवसाय चक्र के संक्षिप्त विश्लेषण से की गई है, जो बहुत कुछ अफ्टेलियन (Aftalion) के सिद्धान्त के शब्दो मे व्यक्त की गई है।[1] केन्ज द्वारा सुझाये गये अर्थमिति नमूने (econometric model) मे आत्म सीमनीय (**self limiting**) उपादान अतग्रंस्त जोकि पूर्ण रोजगार प्राप्त होने से पूर्व ही विपरीत गति उत्पन्न कर देते हैं, और उसी प्रकार ये ही आत्मसीमनीय उपादान मदी के पर्याप्त ऊचे तल को निश्चित कर देते हैं।[2]

---

[1]—देखिये मेरी पुस्तक 'बिजनिस साइकल्ज ऐण्ड नेशनल इन्कम,' प्रकाशक: डब्ल्यू० नॉर्टन डब्ल्यू० ऐण्ट क०, 1951, अध्याय 18।

[2]—देखिये मेरी पुस्तक 'मॉनेटरी थ्योरी ऐण्ड फिस्कल पालिसि', प्रकाशक मैक्ग्राहिल बुक क०, ई० 1949, पृ० 148-150।

यदि आय का पुनर्वितरण मजदूरो के लिये प्रतिकूल रहा, तो यह कार्य को नीचे की ओर लाने मे प्रवृत्त होगा, जबकि द्रव्य परिसम्पत्ति के असल मूल्य म वृद्धि इसे ऊपर की ओर हटाने मे प्रवृत्त होगी।

इस बात का कोई भी प्रमाण नही है कि केन्ज ने पीगू प्रभाव के विषय म कभी सोचा होगा। केवल अस्पष्ट रूप से इसका उल्लेख, गिरते हुए मूल्यो के परिणामो के विषय मे हुए लम्बे विवाद के समय (जनरल थ्योरी के प्रकाशन से पूर्व) हुआ था। अपने बाद के ग्रथो मे पीगू ने मजदूरी और मूल्य मे कटौतियो के विभिन्न परिणामो का कोई विस्तृत विश्लेषण नही किया, बल्कि एकमात्र द्रव्य परिसम्पत्ति के असल मूल्य पर ही ध्यान केन्द्रित किया। एक अधिक सतुलित दृष्टिकोण सभी महत्वपूर्ण उपादानो को ध्यान मे रखते हुए निवल प्रभाव को आँकने का प्रयत्न करेगा। केन्ज ने ऐसा करने का प्रयत्न किया, किन्तु अवश्य ही उन्होने "पीगू प्रभाव पर ध्यान नही दिया। पीगू प्रभाव के विपरीत "केन्ज प्रभाव" (मजदूरी मे कटौतियो के कारण गिरती हुई ब्याज-दर) का बहुधा उल्लेख किया जाता है। पर वास्तव म यह केन्ज के विश्लेषण मे प्रयुक्त अनेक सूत्रो मे से केवल एक को निकाल लेने के समान है।

मजदूरी कटौतियो पर विचार करते हुए हम इन दो बातो के बीच भेद कर सकते हैं—(1) मजदूरी कमी की—चाहे छोटी हो अथवा बडी, चाहे धीरे हो अथवा तेज, आदि—प्रक्रिया के परिणामो (गतिशील विश्लेषण), तथा (2) पूर्ण की हुई मजदूरी कटौती का प्रभाव (स्थैतिक विश्लेषण)। एक अन्य ढग से (1) अल्पकालीन (अथवा चलनीय) प्रभावो पर तथा (2) दीर्घकालीन (अथवा चिरकालिक) प्रभावो पर विचार किया जा सकता है।[1]

---

[1]—यह बहुधा कहा जाता है कि वास्तविक जगत की समस्याओं पर पीगू प्रभाव विश्लेषण को न तो लागू किया जा सकता है, और न किया जाना चाहिए, क्योंकि जिस प्रकार का जगत हम देखते हैं उसमें वे लक्षण विद्यमान नहीं है जो कि विशद्ध सिद्धान्त के सारांशों (abstractions) में मान लिए जाते हैं। पर यदि विश्लेषण वहीं समाप्त हो गया, तो यह मनोरंजक अभ्यास मात्र रह जायगा। हम इस प्रश्न से नहीं बच सकते कि जिस जगत को हम पाते हैं, उस में मजदूरी कटौतियों के क्या प्रभाव होंगे। यह सत्य है कि अल्पकालीन मूल्य और मजदूरी सचलन पर विचार करने से कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि इस अवस्था में प्रतिकूल गतिशील प्रभावों का प्रभुत्व रहता है। किन्तु पीगू द्वारा विचार किए गए स्थैतिक प्रभावों का दीर्घकालीन अथवा चिरकालिक मूल्य और मजदूरी सचलन के विषय में, कोई गम्भीर उल्लघन नहीं होता है। यह इसलिए सत्य है क्योंकि धीरे चलने वाली चिरकालिक प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बात परिवर्तन की गति नहीं है, बल्कि यह तथ्य है कि मूल्य एक निम्न स्तर पर स्थिर हो गए हैं।

इस कारण है कि जब किसी स्थिर (या शायद धीरे धीरे घटते हुए) मूल्य स्तर की अवस्था की तुलना म व्यावसायिक लाभो पर मूल्यो मे चिरकालिक अधोमुखी प्रवृत्ति के प्रतिकूल प्रभाव के कारण उनकी रोजगार स्थिति और खराब हो सकती है। सम्भवत यह कहना उचित होगा कि इस कारण और अन्य कारणो से अर्थ शास्त्री अधिकतर इस बात पर सहमत हैं कि मूल्यो मे दीर्घकालीन अधोमुखी प्रवृति की अपेक्षा स्थिर मूल्य स्तर अच्छा रहेगा।

अन्त मे, पीगू प्रभाव विश्लेषण इस बात को अत्यधिक आसानी से मान लेता है कि हमे इस बात का निश्चित ज्ञान है कि किस प्रकार द्रव्य परिसम्पत्ति के प्रसर मूल्य मे वृद्धि बचत प्रवृत्ति को प्रभावित करती है। पर वास्तव म इसके विषय म हमे बहुत कम ज्ञान है। उस सहज पूर्व धारणा के विपरीत म जो सामान्यतया मान ली जाती है, हम उस परीक्षित उक्ति को प्रस्तुत कर सकने है, जो कि कम से कम उतनी ही स्वीकार्य है कि थोडी-सी भी बचत करने की इच्छा को और तज कर देती है। इस छोटी-सी लोकोक्ति को कन्ज्यूमर सर्वे इन्स्टिट्यूट[1] के इस निष्कर्ष से बल मिलता है कि अपेक्षाकृत कम आय वाले प्रत्येक समूह म से तुलनात्मक दृष्टि से बहुत कम सख्या के पास परिसम्पत्ति की कोई पर्याप्त मात्रा होती है। व व्यक्ति जो धन बचाते है, सख्या मे बहुत ही कम होते हैं। वे ठीक उस प्रकार के व्यक्ति हैं, जैसे ही उनकी तरल (Liquid) परिसम्पत्ति का भारी ढेर बढ जायगा, वैसे ही उनम बचत करने की भूख बढती जायेगी। और अन्त मे पीगू प्रभाव को मात्रानुसार आका जाना चाहिये।

हमे यह जानना होगा कि द्रव्य परिसम्पत्ति का वितरण किस प्रकार हुआ है तथा क्या अनेक उपभोक्ताओ—मान लीजिए 80 प्रतिशत—क पास जो रकम है, उसकी मात्रा प्रभाव डालने के लिए पर्याप्त है। यहाँ यह मान लेना होगा कि प्रवृत्ति उसी दिशा मे काम कर रही है, जिसे हम सामान्य रूप से मान लत है। एक विशुद्ध सिद्धान्त के रूप मे भी यह प्रवृत्ति को प्रकट करने के लिये पर्याप्त नही है और साथ मे यह भी आवश्यक है कि प्रवृत्ति की दृढ़ता अथवा दुर्बलता को आका जाये।[2]

---

[1]—देखिये सर्वे आव कन्ज्यूमर फाइनेन्सेस (Survey of Consumer Finances) जो कि फेडरल रिजर्व बुलेटिन (Federal Reserve Bulletin) में समय-समय पर प्रकाशित हुए थे।

[2]—मंदी और बेरोजगारी के काल में (और ऐसे समय में भी जब लाभ का कमी हो, जैसे युद्ध से विध्वंसित देशों में), द्रव्य परिसम्पत्ति की व्यापक निधियों का निश्चित रूप से विस्तारवादी (और स्फीतिकारक) प्रभाव होंगे।

अध्याय 10

नकद मजदूरी का कार्य

[जनरल थ्योरी, अध्याय 19]

अब तक के लिखे अध्यायो मे यत्र-तत्र नकद मजदूरी के विषय मे और नकद मजदूरी की नम्यता या अनम्यता—जैसी भी स्थिति हो—के कार्य के विषय मे बहुत कुछ कहा जा चुका है। क्योकि विषय आगे बढ चुका है, इस लिये यह और अधिक आवश्यक हो गया है कि जितना प्रारम्भ मे, जबकि केन्जवादी प्रणाली मे अन्तर्निहित आधारभूत कार्यात्मिक सम्बन्धो का पर्याप्त रूप से नियमन नही हुआ था सम्भव था उसकी अपेक्षा अब इस विषय का अधिक गहन अध्ययन किया जाये। यह अध्ययन इसलिय और भी अधिक आवश्यक था, क्योकि सस्थापित सिद्धान्त (विशेषकर पीगू के नेतृत्व मे) यह स्वीकार करता चला आया था कि मजदूरी दर तरलता (Fluidity) आर्थिक प्रणाली को इस प्रकार की स्वत समजन प्रक्रिया प्रदान करती थी जो सदैव ही पूर्ण रोजगार की ओर प्रवृत्त होती थी। यह कहा जाता था कि मजदूरी अनम्यता ही वर्तमान कुसमजन का कारण है। केन्ज ने यह स्वीकार नही किया। यद्यपि जैसा हम देखेंगे, केन्ज यह मानने के लिये तैयार थे कि यदि एक बार मजदूरी और मूल्यो म गिरावट आ जाये तो यह कुछ अवस्थाओ मे बढते हुए रोजगार को प्रोत्साहन देगी। सभी प्रतिकूल अल्पकालीन गतिशील प्रभावो से हटकर विशुद्ध सिद्धान्त मे यह कहा जा सकता था कि मजदूरी और मूल्यो मे गिरावट के वही मौद्रिक परिणाम निकलेंगे, जो द्रव्य के परिमाण मे एक दम वृद्धि के फलस्वरूप निकलते हैं।

किन्तु सर्वप्रथम कुछ प्रारम्भिक बातो पर ध्यान देना आवश्यक है। किसी भी विशेष फर्म या उद्योग मे यदि नकद मजदूरी दरो मे कमी की जाये, तो इसका रोजगार पर निश्चय ही अनुकूल प्रभाव पडेगा। इसमे कोई भी सन्देह नही कर सकता। और इस का कारण यह है कि नकद मजदूरी दरो मे कटौती से लागत घट जाती है, जबकि दूसरी ओर फर्म अथवा उद्योग की उत्पत्ति की माग म नाममात्र या बिल्कुल ही परिवर्तन नही होगा। किन्तु यदि सभी ओर नकद मजदूरी दरो को कम

किया जाये, तो क्या परिणाम निकलेगा ? क्या इसका प्रभाव समस्त माग पर नही पडेगा ? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। क्या समस्त माग नकद मजदूरी दरो मे गिरावट के समरूप गिर जायेगी ? और यदि ऐसा है तो क्या रोजगार पर इसका प्रभाव पूर्ण तथा तटस्थ नही होगा ?

समस्त माग, नकद मजदूरी दरो मे गिरावट के साथ उसी अनुपात मे गिर जायेगी अथवा नही, यह आशिक रूप से इस बात पर आश्रित है कि बिना मजदूरी वाले वर्गों के साथ क्या होता है ? उत्पादन के अन्य कारको के स्थान पर कम मजदूरी वाले श्रमिकों के प्रतिस्थापन की जितनी अधिक सभावना होगी, उतनी ही अधिक मजदूरी गिरावटें अमजदूरी द्रव्य आयो को नकद मजदूरी के समरूप नीचे लाने को प्रवृत्त होंगी ।[1] यदि ऐसा होता है तो इस का प्रभाव यह होगा कि नकद मजदूरी जिस अनुपात मे घटेगी, उसी अनुपात मे समस्त माग भी घट जायेगी। फिर भी यह मान लीजिये कि अमजदूरी आयो मे गिरावट नही आती। तब भी, यदि मूल्यो मे गिरावट के कारण यह वर्ग केवल अपने पहले उपभोग स्तरो को बनाये रखना पसन्द करते है, तो मूल्यो मे कोई भी कमी (मजदूरी मे गिरावटो के कारण) अश्रम जीविको के समस्त द्रव्य व्यय मे अनुपातिक गिरावट लाने को प्रेरित करेगी। इस अवस्था मे मूल्य और समस्त माग दोनो ही नकद मजदूरी मे गिरावट के अनुपात मे कम होने की ओर प्रवृत्त होगे।[2]

मजदूरी दर, समस्त परिव्यय, तथा रोजगार अन्योन्याश्रित सम्मिश्र है, जिन पर समग्र रूप से विचार किया जाना चाहिए। यह नही माना जा सकता कि समस्त द्रव्य परिव्यय मजदूरी दर से कोई सम्बन्ध नही रखता। जैसा हम देख चुके हैं, मजदूरी दर मे कमी द्राव्यिक आय तथा कुल परिव्यय मे समानुपातिक कमी ले आयेगी। पीगू[3] ने इस मत को स्वीकार किया है किन्तु उसी विशेष अवस्था मे, जिसमे कि द्राविक ब्याज-दर को जब भी इस पर नकद मजदूरी दरो द्वारा अधोमुखी दबाव डाला जाता है कि गिरने से रोक लिया जाता है। यही विशेष अवस्था तथाकथित केन्जवादी अवस्था है, जिसमे ब्याज-दर के सबध मे नकदी तरजीह अनुसूची बहुत

1—देखिये पृ० 266, जहा केन्ज ने "गिरती हुई मजदूरी इकाई की प्रतिकिया में सीमात मूल लागत के अन्य तत्वों" की ओर सकेत किया है।

2—देखिये ए०सी० पीगू का लेख 'थ्योरी आव अनइम्पलायमेंट" की हेरड (Harrod) द्वारा ईकनॉमिक जर्नल के मार्च 1934 के अक में प्रकाशित सुन्दर समीक्षा।

3—देखिये ए० सी० पीगू कृत एजएडा, अगस्त 1944 और लेप्सन फ्रॉम फुल इम्पलायमेंट (Lapses from full employment), मैकमिलन ऐण्ड क०, ई० 1945।

अधिक मूल्य सापेक्ष होती है, जिससे लेन देन के क्षेत्र से परिसम्पत्ति क्षेत्र म द्रव्य का कोई भी समोचन ब्याज-दर को बहुत अधिक गिराने मे असमथ है।

केन्ज को मजदूरी के कम करने तथा उसका रोजगार पर प्रभाव की समस्या का कोई सरल-सा समाधान नही मिल सका। उनका विश्लेषण व्यावहारिक (Pragmatic) है और अनिश्चितता (Agnostic) की स्थिति की ओर ले जाता है। कुछ परिस्थितियो मे तो प्रभाव अनुकूल होगा, जबकि अन्य परिस्थितियो मे अनुकूल नही होगा। हम तो केवल यही कर सकते है कि अपने विश्लेषण को विभिन्न कल्पित अवस्थाओ पर लागू कर दे।

19वें अध्याय के दूसरे खण्ड मे केन्ज ने इस समस्या पर आय और रोजगार परिवर्तनो के विश्लेषण की अपनी विशेष विधि के रूप म विचार किया। तदनुसार वे यह जानना चाहते थे कि क्या मजदूरी म कमिया उपभोग प्रवृत्ति, पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता की अनुसूची और ब्याज दर (जिसके अन्तगत उन्होने यहाँ और अन्यत्र नकदी तरजीह अनुसूची और द्रव्य मात्रा को सम्मिलित किया है) मे परिवतन ले आएँगी या नही।

अब इन अनुसूचियो मे आशसाओ म, परिवर्तन के कारण, सदा हटाव हो सकत हैं। आशसाओ पर मजदूरी मे कमियो का क्या प्रभाव होगा (पृ० 261)? उद्यमकर्ता अपेक्षाकृत कम लागत की आशसा करगे और कुछ समय के लिये वे वह चहु और मजदूरी कटौती के कारण जो समस्त माग घट सकती है, उस पर ध्यान न दें। अन व अपने परिचालनो (operations) मे विस्तार कर सकते है। पर क्या वे बढी हुई निपज को वेच सकेंगे अथवा इस निरतर वर्द्धमान माल का ढेर ही लगता चला जायेगा? दीर्घकाल मे अपेक्षाकृत अधिक निपज और रोजगार को बनाये रखा जा सकता है, पर केवल उसी दशा मे जबकि समस्त माग बढ गई हो, अर्थात् यदि अपेक्षाकृत अधिक निवेश व्ययो को सधृत रखा जा सके, या यदि उपभोग प्रवृत्ति बढ गई हो अपेक्षाकृत अधिक निवेश व्याय को तभी कायम रखा जा सकता है, यदि पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता बढ गई हो या ब्याज दर घट गई हो। क्या मजदूरी मे कमिया इस प्रकार का परिवर्त्तन ला देगी (पृ० 262)?

1—मजदूरी मे कमियो का यह प्रभाव हो सकता है कि आय का पुनर्वितरण हो। मजदूरी आय किरायाजीवी (Rentier) आय की अपेक्षा अधिक गिरेगी। किन्तु उद्यमकर्त्ताओ को भी कुछ न कुछ किरायाजीवी वर्ग को देना पड़ेगा। यह निवल प्रभाव समस्यात्मक है, किन्तु दोनो की तुलना करने पर मजदूरी मे कमियो

के परिणामस्वरूप आय का वितरण अपेक्षाकृत अधिक विषम हो सकता है। श्रमजीवियों से दूसरे वर्गों को किया जाने वाला आय का हस्तातरण "उपभोग प्रवृति को कम कर सकता है (पृ० 262)। इसका निबल परिणाम समस्त माग के प्रति "अनुकूल होने की अपेक्षा अधिक प्रतिकुल हो सकता" है।[1]

2—किसी खुली प्रणाली में मजदूरी कमियो का प्रभाव रोजगार के लिये अनुकूल होगा क्योंकि मजदूरी काटने वाले देशो की निर्यात (export) स्थिति अन्य देशों की अपेक्षा अधिक अनुकूल होगी, यदि वह देश भी मजदूरी मे कटौती नही करते।

3—किसी खुली पद्धति मे मजदूरी कटौतिया (अपेक्षाकृत कम निर्यात मूल्यो की ओर ले जाने वाली) व्यापार शर्तो पर बुरा प्रभाव डालेगी (पृ० 262)। इससे वास्तविक आय मे कमी आ सकती है। अपेक्षाकृत कम असल आय पर उपभोग का अनुपात आय के अनुपात से निस्सन्देह बढ सकता है, किन्तु इससे यह सिद्ध नही होगा—जैसा कि केन्ज ने किया है—कि उपभोग प्रवृत्ति बढ जायेगी।

4—यदि वाद मे मजदूरी कटौती अपेक्षाकृत ऊंची मजदूरी दरो की आशाओं की ओर ले जाता है, तो आशाओं पर निबल प्रभाव अनुकूल होगा। पर यदि यह माना जाये कि मजदूरी दर और भी नीचे गिर जायेगी, तो प्रभाव प्रतिकूल होगा।

5—अपेक्षाकृत कम मजदूरिया द्रव्य लेन-देन की समस्त मात्रा को कम कर देंगी और इस प्रकार लेन-देन के क्षेत्र से परिसम्पत्ति क्षेत्र मे द्रव्य का मोचन कर दगी। सट्टा प्रयोजन के लिए यदि अधिक द्रव्य उपलब्ध है, तो इसका यह अर्थ होगा कि हम 'विशुद्ध नकदी तरजीह अनुसूची L' पर नीचे ऊपर आएंगे और इस कारण ब्याज दर भी गिरने की ओर प्रवृत्त होगी। यदि हम निवेश माग अनुसूची को उचित मात्रा म ब्याज मूल्य सापक्ष मान ले तो अपेक्षाकृत कम ब्याज दर निवेश के लिए अनुकूल होगी। किन्तु यदि मजदूरी दर मे कमी राजनीतिक और सामाजिक अशान्ति उत्पन्न कर दे, तो इसका प्रभाव यह हो सकता है कि व्यवसाय आशाएँ प्रतिकूल हो जाएंगी, जिनसे निवेश माग अनसूची मे अधोमुखी विचलन हो जायेगा और विशुद्ध नकदी तरजीह अनुसूची मे उत्क्षेप विचलन हो जायेगा। अत प्रभाव

---

[1]—उपभोग प्रवृत्ति को कम करने की ओर प्रवृत्त, आय वितरण पर मजदूरी कटौतियों का प्रतिकूल प्रभाव, द्रव्य परिसम्पत्ति के असल मूल्य में वृद्धि अर्थात् उत्पन्न किये हुए किसी भी अनुकूल प्रभाव को अच्छी प्रकार बराबर कर सकता है—"पीगू प्रभाव"।

भी परिस्थितियों के अनुसार बदल जायेगा और जहाँ तक विशुद्ध सिद्धान्त का संबध है, हमे यह कहना पडेगा कि किसी निश्चयात्मक परिणाम पर नही पहुँचा जा सकता।

6—श्रम मनोविज्ञान विशेष रूप से महत्वपूर्ण होता है। श्रम सकट अनुकूल आशाओ को समाप्त कर सकता है। श्रमिको का प्रत्येक वर्ग इसको अपने हित मे समझेगा कि वह मजदूरी मे कटौती का विरोध करे। 'बढ़ते हुए मूल्यों के परिणाम-स्वरूप असली मजदूरी का धीरे धीरे और स्वत ही कम होने की अपेक्षा नकदी मजदूरी दरो मे कटौती श्रमिको को कही अधिक उत्तेजित कर देती है (पृ० 264)।

7—किसी भी प्रकार की अनुकूल व्यावसायिक आशाए निवेश पर सार्वजनिक तथा निजी दोनो ही के अपेक्षाकृत अधिक ऋण भार के अवसादी प्रभाव द्वारा कम अधिक मात्रा मे समाप्त हो जायेगी।

यदि थोडी देर के लिये रोजगार पर मजदूरी दरो मे कमी के सभाव्य (अथवा संदिग्ध) प्रतिकूल प्रभावो को छोड दिया जाये, तो केन्ज को यह स्पष्ट रूप से प्रतीत था कि किन्ही निश्चित परिस्थितियों मे (1) पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता पर तथा (2) ब्याज की दर पर सभाव्य अनुकूल प्रभावो के रूप मे अत्यन्त आशाजनक परिणामो को प्राप्त करने की आशा की जानी चाहिये।

यह मान लीजिये कि मजदूरी दर पहिले कम कर दी गई है और आगे उसमे कोई कटौती नही की जायेगी, जिससे कि कोई भी आशसित परिवर्तन ऊपर की ओर होंगे। यह सबसे अधिक अनुकूल अवस्था होगी। व्यावसायिक आशाओं के लिये सबसे बुरी सभाव्य अवस्था मजदूरी दरो की धीरे धीरे घटाव की अवस्था होगी (पृ० 265)। यदि "आधुनिक" जगत की वास्तविक प्रथाओ और सस्थाओ पर ध्यान दिया जाये, तो व्यावसायिक आशाओ पर एक नम्य नीति की अपेक्षा (जिसके कारण जैसे बेरोजगारी बढेगी, मजदूरी 'धीरे-धीरे' घटती जायेगी) स्थिर मजदूरी नीति का अधिक अनुकूल प्रभाव पडने की सम्भावना है।

केन्ज इस निष्कर्ष पर पहुचे कि "जो लोग आर्थिक पद्धति के स्वत समजन गुण मे विश्वास करते हैं, उन्हे अपनी युक्ति" को "द्रव्य की माग पर गिरते हुए मजदूरी तथा मूल्य स्तर" के प्रभाव पर स्थापित करना चाहिए (पृ० 266)। सैद्धान्तिक रूप से "जबकि द्रव्य की मात्रा मे कोई भी परिवर्तन न हो" तो हम "मजदूरी को घटा कर ब्याज की दर पर ठीक उन्ही प्रभावो को ला सकते हैं, जोकि मजदूरी के स्तर को बिना बदले द्रव्य की मात्रा को बढा कर लाये जा सकते हैं" (पृ० 266)।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि मजदूरी को कम करने से पूर्ण रोजगार आवश्यक रूप से इतना अधिक प्राप्त नहीं हो जायेगा, जितना कि द्रव्य के परिमाण में वृद्धि से पूर्ण रोजगार प्राप्त हो सकता है। यह सब कुछ नकदी तरजीह अनुसूची की ब्याज नम्यता तथा निवेश मांग अनुसूची की ब्याज नम्यता पर आश्रित है। यदि पहली बहुत अधिक नम्य और बाद वाली बहुत अधिक अनम्य हो, तो द्रव्य के परिमाण में वृद्धि करने से वास्तव में कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। द्रव्य के परिमाण में सामान्य वृद्धि अपर्याप्त हो सकती है जबकि असामान्य वृद्धि विश्वास को समाप्त कर सकती है। यही बात मजदूरी दरों में सामान्य और असामान्य ह्रासों पर लागू होती है (पृ० 266 267)। केन्ज ने इस विश्लेषण को इस दृढ़ कथन से समाप्त किया कि नम्य मजदूरी नीति निरन्तर पूर्ण रोजगार को स्थिर रखने में असमर्थ है। 'केवल इस आधार पर आर्थिक पद्धति को स्वतः समजनकारी नहीं बनाया जा सकता' (पृ० 267)।

यद्यपि मजदूरी नीति और मुद्रा नीति वैश्लेषिक रूप में एक ही परिणाम पर पहुँचती हैं, फिर भी व्यवहार में दोनों में 'आकाश-पाताल का अन्तर" है (पृ० 267)।[1] केवल मूर्ख ही 'नम्य मुद्रा नीति की अपेक्षा नम्य मजदूरी नीति" को पसन्द करेगा (पृ० 268)।

नम्य मजदूरी नीति का मुख्य परिणाम यह होगा कि "मूल्यों में महान् अस्थिरता आ जायेगी। और वह हमारे जैसे समाज में 'सम्भवतः इस प्रकार की भयंकर अस्थिरता हो सकती है कि वह व्यावसायिक गणना को व्यर्थ कर दे'। एक वास्तविक नम्य मजदूरी नीति स्वतन्त्र मूल्य-पद्धति को बेकार बना देगी। इस प्रकार की पद्धति को सुचारू ढंग से चलने के लिये मुद्रा इकाई के पर्याप्त स्थिर मूल्य की अपेक्षा है, और मजदूरी स्थिरता, मुद्रा स्थिरता के लिये आवश्यक है (पृ० 269 271)।

तथाकथित पीगू प्रभाव के विषय में कुछ अवश्य कहा जाना चाहिये, क्योंकि केन्ज ने रोजगार पर मजदूरी कटौतियों के सम्भाव्य प्रभावों के उपार्जन में पूर्ण उपेक्षा कर दी थी। उन्होंने इस सम्भावना पर अवश्य विचार किया था कि मजदूरी कटौतियाँ उपभोग-प्रवृत्ति को बदल सकती हैं। किन्तु केन्ज ऐसा समझते थे कि उपभोग कार्य में हटाव, मजदूरी कटौतियों के परिणामस्वरूप आय के वितरण में परिवर्तनों से आता है। किन्तु पीगू का ऐसा मत था कि हटाव नकद मजदूरी और मूल्यों में गिरावट के परिणामस्वरूप द्रव्य परिसम्पत्ति की असल मूल्य में वृद्धि से आता है।

1—इन बातों पर जनरल थ्योरी के 267 269 पृष्ठों में विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला गया है।

यदि आय का पुनर्वितरण मजदूरो के लिये प्रतिकूल रहा, तो यह कार्य को नीचे की ओर लाने मे प्रवृत्त होगा, जबकि द्रव्य परिसम्पत्ति के असल मूल्य म वृद्धि इसे ऊपर की ओर हटाने मे प्रवृत्त होगी।

इस बात का कोई भी प्रमाण नही है कि केन्ज ने पीगू प्रभाव के विषय म कभी सोचा होगा। केवल अस्पष्ट रुप से इसका उल्लेख, गिरत हुए मूल्यो के परिणामो के विषय मे हुए लम्बे विवाद के समय (जनरल थ्योरी के प्रकाशन से पूर्व) हुआ था। अपने बाद के ग्रथो मे पीगू ने मजदूरी और मूल्य मे कटौतियो के विभिन्न परिणामो का कोई विस्तृत विश्लेषण नही किया, बल्कि एकमात्र द्रव्य परिसम्पत्ति के असल मूल्य पर ही ध्यान केन्द्रित किया। एक अधिक सतुलित दृष्टिकोण सभी महत्वपूर्ण उपादानो को ध्यान मे रखते हुए निवल प्रभाव को आँकने का प्रयत्न करेगा। केन्ज ने ऐसा करने का प्रयत्न किया, किन्तु अवश्य ही उन्होने "पीगू प्रभाव पर ध्यान नही दिया। पीगू प्रभाव के विपरीत "केन्ज प्रभाव" (मजदूरी मे कटौतियो के कारण गिरती हुई ब्याज-दर) का बहुधा उल्लेख किया जाता है। पर वास्तव म यह केन्ज के विश्लेषण मे प्रयुक्त अनेक सूत्रो मे से केवल एक को निकाल लेने के समान है।

मजदूरी कटौतियो पर विचार करते हुए हम इन दो बातो के बीच भेद कर सकते हैं—(1) मजदूरी कमी की—चाहे छोटी हो अथवा बडी, चाह धीरे हो अथवा तेज, आदि—प्रक्रिया के परिणामो (गतिशील विश्लेषण), तथा (2) पूर्ण की हुई मजदूरी कटौती का प्रभाव (स्थैतिक विश्लेषण)। एक अन्य ढग से (1) अल्पकालीन (अथवा चलीय) प्रभावो पर तथा (2) दीर्घकालीन (अथवा चिरकालिक) प्रभावो पर विचार किया जा सकता है।[1]

---

[1]—यह बहुधा कहा जाता है कि वास्तविक जगत की समस्याओं पर पीगू प्रभाव विश्लेषण को न तो लागू किया जा सकता है, और न किया जाना चाहिए, क्योंकि जिस प्रकार का जगत हम देखते हैं उसमें वे लक्षण विद्यमान नहीं है जो कि विशुद्ध सिद्धान्त के निराशों (abstractions) में मान लिए जाते हैं। पर यदि विश्लेषण वहीं समाप्त हो गया, तो यह मनोरंजक अभ्यास मात्र रह जायगा। हम इस प्रश्न से नहीं बच सकते कि जिस जगत को हम पाते हैं, उस में मजदूरी कटौतियों के क्या प्रभाव होंगे। यह सत्य है कि अल्पकालीन मूल्य और मजदूरी सचलन पर विचार करने से कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि इस अवस्था में प्रतिकूल गतिशील प्रभावों का प्रभुत्व रहता है। किन्तु पीगू द्वारा विचार किए गए स्थैतिक सम्बंधों का दीर्घकालीन अथवा चिर-कालिक मूल्य और मजदूरी सचलन के विषय में, कोई गम्भीर उल्लघन नहीं होता है। यह इस-लिए सत्य है क्योंकि धीरे चलने वाली चिरकालिक प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बात परि-वर्तन की गति नहीं है, बल्कि यह तथ्य है कि मूल्य एक निम्न स्तर पर स्थिर हो गए हैं।

उन चक्रीय प्रभावो को लीजिए, जिन पर स्थैतिक विश्लेषण के रूप मे विचार हुआ है। जब मजदूरी लागतो मे कटौती पूरी हो चुकी हो, तो क्या द्रव्य परिसम्पत्ति का अपेक्षाकृत अधिक असल मूल्य उपभोग कार्य को बढा देगा, जिससे कि पूर्ण रोजगार निश्चित हो सकता है, यदि यह मान लिया जाये कि अन्य विस्तारवादी उपादान कमजोर पड गये है ? इसका उत्तर नकारात्मक प्रतीत होता है, क्योकि जैसे ही उपलब्धि बढती जायेगी, वैसे ही मूल्य बढने प्रारम्भ हो जायेंगे। और इसीलिये द्रव्य परिसम्पति का असल मूल्य उत्तरोत्तर घटता जायेगा। सबलन (reinforcing) उपादान की बजाय, असल परिसम्पत्ति प्रभाव—जोकि अर्थव्यवस्थापूर्ण जरोगार की ओर ले जाता है—लुप्त होना प्रारम्भ हो जाता है, जैसे ही एक बार भी चक्र मे अपेक्षाकृत निम्न परावर्तन बिन्दु (turning-point) प्राप्त हो जाता है। यह बात ध्यान देने की है कि यहा पर विश्लेषण ठीक स्थैतिक विश्लेषण (एक उच्च स्तर का साराश) के रूप मे किया गया है न कि अल्पकालीन आघसाओ के गतिशील प्रभावो के रूप मे। यह अमेरिका मे 1936 से 1940 की जैसी स्थिति पर लागू होता है, जबकि मूल्य गिर गये थे और अपेक्षाकृत निम्न स्तर पर स्थिर हो गये थे।

यदि इस समस्या पर दीर्घकालीन दृष्टिकोण से विचार किया जाये तो पीगू प्रभाव सम्भवत प्रत्येक अनुवर्ती मन्दी को थोडा-सा दबाने का प्रयत्न करेगा। अत यह युक्ति दी जा सकती है कि प्रत्येक अनुवर्ती चक्र का एक ऊँचा तला होगा। किन्तु पूर्ण रोजगार प्राप्त करने के लिये यह कोई बहुत अधिक विश्वसनीय निश्चयात्मक शक्ति प्रतीत नही होती।

पीगू प्रभाव विश्लेषण को स्थिर मल्यो के सापेक्ष गुणो की पुरानी सभ्यता के विरुद्ध मूल्यो मे दीर्घकालीन अधोमुखी प्रवृत्ति के साथ जोड देना चाहिए, क्योकि आवश्यक रूप से यह उसी परिणाम पर पहुचता है। यदि मूल्यो की दीर्घकालीन प्रवृत्ति अधोमुखी है तो द्रव्य परिसम्पत्तियो का असल मूल्य बढ जायेगा। इसे या तो नकद मजदूरी को स्थिर रखकर (उस समाज मे जिसमे प्रति मनुष्य घण्टा उत्पादकता बढ रही हो) हल्के रूप मे या मजदूरी कमिया करके प्रबल रूप मे प्राप्त किया जा सकता है। मूल्यो की दीर्घकालिक अधोमुखी प्रवृत्ति मे, द्रव्य परिसम्पत्ति का असल मूल्य बढता चला जायेगा, और इसलिए धीरे-धीरे पीगू प्रभाव जड पकडता जायेगा। निस्सदेह किरायाजीवी वर्ग द्रव्य परिसम्पत्तियो के असल मूल्यो मे वृद्धि अनुभव करेगे, किन्तु उद्यमकर्त्ताओ पर प्रतिकूल प्रभाव पडेगा, और यह भी विश्वास करना कठिन है कि यदि सतुलन किया जाये तो तीस या चालीस वर्ष तक मूल्यो मे गिरावट के उपरान्त उपभोक्ता अपने आप को अपेक्षाकृत धनी पायेंगे। और यह कम से कम आशिक रूप मे

इस कारण है कि जब किसी स्थिर (या शायद धीरे धीरे बढ़ते हुए) मूल्य स्तर की अवस्था की तुलना में व्यावसायिक लाभो पर मूल्यो मे चिरकालिक अधोमुखी प्रवृत्ति के प्रतिकूल प्रभाव के कारण उनकी रोजगार स्थिति और खराब हो सकती है। सम्भवत यह कहना उचित होगा कि इस कारण और अन्य कारणो से अर्थ शास्त्री अधिकतर इस बात पर सहमत हैं कि मूल्यो मे दीर्घकालीन अधोमुखी प्रवृति की अपेक्षा स्थिर मूल्य स्तर अच्छा रहेगा।

अन्त मे, पीगू प्रभाव विश्लेषण इस बात को अत्यधिक आसानी से मान लेता है कि हमे इस बात का निश्चित ज्ञान है कि किस प्रकार द्रव्य परिसम्पत्ति के प्रसर मूल्य मे वृद्धि बचत प्रवृत्ति को प्रभावित करती है। पर वास्तव में इसके विषय में हमे बहुत कम ज्ञान है। उस सहज पूर्व धारणा के विपरीत में जो सामान्यतया मान ली जाती है, हम उस परीक्षित उक्ति को प्रस्तुत कर सकते है, जो कि कम से कम उतनी ही स्वीकार्य है कि थोडी-सी भी बचत करने की इच्छा को और तेज कर देती है। इस छोटी-सी लोकोक्ति को कन्ज्यूमर सर्वे इन्स्टिट्यूट[1] के इस निष्कर्ष से बल मिलता है कि अपेक्षाकृत कम आय वाले प्रत्येक समूह में से तुलनात्मक दृष्टि से बहुत कम सख्या के पास परिसम्पत्ति की कोई पर्याप्त मात्रा होती है। वे व्यक्ति जो धन बचाते है, सख्या मे बहुत ही कम होते हैं। वे ठीक उस प्रकार के व्यक्ति हैं, जैसे ही उनकी तरल (Liquid) परिसम्पत्ति का भारी ढेर बढ जायगा, वैसे ही उनमे बचत करने की भूख बढती जायेगी। और अन्त मे पीगू प्रभाव को मात्रानुसार आका जाना चाहिये।

हमे यह जानना होगा कि द्रव्य परिसम्पत्ति का वितरण किस प्रकार हुआ है तथा क्या अनेक उपभोक्ताओ—मान लीजिए 80 प्रतिशत—के पास जो रकम है, उसकी मात्रा प्रभाव डालने के लिए पर्याप्त है। यहाँ यह मान लेना होगा कि प्रवृत्ति उसी दिशा मे काम कर रही है, जिसे हम सामान्य रूप से मान लेते है। एक विशुद्ध सिद्धान्त के रूप मे भी यह प्रवृत्ति को प्रकट करने के लिये पर्याप्त नहीं है और साथ मे यह भी आवश्यक है कि प्रवृत्ति की दृढता अथवा दुर्बलता को आका जाये।[2]

---

[1]—देखिये सर्वे आव कन्ज्यूमर फाइनेन्सेज (Survey of Consumer Finances) जो कि फेडरल रिजर्व बुलेटिन (Federal Reserve Bulletin) में समय-समय पर प्रकाशित हुए थे।

[2]—मंदी और बेरोजगारी के काल में (और ऐसे समय में भी जब मान की कमी हो, जैसे युद्ध से विध्वन्सित देशों में), द्रव्य परिसम्पत्ति की व्यापक निधियों का निश्चित रूप से विस्तारवादी (और स्फीतिकारक) प्रभाव होंगे।

तुलना करने पर यह अवश्य कहा जायेगा कि मजदूरी कटौतियों के प्रभावों का केन्ज का विश्लेषण पर्याप्त व्यापक एवं पाण्डित्यपूर्ण है, फिर भी वास्तव में यह पूर्ण नहीं है किन्तु इसके बहुत से पहलू हैं। यह ब्याज-दर के प्रभाव तक सीमित नहीं है, जिसे केन्ज के प्रभाव के रूप में पृथक कर लिया जाता है।

तथाकथित केन्ज प्रभाव तथा पीगू प्रभाव दोनों ही मजदूरी कटौतियों के द्राव्यिक परिणामों का प्रदर्शन करते हैं। दोनों ही स्थितियों में लक्षित प्रभाव को बहुत अधिक प्रभावशाली ढंग से प्राप्त किया जा सकता है, पर यह मजदूरी में कमियां करने से प्राप्त नहीं होता बल्कि केन्द्रीय बैंक (Central Bank) द्वारा सरकारी घाटे की वित्त-व्यवस्था से द्राव्यिक परिसम्पत्ति निधियों के आयोजित प्रसार से प्राप्त होता है। द्रव्य परिसम्पत्ति के आयोजित विस्तार के विपक्ष में अपेक्षाकृत कम मूल्यों के (लाभ पर) और गिरते हुए मन्दी के प्रतिकूल प्रभावों का परिहरण हो जायेगा, और उससे विपरीत अनुकूल प्रभाव और अधिक उभर जायेंगे। इसके अतिरिक्त यह मान लेना एक बात है कि स्वतः समन्वय प्रक्रिया से (जैसा पीगू कहते हैं) पूर्ण रोजगार को विश्वस्त बनाया जा सकता है, और विस्तार की प्रभावयुक्त द्राव्यिक तथा राजकोषीय योजना का सुझाव देना (जैसा केन्ज ने किया), एक बिल्कुल भिन्न बात है।

अध्याय 11

द्रव्य और मूल्यों का केन्जवादी सिद्धान्त

[जनरल थ्योरी, अध्याय 20, 21]

अध्याय 20 और 21 पर समुचित रूप से एक साथ विचार किया जा सकता है। इन दोनो का प्रतिपाद्य विषय एक ही है, अर्थात् समस्त माग मे परिवर्तन और मूल्य स्तर मे परिवर्तन के बीच सबन्ध की जटिलता, अथवा अधिक व्यापक रूप से द्रव्य की परिमाण मे परिवर्तनो और मूल्यो मे परिवर्तनो के बीच सबध। इन दोनो अध्यायो मे केन्ज ने द्रव्य और मूल्यो के सिद्धान्त पर विश्लेषण के उन्ही साधनो का प्रयोग किया है, जिन्हे उन्होने पहले विकसित किया था। इसके अतिरिक्त उनके अपने विश्लेषण की तुलना परिमाण सिद्धान्त से की गई है।

केन्जवादी विश्लेषण सभरण और माग कार्यों के रूप मे किया जाता है और यह अनुसूचियो के विभिन्न बिन्दुओ पर इन कार्यो के परिवर्तनशील मूल्य सापेक्षताओ पर ध्यान देता है। वह ढग जिसमे कि द्रव्य की परिमाण मे परिवर्तन अपना प्रभाव मूल्यो पर डालते हैं, जटिल परस्पर सम्बन्धो के द्वारा ज्ञात किया जाता है। प्रभाव की मात्रा प्रत्येक बिन्दु पर कार्यों की मूल्य सापेक्षता पर निर्भर रहती है।

मूल्यो पर द्रव्य की परिमाण मे परिवर्तनो का प्रभाव सीधा और अनुपातिक नही होता, जैसा कि पुराने परिमाण सिद्धान्त मे होता था। यहाँ तो 'कानी के ब्याह को नौ सौ जोखिम'' की बात लागू होती है। पहले तो द्रव्य और समस्त माग के बीच सम्बन्ध होता है, फिर समस्त माग मे परिवर्तनो का प्रभाव एक ओर तो निपज पर और दूसरी ओर मूल्यो पर पडता है। यहा पर हम निपज के विभिन्न स्तरो पर सभरण मूल्य की मूल्य सापेक्षता को प्राप्त करते हैं, पर यही सब कुछ समाप्त नही हो जाता। मजदूरी दरो मे परिवर्तनो का भी ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिये, चाहे वे माग मे परिवर्तनो से हो या मजदूर सघ के कार्य और सामूहिक सौदाकारी द्वारा स्वतन्त्र रूप से निर्धारित हो।

केन्ज का सिद्धा त समुदाय के व्यवहार पर बल देता है। इस व्यवहार का केन्जवादी कार्यो तथा इन अध्यायो मे वणिन विभिन्न मूल्य सापेक्षताओं के रूप मे विश्लेषण किया जाना है। इसके विपरीत परिमाण सिद्धान्त सेंट्रल बैंक के व्यवहार पर ध्यान देता है और वह व्यवहार अपने आप को द्रव्य के परिमाण मे अभिव्यक्त कर देता है।

अध्याय 21 का श्रीगणेश इस उपालभ से होता है कि अर्थ-शास्त्र उन दो विभागो मे विभाजित कर दिया गया है, तथा **मूल्य सिद्धान्त और द्रव्य और मूल्यों के सिद्धान्त** के बीच कुछ भी सबन्ध स्थापित नही किया गया है। मूल्य सिद्धान्त के विषय मे, परम्परागत विश्लेषण का सभरण और माग को मूल्य सापेक्षताओं से होता है। किन्तु द्रव्य सिद्धान्त मे, समरण की मूल्य सापेक्षता साधारण परिमाण सिद्धान्त विवादो म शून्य बन गई है जबकि माग द्रव्य के परिमाण के अनुपात मे मान ली गई है। केन्ज द्रव्य-सिद्धान्त की अपेक्षा मूल्य-सिद्धान्त मे मूल्य सापेक्षता की सकल्पना को किसी प्रकार कम स्थान देना नही चाहते थे। तदनुरूप उनका सम्बन्ध इन दोनो से है—(1) समस्त माग के परिवर्तनो के फलस्वरूप मूल्यो का सापेक्ष परिवर्तन, और (2) द्रव्य परिमाण मे परिवर्तना के फलस्वरूप समस्त माग की मूल्य सापेक्षता। इस प्रकार द्रव्य सिद्धा त और मूल्य सिद्धान्त एक ही सिद्धान्त मे मिल जायेगे।

अर्थ शास्त्र को सम्भवत व्यक्तिगत उद्योग या फर्म के सिद्धान्त, तथा निपज एव पूर्णरूपेण रोजगार के सिद्धान्त के बीच विभाजित करना उपयोगी सिद्ध होगा। उन्होने यह सुझाव दिया कि इससे भी महत्त्वपूर्ण यह होगा यदि (1) अचल (स्थिर) सतुलन के सिद्धान्त तथा (2) विवर्ती सतुलन के सिद्धान्त के बीच विभाजन किया गया। बाद के सिद्धान्त मे भविष्य के विषय मे वे परिवर्तनशील विचार आते है, जो वर्तमान स्थिति को प्रभावित करते हैं। यहाँ पर द्रव्य आ जाता है, क्योकि यह ही तो **"वर्तमान और भविष्य के बीच"** सबसे महत्त्वपूर्ण **"कडी"** है (पृ० 293)।

विवर्ती सतुलन के सिद्धान्त मे "वास्तविक जगत की वे समस्याएँ" आती हैं "जिनमे हमारी पिछली आशंसाए निराशा मे परिणत हो सकती हैं" और जिनमे "*भविष्य से सबन्धित आशमाएँ हमारे आज के कार्य को प्रभावित करती है*" (पृ० 293-294)। यहाँ पर "वर्तमान और भविष्य को जोडने वाली द्रव्य की कडी के विचित्र गुणो को हमे *अवश्य ध्यान मे रखना चाहिए*' (पृ० 294)। विवर्ती सन्तुलन का सिद्धान्त जबकि इस का अनुसरण द्रव्य के रूप मे होना चाहिए, अब भी द्रव्य का सिद्धान्त मात्र न रह कर (पृ० 294) "मूल्य और वितरण का सिद्धान्त" बना हुआ है। "द्रव्य मे

व्यक्त किए बिना हम चालू क्रियाओ पर परिवर्तनशील आशसाओ के प्रभाव पर विचार करना भी प्रारम्भ" नही कर सकते हैं (पृ० 294)।

सामान्य मूल्य स्तर इन दो बातो पर निर्भर होता है—(1) मजदूरी दर, जिनमे उन अन्य उपादानो के पारिश्रमिक दरो का भी जोड देना चाहिये जो सीमान्त लागत मे सम्मिलित होते हैं, तथा (2) समग्र रूप से निपज का पैमाना। चूंकि मजदूरी दरें कुल उपादान लागतो का सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग होती हैं और अन्य उपादानो का पारिश्रमिक प्राय उसी अनुपात मे परिवर्तन की ओर प्रवृत्त होता है जिसमे मजदूरी दरें परिवर्तित होती हैं, अत हम कह सकते हैं कि सामान्य मूल्य स्तर आधारभूत रूप से (उस अल्पकाल मे जबकि उपकरण और तकनीक दिये हुए मान लिये गये हो) (1) मजदूरी दरो के स्तर (2) निपज के पैमाने (पृ० 294-295) का कार्य है। द्रव्य परिमाण मे परिवर्तनो का प्रभाव मजदूरी दरो तथा निपज द्वारा (यदि होता है तो) मूल्यो पर पडता है। अधिक पूर्ण कथन तो यह होता कि द्रव्य परिमाण मे परिवर्तन समस्त माग को प्रभावित कर सकते हैं, और समस्त माग मे परिवर्तन इन माग परिवर्तनो के तथा मजदूरी दरो और निपज की प्रचलित मूल्य सापेक्षताओ के अनुसार मजदूरी दरो और निपज को प्रभावित करेगे। अत मूल्य स्तर मे परिवर्तनो को पहले तो मजदूरी दरो मे परिवर्तनो (या अधिक विस्तार से, उपादान लागत) से तथा निपज के पैमाने मे परिवर्तनो को ध्यान मे रखकर स्पष्ट किया जा सकता है, किन्तु ये दोनो फिर माग मे परिवर्तनो से प्रभावित हो जाते हैं।

परिमाण सिद्धान्त बनाम केन्जवादी सिद्धान्त

वास्तविक जगत की जटिलताओ के परीक्षण की प्रारम्भिक सीढी के रूप मे केन्ज ने आशिक रूप मे परिमाण सिद्धान्त परम्परा के अनुसार सरल करने वाली पूर्वधारणाओ का सुझाव दिया। मान लीजिये कि जब तक कुछ भी बेरोजगारी है, तब तक सभरण वक्र पूर्णतया मूल्य सापेक्ष होता है। इस का यह अर्थ हुआ कि जब तक तनिक भी बेरोजगारी है, श्रमिक उसी नकद मजदूरी से सन्तुष्ट रहेगे और यह भी कि अश्रमिक उपादान पारिश्रमिक के स्थिर दरो पर प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होगे (अन्यथा यह कि "सभी बेकार साधन समरूप तथा अन्तर्परिवर्तनीय है' (295)। इन पूर्वधारणाओ के आधार पर निपज उसी अनुपात मे बदलेगी जितनी कि समस्त माग, जो कि यहा उसी अनुपात मे बदलती हुई मान ली गई है जिसमे द्रव्य परिमाण परिवर्तित होता है। यदि अब सभरण वक्र पूर्णतया मूल्य निरपेक्ष बन जाए, ज्या ही पूर्ण रोजगार प्राप्त होता हो, तो "मूल्य उसी अनुपात मे परिवर्तित होगे जिसमे द्रव्य का

परिमाण परिवर्तित होना है" (296)। यही है द्रव्य परिमाण सिद्धान्त।

किन्तु वास्तविक जगत उससे अपेक्षाकृत अधिक जटिल है जितना कि ये पूर्व-धारणाएं स्वीकार करती है। समर्थ माग, द्रव्य परिमाण मे परिवर्तनो के अनुपात नही बदलेगी, मूल्य समस्त माग मे परिवर्तनो के अनुपात मे नही बदलेंगे, जैसे ही रोजगार मे वृद्धि होगी,[1] सीमान्त लागत बढ जाएगी (यह कृषि के विषय मे निश्चय ही सत्य है और केन्ज उद्योग के सम्बन्ध मे भी ऐसा ही विचार करते थे) इससे पूर्व कि पूर्ण रोजगार की प्राप्ति हो, गत्यविरोध उठ खड़े होगे, पूर्ण रोजगार की प्राप्ति से पूर्व ही नक्द मजदूरी दरें बढने की ओर प्रवृत्त होंगी, और अन्ततोगत्वा श्रम को छोडकर उपादानो का पारिश्रमिक उसी अनुपात मे नही बदलेगा, जिसमे कि नक्द मजदूरी दर बदलती है। इन सभी जटिलताओं को ध्यान मे रखते हुए यह स्पष्ट है कि सरलीकृत परिमाण सिद्धान्त सत्य सिद्ध नही होता।

समर्थ माग मे वृद्धि आशिक रूप से निपज की वृद्धि और आशिक रूप से मूल्यो मे वृद्धि मे व्यय हो जाएगी। द्रव्य और मूल्यो के सिद्धान्त को इस प्रश्न का पहिले उत्तर देना होगा, कि समस्त माग किस प्रकार द्रव्य परिमाण मे परिवर्तनो के फलस्वरूप प्रतिक्रिया करगी और दूसरे यह कि किस प्रकार समस्त माग मे परिवर्तनो के प्रभाव निपज के परिवर्तनो और मूल्यो के परिवर्तनो के बीच विभाजित हो जाते है।

यहा पर केन्ज आर्थिक विचारधारा के स्वरूप के विषय मे कुछ कहते है। विश्लेषण के आर्थिक साधन "अन्ध घटा-बढी का कोई ऐसा यन्त्र अथवा विधि प्रदान नही करते जोकि एक अचूक उत्तर प्रदान कर सके" (297)। "आर्थिक विश्लेषण की पद्धति को विधिवत् रूप प्रदान करने के लिए काम मे लाई जाने वाली" प्रतीकात्मक अथवा गणितीय विधियो मे सबसे बडा दोष यह है कि वे "सबद्ध उपादानो के परस्पर रूप से पूर्ण स्वतन्त्र मान लेते है" (297)। "साधारण वार्तालाप मे' हम आवश्यक आरक्षणो, शर्तो एव समजनो को ध्यान मे रखते हैं। अधिकाशत गणितीय अर्थव्यवस्था उन 'प्रारम्भिक पूर्वधारणाओ' पर अवलम्बित रहती है, जो कि "वास्तविक जगत की जटिलताओ और अन्योन्याश्रितताओ" का पर्याप्त विचार नही करते (297-298)।

21वें अध्याय के चौथे परिच्छेद मे द्रव्य और मूल्यो के यथार्थवादी सिद्धान्त मे जो जटिलताएं सामने आती है, उनपर कुछ विस्तार से विचार किया गया है। केन्ज पाठकों को सावधान करते हुए कहते हैं कि स्वय उनका विश्लेषण भी भ्रान्तिजनक

---

[1] —घटते हुए प्रतिफलों के कारण, निपज, रोजगार की अपेक्षा कम अनुपात में बढ़ती है। विश्लेषण के इस बिन्दु पर O और X में परिवर्तन अनुपातिक नहीं माने जाते।

सरलता प्रस्तुत करता है। जहा तक द्रव्य परिमाण मे परिवर्तनो का प्रभाव मूल्यो पर पडता है, केन्ज़ का विश्लेषण मुख्यत ब्याज की दरो के ऐसे परिवर्तनो के प्रभाव के द्वारा सम्बन्ध की खोज करने की चेष्टा करता है। यदि विस्तृत रूप से कहा जाए, यह प्रभाव सुविधापूर्वक नकदी तरजीह अनुसूची से निवेश माग अनुसूची तथा उपभोग प्रवृत्ति अनुसूची (जोकि हमे निवेश गुणक प्रदान करती है) से ज्ञात किया जा सकता है। किन्तु केन्ज़ कहते हैं कि यह विश्लेषण (अर्थात केन्ज़वादी विश्लेषण) बहुमूल्य होते हुए भी अपने लक्ष्य तक नही पहुच सकता, क्योकि यह कार्य स्वय ही आशिक रूप से समस्त माग मे परिवर्तनो से सबद्ध निपज और उपादान लागतो की मूल्य सापेक्षनाओ (अर्थात् नकद मजदूरी दरो और अन्य उपादानो के पारिश्रमिक) पर आधारित है। उदाहरणार्थ, यह बात पूजी की उस सीमान्त कार्यकुशलता (निवेश माग अनुसूची के विषय मे सत्य है, जो आशिक रूप से पूजीगत वस्तुओ की लागत से निर्धारित की जाती है, और यह लागत किसी सीमा तक मूल्य सभरण की मूल्य सापेक्षना पर निर्भर होगी। इसके अतिरिक्त मुद्रा निति निवेश दृष्टिकोण से सबद्ध आशसाओ को बदल सकती है। इसी प्रकार के उदाहरण यह प्रकट करने के लिये और भी उद्धृत किए जा सकते हैं, कि किसी प्रकार विभिन्न जटिल उपादानो के द्वारा नकदी तरजीह अनुसूची तथा उपभोग कार्य ऊपर या नीचे हट सकते हैं। इन सभी कार्यों तथा विभिन्न विवर्ती परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुए जिन के कारण उन पर जो प्रभाव पड़े हैं, उन से समर्थ माग मे वह परिमित वृद्धि होगी, जोकि द्रव्य परिमाण मे दी गई वृद्धि के अनुरूप तथा सन्तुलित होगी (पृ० 299)। किन्तु यह परस्पर सबध अत्यन्त जटिल है और सबध विश्लेषण द्रव्य-परिमाण सिद्धान्त से बहुत दूर है।

केन्ज़ का विचार है कि "द्रव्य का आय-वेग" (income velocity of money) के विचार से कुछ स्पष्ट नही होता। आय वेग "बहुत से जटिल तथा चर उपादानो" पर निर्भर रखता है (पृ० 299)। पर जैसा कि केन्ज़ ने अनुभव किया, यह उपागम "कारणता (causation) के वास्तविक स्वरूप' को छिपा देती है। समर्थ माग मे उच्चावचन का स्पष्टीकरण आवश्यक है और यह द्रव्य सभरण के प्राप्त आय के यान्त्रिक अनुपात के द्वारा स्पष्ट नही किया जा सकता। कारणता को उन आशसाओ और व्यवहार प्रकारो (आधारभूत केन्ज़वादी कार्यों) के रूप हमे ही खोजा जाये, जिनके आधार पर आशसाओ मे परिवर्तन होते हैं। समर्थ माग "उस आय के अनुरूप होती है, जिसकी आशसा से उत्पादन प्रारम्भ हो जाता है" (पृ० 299)।

प्रारम्भिक कथन के रूप मे इतना ही पर्याप्त है। पर अब हमे अधिक विस्तृत विश्लेषण पर ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिये। निस्सदेह केन्ज़ अपनी व्याख्या को

और स्पष्ट बना सकते थे, यदि वे 20वें और 21वें अध्यायो को एक ही मे मिला देते। 20वें अध्याय का उद्देश्य रोजगार तथा समर्थ माग के सबध पर विचार करना है। किन्तु वास्तव मे, अध्याय मे तुरन्त ही समस्त माग मे परिवर्तनो से तथा निपज की प्रतिक्रिया सम्बन्धी विवेचन प्रारम्भ हो जाता है। निश्चय ही केन्ज ने बहुधा यह मान लिया (यद्यपि वे इस पूर्वधारणा से हट जाते है, जब वे श्रम से ह्रासमान प्रतिफल की पुन स्थापना करते है) कि अल्पकाल मे निपज मे परिवर्तन रोजगार मे तदनुरूप परिवर्तनो से सम्बद्ध है।

फिर भी 20वा अध्याय रोजगार कार्य अथवा समर्थ माग तथा रोजगार के सम्बन्ध के विवेचन से प्रारम्भ होता है। समग्र रूप से अर्थव्यवस्था मे रोजगार कार्य (पृ० 282) को इस प्रकार लिखा जा सकता है—$N=F(D_w)$।[1] यहा पर माग को मजदूरी दरो के रूप मे मापा गया है, जिससे नकद मजदूरी दरो मे वृद्धि से समर्थ माग मे (द्रव्य रूप मे) किसी प्रकार का क्षय न हो। नकद दरो मे वृद्धि के प्रभाव पर बाद मे उस समय विचार किया गया है जब मूल्य स्तर मे परिवर्तनो से समस्त माग मे परिवर्तन के सम्बन्ध पर प्रकाश डाला गया है।

केन्ज के राजगार कार्य $N=F(D_w)$ को पीगू के इस समीकरण $N=\frac{qY}{W}$ से तुलना करना उपयोगी हो सकता है जिसमे N रोजगार है, q द्रव्य आय का वह भाग है जोकि श्रमिको को दिया जाता है, Y द्रव्य आय है, और W नकद मजदूरी दर है। पीगू का समीकरण इस बात पर बल देता है कि द्रव्य आय मे वे परिवर्तन जोकि मजदूरी दरो मे तदनुरूप परिवर्तनो से समाप्त कर दिये जाते है—रोजगार को अपरिवर्तित कर देगे। इसी प्रकार केन्ज रोजगार को मजदूरी परिवर्तनो के अनुसार सशोधित माँग का कार्य बना देते हैं।

समग्र उद्योग मे $N=F(D_w)$ रोजगार कार्य है (पृ० 282)। किन्तु प्रत्येक पृथक् पृथक् उद्योग के लिये माँग कार्य को जानने के लिये, सारी अर्थव्यवस्था मे विभिन्न परस्पर सवद्ध उद्योगो के निवेश निपज (input output) सम्बन्धो लियोन्टीफ (Leontief) को जानना आवश्यक है। मजदूरी इकाई D_w के रूप मे (समर्थ माँग के किसी दिये हुए स्तर के लिये) प्रत्येक पृथक् उद्योग के लिये रोजगार कार्य Fr की एक क्रम-पंक्ति (array) होगी, और इन पृथक रोजगार कार्यों का योग समस्त रोजगार कार्य के बराबर होगा। अत $\Sigma Fr(D_w)=F)(D_w)$, और

---

[1]—मजदूरी इकाइयों (अर्थात् मजदूरी दरों) के रूप में D_w का अभिप्राय समस्त माग से है।

$N = \Sigma N_r$, जिसमे N_r[1] किसी एक अलग उद्योग मे रोजगार को सूचित करता है। पृ० 282 से 283 पर दिये गये मूल्य सापेक्ष सूत्र यह सूचित करते हैं कि जब मजदूरी परिवर्तनो के लिये सशोधित समर्थ माँग बढती है, तो रोजगार (या निपज जैसी भी स्थिति हो) किस दर से बढेगा। समस्त माँग के सम्बन्ध मे समस्त रोजगार की मूल्य सापेक्षता इस प्रकार दिखाई जा सकता है—

$$\frac{dN}{dD_w} \cdot \frac{D_w}{N}$$ [2]

जैसे माँग बढती है, यदि निपज को भी कठिनता से कुछ बढाया जा सके, (अर्थात् मूल्य सापेक्षता शून्य पर पहुच जाती है), तो D_w की प्रत्यक वृद्धि के साथ मजदूरी दरो के रूप मे सीमान्त लागत और मूल्य एक दम बढ जायेंगे। तदनुसार मूल्य भी औसत इकाई लागत से कही अधिक बढ जायेंगे, और लाभ भी द्रुत गति से बढ जायेंगे (पृ० 283)। दूसरी ओर यदि निपज की मूल्य सापेक्षता इकाई तक पहुच जाती है, तो मजदूरी दरो के अनुसार सीमान्त लागत (और इसलिये इकाई मूल्य) मे पर्याप्त वृद्धि न होगी। इसलिये मूल्य और इकाई लागत के बीच तो अन्तर स्थिर बना रहेगा, और निपज की प्रति इकाई लाभ नही बढेगे (पृ० 283)। इस स्थिति मे बढी हुई माँग उत्पत्ति के समस्त उपादानो की वास्तविक आय बढा देगी।

लेकिन उद्योग यदि बढती हुई लागत के अन्तर्गत कार्य कर रहा है, तो बाद वाली स्थिति घटित नही होगी। लेकिन केन्ज ने यह विश्वास करके कि सीमान्त लागत वक्र U के आकार की है (न कि चपटी या क्षमता के पूर्ण उपयोग के बिंदु तक गिरी हुई), यह मान लिया कि वास्तव मे उद्योग अल्पकाल मे बढती हुई सीमान्त लागत की अवस्थाओ मे कार्य करता है। इस लिये उन्होने यह मान लिया कि जैसे रोजगार बढता है, वैसे ही मजदूरी दरो के हिसाब से मूल्य भी अवश्य बढ जायेंगे। इसका यह अर्थ है कि असल मजदूरी अवश्य गिर जायेगी। किन्तु सस्थापक सिद्धान्त के अनुसार

---

[1]—F_r तथा N_r में नीचे लिखा r किसी एक अलग उद्योग में कार्य और रोजगार को सूचित करता है।

[2]—मान लीजिये कि हम N का दस इकाईयों के D_w की पचास इकाइयों के औसत सम्बन्ध से प्रारम्भ करते हैं, किन्तु सीमात रूप से रोजगार की, एक अतिरिक्त इकाइ dN के लिये 10 D_w की वृद्धि अपेक्षित है। यदि इन राशियों को $\frac{DN}{dD_w} \cdot \frac{D_w}{N}$, से प्रतिस्थापित करके हमें यह ज्ञात हो जाता है कि माग के सम्बन्ध में रोजगार की मूल्य सापेक्षता $\frac{1}{10} \cdot \frac{50}{10} = \frac{1}{2}$ होगी।

"असल मजदूरी सदा श्रम की सीमान्त तुष्टीहीनता के बराबर होती है" और इसलिये "यदि असल मजदूरी गिर जाये—यदि अन्य सब बातें सामान्य रहे तो श्रम सभरण गिर जायेगा'। अत सस्थापक आधार पर समस्त माँग को बढा कर रोजगार को बढाना सम्भव नहीं है। पर यदि वास्तव मे बेकार श्रमिक चालू नकद मजदूरी पर कार्य करने के लिये तैयार हैं तो 'द्रव्य के रूप मे व्यय मे वृद्धि करके" रोजगार को बढाया जा सकता है (पृ० 284)। "जब द्रव्य व्यय बढ जायेगा, तो वह सीमा जिस तक मूल्य (मजदूरी इकाइयो के रूप मे) बढेगे, अर्थात् वह सीमा जिस तक असल मजदूरी गिरेगी, निपज की मूल्य सापेक्षता पर निर्भर करती है..." (पृ० 284)।

यदि निपज मे लोच कम है, तो मूल्य सापेक्षता ऊँची होगी। इन दोनो मूल्य सापेक्षताओ का योग इकाई के बराबर होगा। "इस नियम के अनुसार समर्थ माँग आंशिक रूप मे निपज और आंशिक रूप मे मूल्य को प्रभावित करने मे अपने आप को समाप्त कर लेती है' (पृ० 285)।

पर अब मान लीजिये कि मूल्य मजदूरी इकाईयो के रूप मे नही, बल्कि द्रव्य के रूप मे आकी जाती है। तब हमे द्रव्य के रूप मे आँकी गई समर्थ माँग मे परिवर्तनो के फलस्वरूप द्रव्य मूल्यो तथा नकद मजदूरी की मूल्य सापेक्षता प्राप्त हो जाती है। तब मूल्य की सापेक्षता, निपज की तथा मजदूरी दरो की सापेक्षताओ पर निर्भर होगी। अब क्योकि परिमाण सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी का द्रव्य से विशेष सम्बन्ध है इसलिये यह द्रव्य परिमाण सिद्धान्त के समान प्रतीत होने लगता है (पृ० 285)। अत यदि निपज की मूल्य सापेक्षता शून्य है और मजदूरी की मूल्य सापेक्षता है, तो द्रव्य के रूप मे समर्थ माँग जिस अनुपात मे बढती है, मूल्य भी उसी अनुपात मे बढ जायेंगे (पृ० 286)।

किन्तु प्रत्येक उद्योग मे समस्त माँग मे परिवर्तनो के प्रत्यक्ष अनुपात मे समर्थ माँग नही बदलेगी। इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न उद्योगो मे निपज की मूल्य सापेक्षताएँ विभिन्न होगी। अत अब जब भी मूल्यो के सामान्य स्तर मे परिवर्तन होगा, तो सापेक्ष मूल्य भी बदल जायेंगे (पृ० 286)। यदि माँग का सम्बन्ध उन उद्योगो से है जिनकी निपज व रोजगार मे ऊँची मूल्य सापेक्षता है, तो एक निश्चित निपज के फलस्वरूप रोजगार मे अधिक वृद्धि होगी। और इसी कारण से माँग की दिशा मे परिवर्तन रोजगार के परिमाण को बदल सकता है, चाहे समस्त माँग मे कोई भी परिवर्तन न हो (पृ० 286)।

इनमे से कुछ विचार तो कुछ सामान्य से प्रतीत होते हैं किन्तु उनपर यहाँ विचार करना सगत होगा, क्योकि यह बहुधा कहा जाता है कि केन्ज सदा समष्टि पर विचार करते हैं और वे विभिन्न उद्योगो मे पाई जाने वाली अवस्थाओ को ध्यान मे नहीं रखते। यह अध्याय (दूसरो के साथ) यह प्रकट करता है कि स्थिति सदैव ऐसी नही है। केन्ज यहाँ इस बात पर बल देते हैं कि रोजगार समस्त माँग म परिवर्तनो का कार्य मात्र नही है।

यह अल्पकाल मे उन उद्योगो के विषय मे विशेषकर ठीक है जिनमे शीघ्रता से सभरण मे वृद्धि करना सभव नही है, यद्यपि पर्याप्त समय मिलने पर ऐसा करना सभव हो। इन अवस्थाओ मे अल्पकाल मे रोजगार की मूल्य मापक्षता कम हो सकती है, किन्तु दीर्घकाल मे लगभग इकाई होगी (पृ० 287)। बहुत कुछ अधिशेष स्टाक और अधिशेष सामर्थ्य की विद्यमानता पर आधारित है (पृ० 288)।

जब श्रम अधिशेष उपलब्ध नही है, तो व्यय मे थोडी-सी भी वृद्धि, मूल्यो, मजदूरी और लाभ को बढा देगी। निपज मे कोई परिवर्तन नही होगा, और मूल्य "MV के ठीक अनुपात से" अर्थात् समस्त माँग मे परिवर्तनो के अनुसार बढ जायेंगे (पृ० 289)। अत "स्फीति और अवस्फीति के बीच असममिति (asymmetry) पाई जाती है (पृ० 291)। अवस्फीति, रोजगार और मूल्यो दोनो को कम कर देती है, स्फीति रोजगार को नही, बल्कि केवल मूल्यो को बढा सकती है (पृ० 291)।

साधारणतया केन्ज इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि "जब निपज किसी निश्चत उपकरण से बढती है तो सभरण मूल्य बढ जायेगा (पृ० 300)। ऐसा ही होगा, चाहे बढती हुई सीमात लागत की अवस्थाओ मे नकद मजदूरी दरो मे कोई परिवर्तन न हो। अब इसमे कोई सदेह नही हो सकता कि कृषि की उपज के विषय मे वस्तुत. यही स्थिति है, किन्तु सामान्य रूप से उद्योगो मे सीमात लागत वक्र चपटा हो सकता है, अथवा पूर्ण रोजगार तक (या उसके निकट तक) भी गिरा हुआ हो सकता है।[1] पर निस्सदेह यह स्थिति भिन्न-भिन्न उद्योगो मे भिन्न भिन्न होगी। इसमे सदेह नही कि केन्ज का विचार था कि कुछ पदार्थों का सभरण "साधनो की प्रचूर अधिशेष

---

[1]—केन्ज यह बात मानने को कदापि तैयार न थे कि सीमात लागत वक्र चपटा हो सकता है। विस्तार से इस विषय पर जानकारी के लिये देखिये मेरी पुस्तक 'मानेटरी थ्योरी एण्ड फिस्कल पालिसी', प्रकाशक मैक्ग्राहिल बुक क० ई० 1949, पृ० 107 110।

(supply) की अवस्थाओं में भी 'पूर्णतया मूल्य निर्पेक्ष (inelastic)" बन जायेगा (पृ० 300)। उनका विश्वास था कि जैसे ही माग बढेगी, गत्यावरोधो का तांता बध जायेगा और जहा तक इन पदार्थों का सम्बन्ध है पूर्ण रोजगार के पहुँचने से पूर्व ही मूल्य तेजी से बढ जायगे।

जब तक अप्रयुक्त साधन विद्यमान है, निपज के बढने पर मूल्यो का सामान्य स्तर बहुत अधिक नही बढेगा (पृ० 300। माग म सहसा भारी वृद्धि को निस्सदेह गत्यावरोधो का सामना करना होगा चाहे किनना ही व्यापक बरोजगार क्यो न हो। पर यदि अपेक्षाकृत लम्बे समय तक बढी हुई माग बनी रहती है, तो बहुधा ये गत्याव-रोध पूर्णतया या पर्याप्त मात्रा म समाप्त किये जा सकते है।

जब भी लाभ बढने ह तो श्रम ग्रपो के दबाव के कारण पूर्ण रोजगार के प्राप्त होने से पूर्व ही नकद मजदूरी दर (मजदूरी इकाइयां) बढने लगती है। इस प्रकार के मजदूरी दर परिवर्तन सम्भवत असतत हो सकते है अर्थात् "अर्द्ध-सकट बिन्दुओ' (semi critical points) के अनुक्रमण हो सकते हैं (पृ० 301)। जिस सीमा तक यह घटित होता है उच्च मूल्यो पर समस्त माग मे वृद्धि अनावश्यक रूप से विस्तृत हो जायेगी। जबकि उनके अनुरूप निपज और रोजगार पर कम प्रभाव पडेगा। निपज बढने पर जितनी मात्रा म सीमात लागत बढती है माग मे वृद्धि का कुछ भाग उच्च मूल्यो म अवश्य ही विस्तृत हो जायेगा। पर इसके अतिरिक्त यदि नकद मजदूरी दरें भी बढती है तो पहिले से ही नियुक्त श्रमिको की ऊची मजदूरी के फलस्वरूप रोजगार को हानि पहुचेगी।

मजदूरी सविदाओ मे सोपान धाराए
(Escalator clauses in Wage Contracts)

मजदूरी और मल्यो का केन्जवादी विश्लेषण मजदूरी दरो को निर्वाह सूचकाक (cost-of living index) के साथ बाधने, अर्थात् तथाकथित सोपान सविदाओ की नीति पर प्रकाश डालता है। यह सुझाव दिया गया है कि इस प्रकार के सविदाए यदि व्यापक रूप से लागू किये जाय तो समस्त मांग को जोड-तोड करने से रोजगार मे वृद्धि करने वाली केन्जवादी नीति को पूर्णतया निष्फल बना देगे। इसके लिए युक्ति यह दी जाती है कि इस प्रकार मजदूरी सविदाओ के अन्तर्गत समस्त माग मे सारी वृद्धि मूल्य और मजदूरी वृद्धि मे समाप्त हो जायेगी। और इस वृद्धि का रोजगार पर कोई

भी प्रभाव न रहेगा। किन्तु यह तो केवल अर्ध सत्य है, क्योकि मूल्य मजदूरी सर्पिल (spiral) इस यथावत अनुपातिक ढग से कार्य नही कर सकता, जब तक कि समस्त माग मे प्रत्येक वृद्धि मूल्यो को उसी प्रतिशत दर मे नही बढा देती। पर वास्तव मे यदि यह घटित हो जाय, तो मजदूरी सोपान धारा के अन्तर्गत मूल्यो के साथ स्वत ही बढ जायेगी और सर्पिल प्रारम्भ हो जायेगी। पर यदि गभीर बेरोजगारी है, तो प्रारम्भ मे मूल्य आपेक्षित रूप से कम बढेंगी और इस लिए समस्त माग मे वृद्धि का मुख्य प्रभाव रोजगार मे वृद्धि होगा। प्राथमिक अवस्था मे मूल्य अधिक नही बढेंगे, क्योकि किसी भी निर्माण (manufacturing) उद्योग मे सीमान्त लागत वक्र, उस बिन्दु तक जिस पर क्षमता का पूर्णतया उपयोग हो जाता है,[1] और आशिक रूप से समय पश्चताओ के कारण, आपेक्षिक रूप से चपटा रहता है। जब समस्त माग बढती है, तो कृषि उत्पत्ति के सबध मे मूल्य निरपेक्ष सभरण की अवस्था के कारण खाद्य पदार्थों के मूल्य तेजी से बढ जाते हैं।

इसलिए खाद्य पदार्थों के मूल्यो मे वृद्धि के कारण, श्रम सविदाओ मे सोपान धाराओ का प्रभाव अपेक्षाकृत ऊचे मूल्यो मे समस्त माग मे वृद्धि के कुछ अच्छे भाग को निस्सदेह निसरण करने का होगा। अत कुछ अश तक ऐसी धाराओ का प्रभाव, समस्त माग मे वृद्धि की रोजगार जनन-शक्ति को अवश्य कम कर देने का होगा।

सोपान धाराओ की अनुपस्थिति मे, केन्ज का विचार था कि तुलना करने पर जब तक पूर्ण रोजगार प्राप्त नही हो जाता, नकद मजदूरी दरे सापेक्ष रूप से न के बराबर बढेंगी, और इसलिए उन्हे आशा थी कि समस्त माग मे किसी वृद्धि का अधिक-से-अधिक मुख्य प्रभाव यह होगा कि वह रोजगार के स्तर को मूल्यो पर सापेक्ष रूप से कुछ प्रभाव डाले बिना बढा देगा।

जैसे पूर्ण रोजगार प्राप्त हो जाता है, उसका प्रभाव यह होगा कि मूल्य बढते ही चले जायेंगे और रोजगार घटता ही चला जायेगा। इस बिन्दु पर सोपान धाराए सकटपूर्ण स्फीतिकारक बन जाती है।

जैसा कि अधिकाश देशो मे होता है, सोपान धाराएँ, मूल्य-मजदूरी सर्पिल सिद्धान्त की कठोर प्रयुक्ति के निर्देशन की अपेक्षा कम स्फीतिक्षमता से कार्य करती

[1]—निश्चित रूप से केन्ज का यह विश्वास था कि जब भी समस्त माग बढती है, सीमात लागत वक्र बढना प्रारम्भ हो जायेगा, चाहे उपरिमुखी गति निम्न रोजगार स्तरों से प्रारभ हो। इसलिये केन्ज निर्वाह सर्व सोपान धाराओं को—जितनी वास्तव में वे है—उससे भी ज्यादा संकटपूर्ण समझते थे।

है।[1] जैसा हम ऊपर देख चुके हैं यह इसलिए सत्य है कि कुछ अंश में सीमान्त लागत वक्र सापेक्ष रूप से चपटा होता है, और कुछ अंश में इसलिए कि समर्थ माँग में वृद्धियों और मूल्य स्तरों में वृद्धियों के मध्य वास्तव में महत्वपूर्ण समय पश्चताएँ हैं। साथ ही मूल्य व द्रव्य और अनुमोदित मजदूरी वृद्धियों के लागू होने के बीच और भी समय पश्चताएँ हैं। इसके अतिरिक्त अभी तक सोपान धाराएं समस्त अर्थव्यवस्था के थोड़े से ही भाग पर लागू होती हैं। यह भी है कि उत्पादकता में लगातार वृद्धियाँ होती रहती हैं और जब तक किये तदनुरूप मजदूरी वृद्धियों से बराबर न हो जायें, इकाई लागत को कम करने की ओर प्रवृत्त होती है। किन्तु कुछ सामूहिक सौदाकारी संविदाओं में ऐसी उत्पादिता धाराएं होती हैं जोकि वास्तविक या कल्पित उत्पादकता वृद्धियों के अनुरूप स्वतः वेतन वृद्धि का प्रबन्ध कर देती हैं।[2]

यदि अकेली उत्पादिता धाराओं को लिया जाये, तो उन्हें स्फीतिकारक नहीं कहा जा सकता क्योंकि वे इकाई लागतों को स्थिर रखेंगे। किन्तु जब उन्हें निर्वाह खर्च सोपान से जोड़ दिया जाता है तो उनका प्रभाव, उत्पादिता में हुई वृद्धि के साथ मजदूरी के समंजन में प्रयुक्त समय पश्चताओं को कम करना होता है। अतः सम्मिलित प्रभाव, सोपान धाराओं के स्फीतिकारक परिणामों को बढ़ा देना है। अतः बढ़े हुए मूल्यों में, समस्त माँग के एक भाग को नष्ट होने दिया जाता है, और रोजगार प्रभाव कम हो जाता है।

निस्सदेह मूल्य मजदूरी की तीव्र वृद्धि को राशनिंग और मूल्य नियंत्रण जैसे कठोर नियंत्रणों द्वारा निग्रह किया जा सकता है। इस दशा में, क्योंकि मूल्य बढ़ते नहीं हैं, सोपान यंत्र कार्य नहीं करेगा। यदि नियंत्रण प्रभावकारी है, तो सोपान धाराओं के होते हुए भी निस्सदेह संचित स्फीति का परिहार किया जा सकता है, किन्तु यह तभी हो सकता है, जबकि स्वतंत्र मूल्य निर्माता यंत्र (free price making mechanism)

1—वीरा लुट्ज (Vera Lutz, कृत 'Real and Monetary Factors in the Determination of employment Levels' क्वार्टरली जर्नल ऑव इकनामिक्स, मई 1952 से तुलना करें।

2—ऐसी उत्पादिता धाराएं दो प्रकार की हो सकती हैं—(1) प्रत्येक उद्योग में कार्यकर्त्ता अपने-अपने उद्योगों में उत्पादिता वृद्धियों के अनुपात से वृद्धियाँ प्राप्त करेंगे, तथा (2) उद्योगों में कार्यकर्त्ता समग्र अर्थव्यवस्था में उत्पादिता सामान्य समस्त वृद्धि के अनुपात से वेतन वृद्धि प्राप्त करेंगे।

जनरल मोटर्स का संविदा बाद वाले ढंग का है और सामान्य रूप से उत्पादिता में समस्त वृद्धियों की गत प्रवृत्तियों पर आधारित है।

को त्याग दिया जाये। केजवादी रोजगार नीति सामान्य शानिकालीन अवस्थाओ मे मूल्य नियत्रण जैसी क्रियाविधि को अपने अतर्गत शामिल नही करती। जिस सीमा तक सोपान धाराये, स्वतत्र मूल्य पद्धति के अन्तर्गत, विकासवादी कार्यक्रम की क्षमता को कम कर देती है, उसी सीमा तक केन्जवादी रोजगार नीति तथा निवाह खर्च सोपान मजदूरी सविदा की नीति के बीच घोर विवाद है।

अब हम अपनी मुख्य बात पर आते है।

केन्ज यह स्वीकार करते है कि यह मानना अतिसरलीकरण करना होगा कि नकद मजदूरी दर (मजदूरी इकाई) सीमात मूल लागत (prime cost) म प्रयुक्त उपादानो के पुरस्कार के भारित माध्य (weighted average) को प्रयाप्त रूप से सूचित करती है (पृ० 302)। तब भी मजदूरी दर 'पुरस्कारो के भारित माध्य'' का मूल सघटक (component) है। अन हम विषय स इतने दूर नही चले जाते, जब हम यह कहते हैं कि नकद मजदूरी दर ''मूल्य का आवश्यक मान (पृ० 302)। मूल्य स्तर आशिक रूप से मजदूरी दर और कुछ अश मे निपज की मात्रा पर निर्भर रहता है। अन, जैसा पूर्व के अध्यायो मे कहा गया है, एक बार फिर केन्ज इस बात पर बल देते हैं कि "हमारे पास ऐसा कोई उपादान होना चाहिए जिसका द्रव्य के रूप मे मूल्य, यदि स्थिर न हो तो कम से कम ऐसा असलाग (sticky) हो कि वह उपादान किसी मुद्रा पद्धति मे मूल्यो को कुछ स्थिरता प्रदान कर सके' (पृ० 304)। आवश्यक रूप से केन्ज के अनुसार यह तो नकद मजदूरी दरो की स्थिरता है जोकि द्रव्य के मूल्य (अर्थात् मूल्य स्तर) को स्थिरता प्रदान करती है। यह निष्कर्ष, परिमाण सिद्धान्त द्वारा प्राप्त निष्कर्ष से व्यासाभिमुख है।

सबद्ध कार्यों की मूल्य सापेक्षाताएं

माग $\frac{Ddp}{p\, dD}$ के सबध मे e_p को मुल्य सापेक्षता के लिये मान लीजिये†; और e_o का अर्थ निपज मूल्य सापेक्षता मान लीजिये, और e_w को माग के सम्बन्ध मे मजदूरी दर मूल्य सापेक्षता मान लीजिय। यदि जबकि मजदूरी अनुपातिक रूप मे बढती हो और माग मे वृद्धि का निपज पर कोई प्रभाव न हो, तो निपज मूल्य सापेक्षता e_o शून्य होगी, मजदूरी मूल्य सापेक्षता e_w,[1] होगी। क्योंकि निपज की

---

† यदि $\frac{dp}{dD}=\frac{p}{D}$ हो, तो मूल्य के सबध में माग की मूल्य सापेक्षता इकाई होगी, या अन्य शब्दों में, मूल्यों में परिवर्तन, माग में परिवतनों के अनुपात में होंगे। यदि $dp=1$ और $dD=2$ हो, और यदि $p=30$ और $D=60$ हो, तो

$$\frac{dp}{dD}\cdot\frac{D}{p}=\frac{1}{2}\cdot\frac{60}{30}=\frac{1}{1}.$$

मूल्य मापक्षना शून्य है, इसलिए मूल्य (मजदूरी के साथ-साथ) माग में परिवर्तनों के अनुलोमानपात (direct proportion) में बढ़ेंगे, अर्थात् e_p इकाई होगी।

किन्तु अभी हम एक और मूल्य मापक्षना को लाने की आवश्यकता है (जिस म परिमाण सिद्धान्त का अन्तिम प्रकार समझ सके) और वह है द्रव्य के परिमाण में परिवर्तनों स सबद्ध समस्त माग की मूल्य मापक्षना, अर्थात् e_d यदि हमें e_p और e_d ज्ञात हो तो हम सुगमता से e को प्राप्त कर सकते हैं, जोकि द्रव्य परिमाण में परिवर्तनों के फलस्वरूप मूल्य की मापक्षना है। उदाहरणार्थ माग e_p से सबद्ध मूल्य की मापेक्षना $\frac{1}{2}$ है और द्रव्य परिमाण e_f स सबद्ध माग की मूल्य सापेक्षना $\frac{1}{2}$ है, तो द्रव्य परिमाण (अर्थात् e) में सबद्ध मूल्य की मापक्षना $\frac{1}{4}$ होगी। सक्षेप में इस प्रकार कह सकते हैं कि $e = e_f\ e_d$।

द्रव्य परिमाण $\left(e_d = \left(\frac{MdD}{DdM}\right)\right.$ म परिवर्तनों स सबद्ध माग की मूल्य मापेक्षना एक बडे जटिल सबन्ध को सूचित करती है, जिसमें निवेश माग अनुसूची म सहयोजित नकदी तरजीह अनुसूची सम्मिलित है और शायद (1) व्याज की दर और (2) द्रव्य परिसम्पत्ति के वास्तविक मूल्य में परिवर्तनों से सबद्ध उपभोग की मूल्य मापक्षना भी सम्मिलित है। नकदी तरजीह वक्र के ढलान पर निर्भर रहते हुए, द्रव्य परिमाण म परिवर्तन ब्याज-दर में परिवर्तन ला सकते हैं, और फिर ब्याज-दर में परिवर्तन (निवेश माग अनुसूची के ढलान पर निर्भर रहते हुए) निवेश परिमाण में परिवर्तन ला सकते हैं और साथ ही जैसा ऊपर दिखाया गया है, उपभोग भी मौद्रिक प्रभावों से बदल सकता है। अत e_d सभी केन्जवादी सबधों के लिये प्रयुक्त होता है, न कि केवल [जैसा केन्ज न कहा है] (पृ० 305) "नकदी उपादानों" के लिये। यदि हम यह जानना चाहते हैं कि किस प्रकार द्रव्य परिमाण में परिवर्तन समस्त माग को प्रभावित करते हैं, तो ये हैं वे सबध, या व्यवहार प्रतिरूप जिनका हमें अध्ययन करना चाहिये।

किन्तु द्रव्य और मूल्यों के सिद्धान्त की ओर यह केवल प्रथम जटिल पग है। दूसरे पग का सबध (यह पता लगाकर कि किस प्रकार द्रव्य परिमाण में परिवर्तन समस्त माग को प्रभावित करते हैं) सामान्य मूल्य स्तर पर समस्त माग में परिवर्तनों के प्रभाव से है। मूल्य की सापेक्षना e_p $\left(\text{(अर्थात्}\ \frac{D\,dp}{p\,dD}\right)$ (दो अस्पष्ट मूल्य मापेक्षनाओं, अर्थात् e_o $\left(\text{अर्थात्}\ \frac{D\,dO}{O\,dD}\right)$ और e_w $\left(\frac{DdW}{WdD}\right)$ से मिल कर बनी है। यदि

हम e_w=शून्य के मान लें तो e_p, e_o का पूरक मात्र है, क्योंकि $e_p + e_o = 1$ के है। इसका अर्थ यह हुआ कि समस्तमाग D मे कोई भी वृद्धि या अपेक्षाकृत अधिक निपज या अपेक्षाकृत उच्च मूल्यो के रूप मे अपने आप को समाप्त कर लेगी।

यदि $e_o = o$ हो, तो बढती हुई माग का पूर्ण सघटन मूल्यो मे अनुपातिक वृद्धि के रूप मे अपने आपको प्रदर्शित करेगा। पर यदि $e_o = 1$ हो, तो मूल्य तनिक भी नही बढ़ेंगे। यहा पर हमारा सबध उन "भौतिक उपादानो से है जोकि बढते हुए प्रतिफलो के दर को निर्धारित करते हैं" (पृ० 305-306) अर्थात् हमारा सबध सीमान्त द्रव्य लागत पर बढती हुई नकद मजदूरी दरो के प्रभाव से न हो कर ह्रासमान प्रतिफलो से प्रभावित सीमान्त लागत वक्र से है। तब भी यदि हम यह मान ले कि e_w शून्य से बडा है, अर्थात् यह कि मजदूरी कुछ न कुछ सीमा तक समस्त माग मे वृद्धि के फलस्वरूप बढती है, तो e_p मे वृद्धि होगी, पर केवल इसलिये नही कि ह्रासमान प्रतिफलो के कारण सीमान्त लागत बढती है, बल्कि इसलिये भी कि नकद मजदूरी दरो मे वृद्धि से सीमान्त लागत वक्र मे उपरिमुखी हटाव होता है। अत निपज मे किसी दी हुई वृद्धि के कारण मूल्यो मे वृद्धि उस अवस्था से ज्यादा होगा जबकि नकद मजदूरी दर स्थिर हो।[1] इस स्थिति मे समस्त माग मे कोई निश्चित वृद्धि अपने आप को मूल्य वृद्धियो के रूप मे सापेक्षक रूप से अपेक्षाकृत अधिक और निपज वृद्धियो के रूप मे सापेक्ष रूप से अपेक्षाकृत कम, समाप्त कर देगी। $e_p + e_o$ फिर भी 1 के बराबर होगे, किन्तु नकद मजदूरी दरो का उपरिमुखी उत्क्रम (upward thrust) ep को अपेक्षाकृत बडा और e_o को अपेक्षाकृत छोटा बना देगा।

यदि $e_d = 1$ हो, तो मार्शल वाला k स्थिर रहेगा और समस्त माग (या आय) द्रव्य परिमाण मे परिवर्तनो के अनुपात मे बदल जायेगी। यदि द्रव्य सभरण मे परिवर्तनो के अनुपात मे माग बदलती है, और यदि समस्त माग मे सपूर्ण वृद्धि नकद मजदूरी मे वृद्धियो मे विलय हो जाये (जब $e_d = 1$ और $e_w = 1$ हो), तो जैसा कि परिमाण सिद्धान्त मे होता है, द्रव्य परिमाण (अर्थात् जब $e = 1$ हो) मे परिवर्तनो के फलस्वरूप मूल्य अनुपात मे बदल जायेंगे। किन्तु सामान्य अवस्था मे, e इकाई से कम होगी। फिर भी "मुद्रा से उडान" (flight from the currency) की अवस्था मे, द्रव्य परिमाण मे परिवर्तनो के फलस्वरूप समस्त माग और नकद मजदूरी दोनो की सापेक्ष लोच बहुत बडी हो सकती हैं, और उन परिस्थितियो मे, जैसाकि प्रथम

---

[1]—दूसरे शब्दों में, यदि नक्द मजदूरी दरें बढती है, तो समस्त माग में किसी निश्चित वृद्धि के फलस्वरूप निपज कम बढेगी, अपेक्षाकृत उन अवस्था में जब मजदूरी दरें स्थिर रहें।

है और इसी लिये हम अतिनिवेश (over investment) की स्थिति तक पहुच जायेंगे (पृ० 320)।

फिर भी अतिनिवेश के दो अर्थ हो सकते हैं (1) आने वाले बेरोजगार के कारण निराशायुक्त (disappointed) आशसाए, (2) असली पूण निवेश, अर्थात ऐसी स्थिति जिसमें लागत के ऊपर प्रतिफल दर पूर्ण रोजगार की अवस्था मे भी शून्य होती है[1]। यदि ठीक-ठीक कहा जाये तो केन्ज़ के दृष्टिकोण से प्रथम अर्थ मे ही अतिनिवेश वस्तुत भूतकाल मे घटित हुआ हैं। इसके अतिरिक्त तजी के भ्रम अपनिर्दिष्ट (mis directed) निवेश को ओर ले जा सकते है जोकि साधनो का स्पष्ट रूप से अपव्यय है[2]।

केन्ज़ इस प्रश्न पर विचार करते हैं कि तेजी के काल मे ब्याज दर को बढाना उचित चक्र रीति है या नही। वे इससे सहमत हैं कि यदि आधारभूत सुधार नहीं किय जा सकते, तो नम्य ब्याज दर का कुछ, नही की अपेक्षा तो अच्छा होगा (पाद टिप्पणी पृ० 322), किन्तु इसके विषय मे उन्हे पूर्ण विश्वास नही है (पृ० 327)। वे आग्रह करते हैं कि यह अपेक्षित नीति होगी कि चक्र न केवल समतल किया जाये, परन्तु कम से कम तेजी काल मे प्राप्त रोजगार की मात्रा को स्थिर कर दिया जाये। उनका विचार है कि अभी हाल मे "ऐसी कोई भारी तेजी नही आयी, "जिसने पूर्ण रोजगार प्राप्त कराया हो" (पृ० 322) ब्याज की रक्षित नीची दर उच्च रोजगार स्तर को स्थिर करने मे सहायक होगी। आशसा की ठीक अवस्था मे वस्तुत गत तेजियो मे ब्याज की दर पूर्ण रोजगार के लिये अत्यधिक ऊँची रही है, किन्तु तेजी कालीन "अति आशावाद ब्याज की उस दर पर विजय पा लेता है, जो कि मदी की अवस्था मे अधिक प्रतीत होगी" (पृ० 322)।

---

[1]—अतिनिवेश की सकल्पना पर विस्तृत विचार विमर्श के लिये देखिये मेरी उपयुक्त रचना बिजिनस साइकल्ज़ ऐण्ड नेशनल इन्कम, 342 342।

[2]—इस बात पर अवश्य बल देना चाहिए कि तेजी की समाप्ति का मूल स्पष्टीकरण भ्रमों, अपनिर्दिष्ट निवेश, और अधिक निवेश, पर आधारित नहीं है। वास्तव में केन्ज इस पर बल देते हुए कहते हैं कि 1929 से पूर्व अमरीका में पाच वर्ष के उच्च निवेश ने ठडे रूप से सोचे विचारे आगे के और वृद्धियों की भावी उपज को आवश्यक रूप से कम कर दिया (पृ० 323) तब भी पूँजी पदार्थों का इच्छित स्टाक सम्भवत ठीक ढग मे आका गया होगा। वास्तविक रूप से प्राप्त कुल निवल वृद्धियों को ठीक ठहराया जा सकता था, किन्तु निवेश की दर, वृद्धि की सामान्य दर से बहुत बढ गयी थी। तदनुसार, अन्त में ठीक-ठीक पूर्व दृष्टि के लिये निवेश की दर में तेजी से गिरावट अपेक्षित है।

गत था। आरम्भ की आय के आकडो की अविश्वस्ता के कारण, य सख्याए प्रवृत्ति की केवल स्थूल सूचक हैं। यहा पर सूचित अनुपातो की चिरकालिक प्रवृत्ति को ठीक करके, 'राष्ट्रीय आय और द्रव्य परिमाण के बीच स्थिर अनुपात के विषय म सभवत कुछ कहा जा सके, किन्तु केन्ज़ जो कहना चाहते थे, वह यह नही है। तब भी यदि 'स्थिर अनुपात" का केवल यही अर्थ है कि आय द्रव्य से आय अनुपात केवल अस्थिरता से और पूर्णतया या इच्छित ढग से ही नही काय करता, तो हमे फिर विवश होकर द्रव्य परिमाण से सम्बद्ध समुदाय के व्यवहार प्रकार और समग्र माग पर इसके प्रभाव और उन सभी अन्य सम्बन्धो पर विचार करना पड़ेगा, जिनका हम इस अध्याय मे विश्लेषण करते रहे है।

केन्ज़ का विश्वास था कि दीर्घकालिक उच्चावचन तथा ऊपर निर्दिष्ट की हुई प्रवृतिया सम्भवत अधोमुखी दिशा की अपेक्षा उपरिमुखी दिशा मे कम घर्षण (friction) से कार्य करेगी।

> (यदि) द्रव्य परिमाण दीर्घकाल तक बहुत कम रहता है, तो सामान्यत इसका हल मुद्रामान (monetary standard) या मुद्रा प्रणाली (monetary system) को इस प्रकार बदलने पर होगा कि द्रव्य परिमाण बढ जाये, न कि मजदूरी इकाई को नीचे धकेलने से और उससे ऋण के भार को बढाने से। अत मूल्यो की अत्यन्त दीर्घकालिक दिशा लगभग सदा ही उपरिमुखी रही है। यह इसलिये है कि जब सापेक्ष रूप से द्रव्य प्रचुर होता है, तो मजदूरी इकाई बढ जाती है, और जब द्रव्य सापेक्ष रूप से दुर्लभ होता है, तो द्रव्य की प्रभावकारी मात्रा को बढाने के लिये कोई-न कोई साधन ढूढा जाता है।

> 19वी सदी म जनसख्या और आविष्कारो का विकास, नये-नये देशो की खोज, विश्वास की मात्रा, और लगभग प्रत्येक दशी (decade) की औसत मे युद्ध की आवृत्ति ये सब उपभोग प्रवृत्ति से मिलकर पूजी की सीमान्त कार्य-कुशलता की उस अनुसूची को स्थापित करने म पर्याप्त थे जो रोजगार के एक एसे उचित सतोषजनक औसत स्तर को ला देती थी, जो ब्याज की उस पर्याप्त उच्च दर से सगति रखती थी, जो धन के स्वामियो को मनोवैज्ञानिक रूप से स्वीकार हो सके (पृ० 307)।

मुद्रा प्रणाली और विशेषकर बैंक द्रव्य के विकास का इस प्रकार समजन किया गया कि जिससे द्रव्य परिमाण इतना अवश्य हो जाये जिस से कि सामान्य

नकदी तरजीह की ब्याज की उन दरो से तुष्टि की जा सके जो कभी भी 3 या $3\frac{1}{2}$ प्रतिशत स्वर्ण प्रतिशत (gilt edged) दर से ज्यादा नीचे न हो। मजदूरी दरो की प्रवृत्ति लगातार उपरिमुखी थी, किन्तु कुशलता (efficiency) मे वृद्धियो से वे मुख्यतया सतुलित हो जाती थी, जिससे मूल्यो मे पर्याप्त मात्रा मे स्थिरता आ सके। यह केवल सयोग की ही बात नही थी। यह "उस काल की शक्तियो के सतुलन" के कारण था 'जबकि मालिको का" एक समूह इतना शक्तिशाली था कि वह मजदूरी इकाई को उत्पादन कुशलता की अपेक्षा अधिक तेजी से बढने से रोक सकता था, और साथ ही जब मुद्रा प्रणालियाँ इतनी लचकदार और इतनी रूढिवादी थी" कि अत मे वे उस द्रव्य परिमाण की व्यवस्था कर सके, जोकि ब्याज की उस निम्नतम दर को ले आये जिसे धन के स्वामी नकदी तरजीहो के विचार से स्वीकार कर सकें। "निस्सदेह रोजगार का औसत स्तर पूर्ण रोजगार की स्थिति से पर्याप्त नीचे था, किन्तु इतना अग्राह्य नीचे नही था कि वह क्रातिकारी परिवर्तनो को उत्तेजित कर सके" (पृ०) 308।

सामयिक समस्या इस "सभावना" से उत्पन्न हो जाती है कि "ब्याज की औसत दर, "जोकि रोजगार के उचित औसत स्तर को लायेगी, ऐसी है जोकि धन के स्वामियो को इतनी अस्वीकार्य है कि यह दर द्रव्य परिमाण को केवल जोड तोड कर के आसानी से स्थापित नहीं की जा सकती (पृ० 308-309)।

19वी सदी अपना कार्य इसलिये चला सकी क्योंकि ऊपर लिखी हुई अवस्थाओ मे, मजदूरी के स्तर से सबधित द्रव्य का पर्याप्त सभरण सुनिश्चित कर के यह रोजगार का सतोषजनक स्तर प्राप्त कर सकी। "यदि अब भी हमारी एक मात्र समस्या यही होती तो हम भी आज कुछ रास्ता निकाल लेते" (पृ० 309)।

'किन्तु हमारी समकालीन अर्थव्यवस्था मे सबसे अधिक स्थिर और सबसे कम आसानी से हटने वाला तत्व, जो अब तक था और भविष्य मे भी सम्भवत रहे है ब्याज की न्यूनतम दर जो सामान्य धन स्वामियो को स्वीकार हो। यदि रोजगार के सतोषजनक स्तर के लिये एक ऐसी ब्याज दर अपेक्षित है, जो उन औसत दरो से बहुत नीचे हैं जो 19वी शती मे प्रचलित थी, तो यह अति सदेहजनक है कि क्या द्रव्य परिमाण को जोड-तोड करके इसे प्राप्त किया जा सकेगा (पृ० 309)।

इससे पूर्व कि हम उस निवल प्रतिफल तक पहुँचे जो धन स्वामी को त्यागने के हेतु प्रलोभन देने के लिए अपेक्षित है, नए निवेश पर प्रतिफल के भावी दर से इनकी कटौती की जाएगी—(1) जोखिम व अनिश्चतता को ध्यान मे रखते हुए की

जाने वाली कटौती, (2) ऋण लेने वालो और ऋण दाताओ को एक साथ लाने की लागत, और (3) आय कर। "यदि सतोषजनक औसत रोजगार की अवस्थाओ मे, यह निवल उपज (yield) अत्यणु (infinitesimal) सिद्ध हो, तो अति प्राचीन विधिया निष्फल सिद्ध हो सकती हैं (पृ० 309)।

अत यही कारण है कि आधुनिक देश उस राजकोषीय (fiscal) नीति पर प्राथमिक बल देते हैं, जिसकी सेवा मे मुद्रा-नीति को एक उपयोगी किन्तु आवश्यक सेविका के गौण रूप मे पीछे कर दिया जाता है।

परिशिष्ट

निम्नलिखित समीकरण, परिभाषाए और सक्षिप्त स्पष्टीकरण विद्यार्थियो को सरलता और जल्दी से उन विभिन्न मूल्य सापेक्षताओ को पहिचानने मे सहायता कर सकते हैं, जिनका जनरल थ्योरी के 21वें अध्याय के चौथे परिच्छेद म उल्लेख किया गया है —

$e_p = \frac{Ddp}{pdD}$ इसका मतलब यह है कि माग मे परिवतनो के फलस्वरूप मूल्य स्तर मे सापेक्षता आ जायेगी, या अन्य शब्दो मे, जैसे माग बढती हैं — वह सीमा जिस तक मूल्य स्तर बदलता है। मान लीजिए कि माग मे प्रत्येक वृद्धि (अर्थात् dD) dp के मूल्य स्तर मे परिवर्तन ला देती है। यदि d_p का सबध चालू मूल्य स्तर (p, dD के D से सम्बन्ध के अनुपात मे है, तो माग से सबद्ध मूल्य स्तर) की लोच इकाई होगी। अत यदि $D=30$ और $p=10$ जबकि $\frac{dp}{dD}=\frac{1}{3}$ हो, तो $\frac{Ddp}{pdD}=\frac{30}{10}\cdot\frac{1}{3}=\frac{1}{1}$ होगी।

दोनो चरो के बीच सबध रेखाकार (linear) हो सकता है, पर उस अवस्था मे समस्त माग के सभी स्तरो पर मूल्य सापेक्षता स्थिर होती है। यह अधिक सभव है कि मूल्य सापेक्षता परिवर्तनशील रहे।

$e_o = \frac{Ddo}{OdD}$ इसका अर्थ है कि समस्त माग D मे परिवर्तनो के फलस्वरूप, निपज की मल्य सापेक्षता O होगी।

$e_w = \frac{DdU}{udD}$ यह समस्त माग मे परिवर्तनो से सबद्ध नक्द मजदूरी दरो की मूल्य सापेक्षता सूचित करती है।

$e_d = \frac{MdD}{DdM}$. यह द्रव्य परिमाण M मे परिवर्तनो से सवद्ध समस्त माग D की मूल्य सापेक्षता के लिये प्रयुक्त है।

$e = \frac{Mdp}{pdM}$ इसका अर्थ है द्रव्य-परिमाण मे परिवर्तनो से सवद्ध मूल्य की सापेक्षता (अर्थात् मूल्य स्तर)। यह (1) द्रव्य, e_d से सवद्ध माग की मूल्य सापेक्षता तथा (2) माग e_p के सवद्ध मूल्य की सापेक्षता के बीच अन्तर को पाटती है। अत $e = e_p \; e_d$।

बना लेते हैं, कि वे आदिकालीन तथा अरक्षणीय ब्याज के मुद्रा सिद्धान्त से सन्तुष्ट हैं।

बड़े-बड़े विषयो पर यत्र तत्र कुछ मनोरंजक सक्षेप टिप्पणिया दी गई है। अत. यह सुझाव दिया गया है (पाद टिप्पणी पृ० 340) कि, जैसा कि हमे मानव स्वभाव के ज्ञान से आशा करनी चाहिए, मानव का सपूर्ण इतिहास नकदी मजदूरी के बढने की दीर्घकालीन प्रवृत्ति को प्रकट करता है। बढती हुई मजदूरी, बढती हुई उत्पादकता तथा श्रमिको की बढती हुई सख्या कठिनाई से ही अधिक द्रव्य की आवश्यकता को उत्पन्न करने मे असफल हो सकती थी। अत उन्नति तथा बढती हुई जन सख्या के अतिरिक्त, मजदूरी इकाई की लम्बे समयो मे बढने की ओर प्रवृत्ति के विचार से, द्रव्य का धीरे-धीरे बढता हुआ स्टाक आवश्यक हो गया है।

केन्ज का विश्वास था कि वाणिज्यवादी साहित्य मे आई हुई समस्याएँ तथा वास्तविक अनुभव इस निष्कर्ष की ओर सकेत करते है "कि सपूर्ण मानव इतिहास मे बचत की चिरकालिक प्रवृत्ति निवेश को लगाने की प्रेरणा से अधिक प्रवल रही है" (पृ० 347)। वे आगे यह कहते है कि आज की निवेश प्रेरणा मे शिथिलता इस बात पर आधारित है कि पूंजी पदार्थो के वर्तमान सग्रहो की मात्रा कितनी है, जबकि वाणिज्यवादी काल मे निवेश प्रेरणा मे शिथिलता का मुख्य कारण सम्भवत उस काल मे बडी-बडी जोखिमो तथा खतरो का पाया जाना था (पृ० 348)। पृ० 349 पर पुन वे "धन की वृद्धि तथा ह्रासमान सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति" की ओर सकेत करते हैं।

केन्ज के कथन के सबध मे यहाँ पर दो बातें ध्यान मे रखनी चाहिएँ—(1) पूंजी का विशाल सचित स्टाक अपने आप ही निवेश अवसरो को कम करने की ओर प्रवृत्त होता है, तथा (2) चिरकालिक उपभोग प्रवृत्ति गिरती जा रही है।

पहले के सबध मे यह बात ध्यान देने योग्य है कि किसी भी देश मे भावी निवेश अवसरो की सीमा आशिक रूप से उस मात्रा पर निर्भर होती है, जिस पर प्रचलित तकनीक के विचार से तथा इसके क्षेत्र तथा साधनो के विस्तार तथा समृद्धि की मात्रा के विचार से (पूंजी सग्रह पहले ही कर लिया गया है) आशिक रूप से यह औद्योगिक उन्नति की सम्भावना तथा आशिक रूप से जनसख्या मे विकास पर आधारित होती है। वास्तव मे, जैसा कि केन्ज कहते हैं, पूंजी के विशाल स्टाक का सग्रह एक आवश्यक और सबद्ध उपादान है, किन्तु यह बहुतो मे से केवल एक है। 1800 ई० के आसपास इग्लैंड मे पुराने औजार थे, किन्तु शताब्दी के अत तक उसने अचल पूंजी

अध्याय 12

व्यापार-चक्र

[जनरल थ्योरी, अध्याय 22]

इस अध्याय मे केन्ज ने इस मत का प्रतिपादन किया है कि चक्र मुख्यत पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता की घटा-बढी के कारण घटित होता है (पृ० 313)। अब यह देखिये कि पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता इन दो बातो पर निर्भर करती है, (1) किसी नये पूँजी पदार्थ मे निवेश से प्राप्त भावी वार्षिक उपज की श्रेणी (अर्थात् $R_1 + R_2 \cdots + R_n$ तथा (2) पूँजी पदार्थ की लागत (अर्थात C_R) निवेश की दर मे उच्चावचन मुख्य रूप से R श्रेणी और C_R मे परिवर्तनो के कारण होते हैं।

इसकी तुलना गुस्टाव कैसिल (Gustav Cassel) के चक्र सबधी दृष्टिकोण से कीजिये। कैसिल के अनुसार निवेश की दर मे चक्रीय उच्चावचन C_R मे उच्चावचनो, पूँजी पदार्थों के मूल्य, और i अर्थात् ब्याजदर के कारण होते हैं। उन्होंने भावी उपज (अर्थात् R श्रेणी) को पर्याप्त स्थिर माना, क्योकि उनका झुकाव इस ओर था कि निवेश के अवसर असीम होते हैं। परन्तु यह विश्वास किया जाता था कि जैसे ही U-आकार के सभरण वक्र और बढती हुई श्रम की कमी (जबकि ग्रामीण क्षेत्रो से प्रवसन—migration—समाप्त हो गया हो) के कारण जैसे-जैसे तेजी बढती है अचल पूँजी पदार्थों की लागत बढती जाती है। दूसरी ओर अचल पूँजी पदार्थों की बढती हुई माग के कारण ब्याज की दरें बढने लगेंगी। ब्याज की उच्चतर दरो पर (सापेक्षी रूप से स्थिर भावी उपज के होते हुए भी) नव निवेश पदार्थों का पूँजीकृत मूल्य ठीक उसी समय घट जाता है, जब कि अचल पूँजी पदार्थों की लागत बढ जाती है। अब नये पूँजी पदार्थों के मूल्य और उन की लागत के बीच जो सीमान्त है, वही निवेश का कार्य है। कैंसिल के अनुसार इसी सीमान्त को कम करने से तेजी की समाप्ति पर निवेश घट जाता है।

C_R मे उच्चावचन से सबद्ध केन्ज का विश्लेषण कैंसिल के विश्लेषण के समान है। केन्ज कैंसिल से इस बात मे भी सहमत हैं कि कभी-कभी बढती हुई ब्याज

दर स्थिति को निश्चय ही बिगाड सकती है और कभी-कभी सम्भवतः स्थिति को बिगाडने का प्रारम्भ भी कर सकती है' (पृ० 315)। किन्तु उनका विचार है कि यह कोई प्रतिरूपक बात नही है। इसके अतिरिक्त उनका मत है कि भावी उपज अर्थात R श्रेणी म उच्चावचन ही मुख्य और प्रतिरूपक रूप नियत्रक कारक है। यह तथ्य CR म उच्चावचन पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता मे वृद्धि और गिरावट का कारण प्रस्तुत करना है। R श्रेणी अर्थात् अचल पूँजी पदार्थों से प्राप्त भावी वार्षिक उपज मे सहसा गिरावट पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता को गिराने का मुख्य कारण है यद्यपि बढ़ती हुई लागतो का भी इसम योग होना है। इस उलट फेर (down turn) का स्पष्टीकरण इस रूप मे 'नही है कि यह मुख्यत व्याज दर मे वृद्धि के कारण है बल्कि पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता के सहसा समाप्ति के कारण है" (पृ० 315)।

भावी उपज (अर्थात् R श्रेणी) की आशाएँ आशिक रूप से उत्पादन क अन्य कारको से सबद्ध पूजी पदार्थों की प्रचुरता पर आश्रित है और आशिक रूप से उद्यम कर्त्ताओ की निराशावृत्ति अथवा आशावृत्ति पर आश्रित है। तेजी की समाप्ति की ओर अत्यधिक आशावृत्ति इतनी प्रबल हो सकती है कि (1) अचल पूँजी पदार्थों की बढती हुई प्रचुरता" के कारण घटती हुई सीमात प्रतिफलो (R श्रेणी) की ओर प्रवृत्ति, (2) पूजी पदार्थों की बढती हुई लागत और (3) i अर्थात् व्याज दर मे वृद्धि की क्षतिपूर्ति कर द (पृ० 315)। 'पूजी परिसपत्ति से भावी उपज" के उचित अनुमान मानातीत आशावादी बाजार के द्वारा अलग हटा दिये जाते है।

केन्ज कहत है कि यह असभव है कि पूजी की सीमात कार्यकुशलता मे उच्चावचन आवश्यक रूप स चक्रीय स्वभाव के ही हो (पृ० 314)। फिर भी उनका विचार है कि एसे कुछ निश्चित कारण' है जो यह प्रकट करते है कि क्यो "19वी शताब्दी के वातावरण म पूजी की सीमान्त कार्यकुशलता मे उच्चावचन मे चक्रीय लक्षण होने चाहिए थ" (पृ० 314)।

वे कारण निम्नलिखित है —जैसे तेजी प्रगति करती है तथा "जैसे ही नवो त्पादित स्थायी पदार्थों के स्टाक सतत रूप से बढता है," वर्तमान उपज (अर्थात् R_1) म गिरावट के कारण भावी उपज की विश्वसनीयता के सम्बन्ध मे सहसा सन्देह उठ खडे होते हे (पृ० 317)। साथ ही साथ नय पूजी पदार्थों की वर्तमान लागत बढ जाती है। अत पूँजी पदार्थों की भावी उपज के सम्बन्ध मे प्रचलित आशावादी अनुमान को निभ्रान्ति द्वारा उत्तरोत्तर अधिक मात्रा म विस्थापित कर दिया जाता है। पूँजी

की सीमान्त कार्यकुशलता की समाप्ति, अथवा लागत के ऊपर प्रतिफल की आशासित दर नक्दी तरजीह मे तीव्र वृद्धि को अवक्षेप (precipitates) कर देती है (पृ० 316)। इससे ब्याज दर मे वृद्धि हो जाती है और इस प्रकार स्थिति बिगड जाती है। किन्तु प्रारम्भिक उपादान तो पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता मे गिरावट है। r की समाप्ति के उपरान्त नक्दी तरजीह घट जाती है (पृ० 316)। इसके अतिरिक्त r मे गिरावट उपभोग कार्य मे अधोमखी हटाव भी ला सकती है, विशेषतया ऐसे व्यक्तियो के सम्बन्ध मे, जो गिरते हुए स्टाक बाजार म हानिया उठाते हैं (पृ० 319)।

इस प्रकार "लागत के ऊपर प्रतिफल की आशासित' ' दर मे चक्रीय परिवर्तन (फ़िशर) अथवा पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता (केन्ज़) इन बातो पर आधारित है—(1) पूजी पदार्थों के भण्डार मे तेजी काल की विशाल निवल वृद्धियो के रूप मे भावी उपज की अवश्यम्भावी पूँजी सतृप्ति[1] (saturation) की स्थिति को उत्तरोत्तर उत्पन्न कर देने के फलस्वरूप उस समय की भावी उपज (R श्रेणी) मे अवश्यभावी गिरावट पर तथा (2) नए पूँजी पदार्थों की बढती हुई लागत पर किन्तु पूजी का सीमान्त कार्यकुशलता मे चक्रीय दोलन अपक्षाकृत तथ्यो के जो ' व्यावसायिक जगत की अनियन्त्रित तथा अवज्ञाकारी मनोवृत्ति" के द्वारा जैसा तथ्य सिद्ध करत है, उसकी अपेक्षा अधिक तीव्र हो जाते हैं (पृ० 317)। अत केन्ज़ विश्वास[2] के महत्व पर एलफ्रड मार्शल द्वारा दिए गये बल का समर्थन करते हैं जिसे वे समझते हैं कि अर्थशास्त्रियो ने बहुधा कम कूता है किन्तु जिस पर बैंकरो तथा व्यवसायियो द्वारा बल देना ठीक रहा है (पृ० 317)।

विश्वास के लौट आने मे समय लगता है, और इसका सम्बन्ध "उन प्रभावो से है जो कि पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता की उपलब्धि को निर्धारित करते हैं" (पृ० 317)। इसी मे समय तत्व अथवा चक्र की प्रतिरूपी अवधि का स्पष्टीकरण निहित है। आंशिक रूप से आशाए निराशावृत्ति तथा आशावृत्ति की वाष्पशील तरगो से मिल कर बनती हैं, किन्तु फिर भी वे उन असल उपादानो पर आधारित हैं जो कोरे काल्पनिक विवरण नहीं हैं। उपलब्धि प्रारम्भ होने स पूर्व जो समय बीतता

1—निवेश को सतृप्ति की सीमा से परे (जिसे पूजी का ठोस राशि के रूप में कहा जा सकता है) अधिकतम क्षमता की सीमान्त तक ले जाया जा सकता है।

2—देखिये मेरी पुस्तक बिजनिस साइकल्स एण्ड नेशनल इनकम, प्रकाशक डब्ल्यू० डब्ल्यू० नार्टन ऐण्ड क०, 1951, अध्याय 15।

है वह आंशिक रूप से **अर्थव्यवस्था के विकार की सामान्य दर के परिमाण** (पृ० 317) और आंशिक रूप से पूंजी पदार्थो के जीवन काल पर निर्भर करता है। स्थिर परिसम्पत्ति का जितना ही जीवन काल थोडा होगा, मदी भी उतनी ही थोडी देर रहेगी। और साथ म यह है कि **विकास की दर** जितनी तीव्र होगी, मदी भी उतनी ही कम देर रहगी (प० 318)।

इसके अतिरिक्त स्टाक-सूचियो[1] (inventories) के सम्बन्ध मे मदी की अवधि देरी स्टाक की वहन लागतो से प्रभावित होती है। निवेश, आय, बिक्री मे कमी के कारण उन अनिच्छित सूचियो का सग्रह हो जाता है, जिनकी वहन लागत "शायद ही कभी १० प्रतिशत वार्षिक दर से कम होगी" (पृ 318)। वहन लागत इतनी ऊची होती है कि वह परिसमापन (liquidation) क्रिया-गति को तीव्र कर देती है।

आवश्यक रूप से "प्रक्रिया मे आए हुए पदार्थों" का निवेश निपज के अनुलोमानुपाती मे होना है। मदी (down turn) की प्रथम अवस्था मे तालिका स्टाक बढ जाते है (अनिच्छित निवेश), जबकि प्रक्रिया मे आये हुए पदार्थ घट जायेंगे। दूसरी अवस्था मे स्टाक मे और प्रक्रिया मे आए हुए पदार्थों मे अनिवेश (disinvestment) घटित हो जाता है। निपज के सुधार की प्रथम अवस्था मे स्टाक नगण्य हो सकते हैं और इसलिये सूचियो मे सतत अनिवेश, प्रक्रिया मे आये हुए पदार्थों की वृद्धि की लगभग क्षति पूर्ति कर सकता है। अन्त मे जैसे ही विस्तार होता है, दोनो ही उपादान अनुकूल होते हैं, अर्थात उद्यमकर्त्ता अपनी सूचीकृत स्टाको (इच्छित निवेश) मे वृद्धि करते हैं तथा प्रक्रिया मे आए हुए पदार्थ बढती हुई निपज के साथ बढ जाते हैं।

जब असल पूंजी के स्टाक की वृद्धि अपने उचित स्तर तक (निवेश तेजी की समाप्ति) पहुच गई है, कुछ समय तक और निवेश की आवश्यकता नही होगी। इस दशा मे पूँजी सतृप्ति तो प्राप्त हो चुकी है, किन्तु निश्चय ही अधिक क्षमता नही। फिर भी निवेश स्फुरण (investment spurt) भी बहुत अधिक हो सकता

[1]—अमरीकी प्रयोग में देखिये अब्रोमो विट्ज (Abramovitz) की पुस्तक इन्वेण्ट्रीज ऐण्ड बिजनिस साइक्लज, प्रकाशक नेशनल ब्यूरो आव इकोनामिक रिसर्च 1950 "सूचियों" में ये बातें सम्मिलित हैं—(1) तैयार और बेतैयार माल एव कच्ची सामग्री का स्टाक तथा (2) 'प्रक्रिया में आया हुआ माल"। केन्ज की शब्दावली में "सूचियों" का अर्थ केवल स्टाक से है, जबकि "प्रक्रिया में आये हुए माल" को कार्यकर (working) पूंजी कहते हैं।

है और इसी लिये हम अतिनिवेश (over investment) की स्थिति तक पहुच जायेंगे (पृ० 320)।

फिर भी अतिनिवेश के दो अर्थ हो सकते हैं (1) आने वाले बेरोजगार के कारण निराशायुक्त (disappointed) आशसाए, (2) असली पूण निवेश, अर्थात ऐसी स्थिति जिसमें लागत के ऊपर प्रतिफल दर पूर्ण रोजगार की अवस्था मे भी शून्य होती है[1]। यदि ठीक-ठीक कहा जाये तो केन्ज के दृष्टिकोण से प्रथम अर्थ मे ही अतिनिवेश वस्तुत भूतकाल मे घटित हुआ हैं। इसके अतिरिक्त तजी के भ्रम अपनि- र्दिष्ट (mis directed) निवेश की ओर ले जा सकते है जोकि साधनो का स्पष्ट रूप से अपव्यय है[2]।

केन्ज इस प्रश्न पर विचार करते हैं कि तेजी के काल मे ब्याज दर को बढाना उचित चक्र रीति है या नही। वे इससे सहमत हैं कि यदि आधारभूत सुधार नहीं किय जा सकते, तो नम्य ब्याज दर का कुछ, नही की अपेक्षा तो अच्छा होगा (पाद टिप्पणी पृ० 322), किन्तु इसके विषय मे उन्हे पूर्ण विश्वास नही है (पृ० 327)। वे आग्रह करते हैं कि यह अपेक्षित नीति होगी कि चक्र न केवल समतल किया जाये, परन्तु कम से कम तेजी काल मे प्राप्त रोजगार की मात्रा को स्थिर कर दिया जाये। उनका विचार है कि अभी हाल मे "ऐसी कोई भारी तेजी नही आयी, "जिसने पूर्ण रोज- गार प्राप्त कराया हो" (पृ० 322) ब्याज की रक्षित नीची दर उच्च रोजगार स्तर को स्थिर करने मे सहायक होगी। आशसा की ठीक अवस्था मे वस्तुत गत तेजियो मे ब्याज की दर पूर्ण रोजगार के लिये अत्यधिक ऊँची रही है, किन्तु तेजी कालीन "अति आशावाद ब्याज की उस दर पर विजय पा लेता है, जो कि मदी की अवस्था मे अधिक प्रतीत होगी" (पृ० 322)।

1—अतिनिवेश की सकल्पना पर विस्तृत विचार विमर्श के लिये देखिये मेरी उपयुक्त रचना बिजिनस साइकल्स ऐण्ड नेशनल इन्कम, 342 342।

2—इस बात पर अवश्य बल देना चाहिए कि तेजी की समाप्ति का मूल स्पष्टीकरण भ्रमों, अपनिर्दिष्ट निवेश, और अधिक निवेश, पर आधारित नहीं है। वास्तव में केन्ज इस पर बल देते हुए कहते है कि 1929 से पर्व अमरीका में पाच वर्ष के उच्च निवेश ने ठडे रूप से सोचे विचारे आगे के और वृद्धियों की भावी उपज को आवश्यक रूप से कम कर दिया (पृ० 323) तब भी पूँजी पदार्थो का इच्छित स्टाक सम्भवत ठीक ढग मे आका गया होगा। वास्तविक रूप से प्राप्त कुल निवल वृद्धियों को ठीक ठहराया जा सकता था, किन्तु निवेश की दर, वृद्धि की सामान्य दर से बहुत बढ गयी थी। तदनुसार, अन्त में ठीक-ठीक पूर्व दृष्टि के लिये निवेश की दर में तेजी से गिरावट अपेक्षित है।

फिर भी निश्चय ही केन्ज भूल करते है जब वह यह कहते हैं कि 1929 की तेजी एक ठीक आधार पर अनिश्चित काल तक चलती रहती, यदि बहुत कम ब्याज दर की दीर्घकालीन नीति को लागू किया गया होता (पृ० 323)। सम्भवत उनका कहने का केवल यह अभिप्राय था कि इसको लम्बे समय तक चलाया जा सकता था। फिर भी सामान्य स्टाक पर प्राप्त असाधारण रूप से कम उपज को ध्यान मे रखते हुए और उसके परिणामस्वरूप अत्यन्त अनुकूल शर्तों पर द्रव्य को प्राप्त करने की सुविधा को देखते हुए, इसमे सन्देह है कि क्या ब्याज की निम्नतम दर किसी पर्याप्त सीमा तक तेजी काल को लम्बा कर सकती थी।

यह अध्याय व्यापार चक्र को जेवन्स (Jevons) द्वारा दिए गये योगदान के पटुतापूर्ण (विवेचन) से समाप्त किया गया है जेवन्स के अनुसार व्यापार चक्र, वृष्टि (rain-fall) चक्रो के कारण फसल मे घटा-बढी से होता है। केन्ज कहते है कि जब जेवन्स लिख रहे थे, उनका कथन अत्यन्त युक्ति सगत था। उस समय कृषि उत्पादन के स्टाको मे घटा-बढी निवेश की दर मे परिवर्तन लाने के लिए मुख्य कारण रही हागी। जबकि फसले अच्छी होती है, दलाल और सग्रह सस्थाऐ पूर्वावशिष्ट (carry over) मे विधाल निवेश लगा देते हैं। जैसे ही इन सस्थाओ को फसल बेची जाती है, किसानो की आय बढ जाती है। इन पूर्वाविशिष्ट स्टाको मे निवेश से कुल आय बढ जाती है, किन्तु जब फसल अच्छी नही होती तो पूर्वावशिष्ट थोडा होता है और इसी कारण इन स्टाको मे निवेश से किसानो की बहुत कम आय बढ पाती है।

बात यह है कि कृषि स्टाको मे निवेश ठीक उसी रूप मे नई आय प्रदान करता है जैसे कि अचल पूँजी पदार्थो मे निवेश से होता है। सूचीकृत निवेश कुल निवेश का महत्व भाग है और चक्र मे महत्वपूर्ण कार्य करता है, किन्तु कृषि पूर्वावशिष्ट स्टाको मे निवेश पहले की अपेक्षा अब कम महत्वपूर्ण रह गया है।

कच्ची सामग्री, अर्ध तैयार माल, तथा तैयार मे सूचीकृत विवेश साधारणतया बढी हुई विक्री अथवा उच्चतर मल्यो की आशसाओ के स्वरूप स्टाको के योजनाबद्ध सग्रहो का परिणाम है। किन्तु बहुधा यह विक्री मे अनाशसित गिरावट के कारण अनिच्छित सग्रह का परिणाम है। और कभी-कभी तो यह भारी फसलो से अपरिहार्य सीमोपरि पूर्वावशिष्टो के कारण होता है। लगभग 1870 तक दूसरी ने सम्भवता प्रमुख बल्कि प्रभावी कार्य किया है।

व्यापार चक्र पर किए गए केन्ज के विवेचन की आवश्यक बातों को सक्षेप मे निम्न रूप से रखा जा सकता है—

1—चक्र मुख्यतः निवेश की दर मे उच्चावचनो से मिल कर बनता है।

2—निवेश की दर मे उच्चावचन मुख्यत पूँजी की सीमान्त कार्य कुशलता मे उच्चावचनो के कारण होते है।

3—निस्सदेह कभी-कभी व्याज दर मे उच्चावचनो ने महत्वपूर्ण कार्य किया है, किन्तु अधिक उल्लेखनीय बात यह है कि पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता मे उच्चावचनो से प्रेरित होकर नकदी तरजीह अनुसूची मे परिवर्तन मूल्य उपादान (अर्थात r मे परिवर्तन) को बल देते हैं और उसके पूरक हे।

4—पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता अर्थात् r मे उच्चावचन इन कारणो मे है—(क) पूजी पदार्थों की भावी उपज (R श्रेणी) मे परिवर्तनो से और (ख) पूँजी पदार्थों C_R की प्रतिस्थान लागत मे परिवर्तनो से पूँजी पदार्थो की लागत मे उच्चावचन निवेश की उस दर मे परिवर्तनो के कारण होती है, जिसमे किसी निश्चित अवधि मे निवेश उत्पन्न किया जा सकता है, अर्थात तेजी काल मे पूँजी पदार्थ उद्योगो पर अत्यन्त दबाव पडने के कारण पूँजी गत पदार्थों की लागत मे उच्चा-वचन होते हैं। लागतो मे उच्चाव्चन उस मुख्य चालक (initiating) उत्पादन के गोण तथा सपूरक होते हैं, जोकि नए पूँजी पदार्थों की भावी उपज मे उच्चावचन होता है।

5—तेजी की समाप्ति के आस-पास पूँजी पर भावी उपज मे गिरावट प्रथम अवस्थाओ मे तो पूँजी पदार्थों की बढती हुई प्रचुरता (और इसलिये निम्नतर सीमान्त उत्पादकता) के कारण होती है। यह एक वस्तुनिष्ठ तथ्य है, जोकि अपने आप निराशाजनक आशाओ की लहर को प्रेरित कर सकता है (एक मनोवैज्ञानिक उपादान) जिससे, यदि एक बार मोड-बिन्दु (turning point) निकल जाये, तो प्रत्याशित उपज सामान्यत उससे कम होगी, जोकि शान्तिपूर्वक विचार करने पर तथ्य माग करते हैं।

६—अधिक प्रभावी उपायो (अर्थात् राजकोषीय नीति) की अनुपस्थिति व्याज की चल (variable) दर चक्र को स्थिर करने मे उपयोगी साधन सिद्ध हो सकती है। किन्तु केन्ज चक्र के नियमित करने के हेतु अपनाए गये अन्य आमूल परिवर्तनवादी उपायो के साथ व्याज की एक स्थिर नीची दर को अधिमान्यता देते हैं।

७—निवेश के तेजीकालीन स्तर भी प्रतिरूपी ढग से पूर्ण रोजगार लाने मे असफल हो गये हैं। इस प्रकार सधृत पूर्ण रोजगार को प्राप्त करने के लिये तेजी को चलने रखना मात्र ही नहीं है। अत तेजी के कठोरघन नीति को केन्ज अच्छा नही

समझते थे। उन्होंने इस विश्लेषण को स्वीकार नहीं किया, जोकि यह कहता है कि मन्दी तेजी की विकृतियां का अनिवार्य परिणाम है जो भी विकृतियाँ हो सकती है, उन पर धीरे धीरे सधृत पूर्ण रोजगार के कार्यक्रम द्वारा विजय प्राप्त की जा सकती है।

ब्याज की दर मे वृद्धि करने से तेजी का कठोर घन करना तो "वह उपचार है जिसमे रोगी को मार देने से रोग का निवारण हो जाता है" (पृ० 323)।

सधृत पूर्ण रोजगार के आयोजित कार्यक्रम की सभाव्य स्फीतिक आशयो को समझने का केन्ज ने प्रयत्न नहीं किया। इससे भी कठिन वे कुसमजन और विकृतियाँ है जोकि युद्धो और युद्धोपरान्त पुन सग्रहीत (re-stocking) तेजियो द्वारा उत्पन्न हो जाती है। निश्चय ही इस अध्याय मे केन्ज युद्ध तथा युद्धोपरान्त तेजी के प्रति पूर्ण रोजगार के विषय मे विचार न करके सामान्य शातिकालीन स्थितियो के विषय मे विचार कर रहे थे।

अध्याय 13

प्रवकालीन आर्थिक चिंतन तथा सामाजिक दर्शन पर टिप्पणियाँ

[जनरल थ्योरी अध्याय 23-24]

ये अध्याय बहुत चमत्कारपूर्ण ढग से लिखे गए हैं और अत्यन्त मनोरजक हैं। इनमे केन्ज स्वछद हो गये है। बहुत-से तो यह कहगे कि उन्होने सावधानी की उपेक्षा करके अपनी कल्पना को अनुत्तरदायी ढग से विचरने की छूट दे दी।[1] फिर भी ध्यानपूर्वक अध्ययन से यह प्रकट होता ह कि यद्यपि केन्ज कल्पना के जगत मे विचरण कर रहे थे, तथापि पर्याप्त समय तक वे वास्तविक जगत मे ही रहे हैं। उन्होने अपना ग्रथ उस समय लिखा था जबकि ससार मे अभी शांति ही थी और मनुष्य आदर्शलोक के विषय मे सपने और उडान ले सकता था। किन्तु अब परिस्थितियाँ बदल गई हैं।

---

[1]—अनुकूल सतुलन (favourable balance) और सरक्षी (protectionist) नीति की अभीष्टता पर वाणिज्यवादियों द्वारा दिये गये बल से सबद्ध केन्ज के सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार के विषय में पाठकों को यह स्मरण कराना उचित ही है कि उनकी स्थिति, जैसा कि कभी-कभी कहा गया है, उतने कम अन्विादी है। केन्ज ने यह देखा कि वाणिज्यवादी, व्यापार पर लगाये गये प्रतिबन्धों का बहुधा विरोध करते हैं, तथा व्यापार पर लगाये गये प्रतिबन्धों के विरुद्ध सामान्य प्रकार का प्रबल प्रकल्पनायें हैं, तथा श्रम के अन्तराष्ट्रीय विभाजन के लाभ वास्तविक ठोस हैं और एक असाधारण सरक्षी नीति "यह अनुकूल सन्तुलन प्राप्त करने के लिये जो कि सभी को समान रूप से हानि पहुँचा सकता है, निरर्थक अन्तराष्ट्रीय प्रतियोगिता की ओर ले जा सकता है" (पृ० 338)।

इसके अतिरिक्त (पृ० 339) वे सभी देशों द्वारा एक साथ उच्च घरेलू रोजगार के "एक साथ प्रयत्न" पर स्पष्टतः बल देते हैं, जिससे उच्च रोजगार और अन्तराष्ट्रीय व्यापार के विधान परिमाण दोनों ही रूपों में "अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक स्वास्थ्य और शक्ति" को पुन लाया जा सके। निस्सदेह यह था वह पुरोगम जो उन्होंने ब्रेटन वुड्स (Bretton woods) में प्रस्तुत किया।

उनके सैद्धातिक पद्धति मे जो भी तत्व थे उन्होने पूर्व के ग्रध्यायो मे पहले ही उन पर व्यारया कर दी थी और ग्रत के य दो ग्रध्याय उस विश्लेषणात्मक तोप खाने मे कोई ठोस वद्धि नही करत, जिसम हम मुरयतया रुचि रखते हैं। किन्तु कल्पना की ग्राकपक उडानो के ग्रतिरिक्त कुछ न कुछ उनके चिन्तन की सामान्य प्रणाली पर पाश्व प्रकाश डालने से प्राप्त किया जा सकता है।

वाणिज्यवाद ग्रौर द्रव्य का काय

वाणिज्यवाद पर यह परिच्छेद निबध (Treatise) की पूर्वधारणा ग्रर्थात् द्रव्य के काय की ग्रोर पुन ध्यान ग्राकर्षित करता है। जनरल थ्योरी का ऐसा प्रभाव हुग्रा है कि उसने निबन्ध म द्रव्य काय को जो महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है उसकी ग्रपेक्षा द्रव्य को एक कम महत्व की स्थिति म धकेल दिया है। कुछ हद तक तो 23वा ग्रध्याय द्रव्य की महत्ता स सबद्ध उनके पहले वाले उत्साह के विपरीत है।[1] वाणिज्य-वादियो की इसलिए प्रशसा की गई है कि उन्होने द्रव्य पर बल दिया है। गृह निवेश (Home investment) ब्याज की घरेलू दर से नियन्त्रित होता है (जैसा व समझे) ग्रौर फिर ब्याज द्रव्य की मात्रा से नियन्त्रित होता है। उनका विचार था कि व्यापार सतुलन उचित रूप से ग्रार्थिक नीति का मूरय प्रयोजन है क्योकि सोने के देशी उत्पादन के ग्रभाव मे यह किसी देश के द्रव्य सभरण को नियन्त्रित करता है। यह सब कुछ पुराने विचारो पर घसीट ले जाता है।

हक्शर (Heckscher) पर ग्राधारित उन बहुत से उद्धरणो मे, जिन्हे वे, वाणिज्यो से उद्धरित करत है केन्ज ब्याज दर के विशुद्ध मुद्रा सिद्धात का पूर्ण समर्थन करते प्रतीत होत हैं। यहा पर ग्रौर ग्रन्यत्र भी वे ग्रपनी ही प्रणाली के विषय म स्वय स्पष्ट नही है जोकि—यदि पूर्ण रूप से इस पर विचार किया जाए—न तो विशुद्ध रूप से ग्रौर न ही मुख्य रूप से मौद्रिक प्रणाली है। केजवादी पूर्ण पद्धति मे ब्याज दर के निर्धारक तत्व केवल द्रव्य की मात्रा ग्रौर नक्दी तरजीह ही नही है बल्कि निवेश माँग ग्रनुसूची ग्रौर उपभोग काय भी हैं (देखिए इस पुस्तक का 7वा ग्रध्याय)। यहाँ पर केन्ज ग्रपने ग्रापको सम्भवत ग्रन्य स्थलो की ग्रपेक्षा ग्रधिक ग्रालोचना का शिकार

1—निस्सदेह मेरे कहने का यह ग्रभिप्राय नहीं है कि द्रव्य का कोई बडा महत्व नहीं है। मै तो यह कहता हूँ कि निबध में द्रव्य के काय पर ग्रत्यधिक बल दिया गया है।

बना लेते हैं, कि वे आदिकालीन तथा अरक्षणीय ब्याज के मुद्रा सिद्धान्त से सन्तुष्ट हैं।

बड़े-बड़े विषयों पर यत्र तत्र कुछ मनोरंजक सक्षेप टिप्पणियां दी गई है। अत. यह सुभाव दिया गया है (पाद टिप्पणी पृ० 340) कि, जैसा कि हमे मानव स्वभाव के ज्ञान से आशा करनी चाहिए, मानव का सपूर्ण इतिहास नकदी मजदूरी के बढ़ने की दीर्घकालीन प्रवृत्ति को प्रकट करता है। बढ़ती हुई मजदूरी, बढ़ती हुई उत्पादकता तथा श्रमिको की बढ़ती हुई सख्या कठिनाई से ही अधिक द्रव्य की आवश्यकता को उत्पन्न करने मे असफल हो सकती थी। अत उन्नति तथा बढ़ती हुई जन सख्या के अतिरिक्त, मजदूरी इकाई की लम्बे समयो मे बढ़ने की ओर प्रवृत्ति के विचार से, द्रव्य का धीरे-धीरे बढ़ता हुआ स्टाक आवश्यक हो गया है।

केन्ज का विश्वास था कि वाणिज्यवादी साहित्य मे आई हुई समस्याएँ तथा वास्तविक अनुभव इस निष्कर्ष की ओर सकेत करते है "कि सपूर्ण मानव इतिहास मे बचत की चिरकालिक प्रवृत्ति निवेश को लगाने की प्रेरणा से अधिक प्रवल रही है" (पृ० 347)। वे आगे यह कहते है कि आज की निवेश प्रेरणा मे शिथिलता इस बात पर आधारित है कि पूंजी पदार्थों के वर्तमान सग्रहो की मात्रा कितनी है, जबकि वाणिज्यवादी काल मे निवेश प्रेरणा मे शिथिलता का मुख्य कारण सम्भवत उस काल मे बड़ी-बड़ी जोखिमो तथा खतरो का पाया जाना था (पृ० 348)। पृ० 349 पर पुन वे "धन की वृद्धि तथा ह्रासमान सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति" की ओर सकेत करते हैं।

केन्ज के कथन के सबध मे यहाँ पर दो बातें ध्यान मे रखनी चाहिएँ—(1) पूँजी का विशाल सचित स्टाक अपने आप ही निवेश अवसरो को कम करने की ओर प्रवृत्त होता है, तथा (2) चिरकालिक उपभोग प्रवृत्ति गिरती जा रही है।

पहले के सबध मे यह बात ध्यान देने योग्य है कि किसी भी देश मे भावी निवेश अवसरो की सीमा आशिक रूप से उस मात्रा पर निर्भर होती है, जिस पर प्रचलित तक्नीक के विचार से तथा इसके क्षेत्र तथा साधनो के विस्तार तथा समृद्धि की मात्रा के विचार से (पूँजी सग्रह पहले ही कर लिया गया है) आशिक रूप से यह औद्योगिक उन्नति की सम्भावना तथा आशिक रूप से जनसख्या मे विकास पर आधारित होती है। वास्तव मे, जैसा कि केन्ज कहते हैं, पूँजी के विशाल स्टाक का सग्रह एक आवश्यक और सबद्ध उपादान है, किन्तु यह बहुतो मे से केवल एक है। 1800 ई० के आसपास इग्लैंड मे पुराने औजार थे, किन्तु शताब्दी के अ त तक उसने अचल पूँजी

क स्टाक का विशाल सग्रह कर लिया था। अत 19वी सदी मे इग्लैड अधिकतम निवेश प्रेरणा की बाहुल्य का सबसे महान युग माना जाता है (पृ० 353)। चिरकालिक उपभोग प्रवृत्ति के सबध म मेरा अपना दृष्टिकोण यह रहा है कि किसी निश्चित अवधि म इसे स्थिर मान लेना उचित होगा, जैसा निस्सदेह कुजनट की दत्त-सामग्री से प्रतीत होता है।[1]

केन्ज वाणिज्यवादियो की प्रशसा करते है कि उनके पास व्यवहारिक बुद्धि के कछ ऐसे अश थ (पृ० 340) जिनकी बाद के अर्थशास्त्रियो ने उपेक्षा की है। रिकार्डो क अवास्तविक अपकर्षणो ने 'आर्थिक सिद्धान्त के निष्कर्षों और सामान्य बुद्धि के निष्कर्षों के बीच एक खाई' पैदा कर दी थी (पृ० 340, 350)।

23वा अध्याय मन्डविल (Mandeville) माल्थस (Malthus) तथा हाब्सन (Hobson) द्वारा बचत उपभोग तथा निवेश के विश्लेषण के गुण तथा दोषो के मूल्यॉकन से समाप्त होता है। इन विचारो पर टिप्पणी की कोई आवश्यकता नही है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि जनरल थ्योरी म सुविकसित सैद्धान्तिक प्रणाली के विचार से लखको के गुण तथा दोषो का मूल्याकन करना अब उस रूप मे सभव हो गया है जोकि पहिले सभव नही था। 1936 से पूर्व और इसके बाद के इन लेखको से सबद्ध साहित्य की कवल तुलना करने से यह पता चल जाएगा कि केन्ज द्वारा निर्मित सैद्धान्तिक ढाचे की तुलना म इन पूर्वगामियों का कार्य कितना अपर्याप्त था।

निजि उद्यम, हितकारी राज्य, एव समाजवाद

23वे अध्याय मे जो प्रश्न उठाए गए थे उनकी व्याख्या 24वे अध्याय मे विशेषकर जनरल थ्योरी के विशालतर सामाजिक अभिप्रायो के सदर्भ मे चलती रही है। क्या केन्जवादी विश्लेषण समाजवाद की ओर ले जाता है, अथवा क्या यह पूँजीवाद और व्यक्तिवाद (individualism) को बचाने का साधन है? क्या यह व्यापार म आत्मनिर्भरता (autarchy) या अबाध व्यापार की ओर ले जाता है? क्या "पूर्ण रोजगार" लक्ष्य है या "पूर्ण निवेश? क्या व्याज दर को कम करन पर अधिक भरोसा किया जाए या उपभोग कार्य को बढाने पर किया जाए, या सार्वजनिक (public) अथवा निजी निवेश के क्षेत्र विस्तृत करने पर भरोसा करना चाहिए?

---

[1]—देखिये इस पुस्तक में पृ० 75 78 और मेरी पुस्तक बिजनिस साईकल्ज ऐण्ट नेशनल इनकम प्रकाशक डब्ल्यू० डब्ल्यू० नार्टन ऐण्ड ० ०, 1951 का 10वा अध्याय।

इन प्रश्नो के वर्णन मात्र से यह प्रकट करने के लिए पर्याप्त होगा कि जनरल थ्योरी ने इतना अधिक विरोध क्यो उत्पन्न कर दिया है ? केन्ज ने मुख्य परपरा-निष्ठ सिद्धान्तो पर आपत्ति की, उन्होने क्रियात्मक नीति[1] से सबद्ध परपरागत रुढियो पर आपत्ति की, और उन्होने उस सिद्धान्त पर भी आपत्ति की, जिस के अनुसार स्वत समजन प्रक्रियाओ पर भरोसा किया जा सकता है। उन्होने आधुनिक अर्थ-व्यवस्था के मुख्य दोषो को, पूर्ण रोजगार लाने की असमर्थता तथा धन एव आय के असम-वितरण के रूप म बनाया।

उन्होने यह तर्क उपस्थित किया कि उनका विश्लेषण परम्परानिष्ठ अर्थशास्त्र द्वारा निकाले गये उन निष्कर्षों से एक दम विरोधी निष्कषो की ओर ल जाता है जिनका सम्बन्ध उन उपायो (उदाहरणार्थ करो का लगाना) के प्रभाव से है, जो आय की वर्तमान असमानता को कम करन के लिय बताय गये थ। अपेक्षाकृत अधिक समानता उपभोग कार्य को बढा देगी, और उपभोग प्रवृत्ति म वृद्धि निवेश प्रेरणा को बढा देगी[2] (पृ० 373)। फिर भी अपनी निष्ठा के एक अग के रूप मे वे 'आय तथा धन की महत्वपूर्ण असमानताओ के लिये सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक तर्कसगति मे विश्वास प्रकट करते हैं यद्यपि उनका यह विश्वास इतनी अधिक असमानताओ म नही था जो 1936 मे विद्यमान थी" (पृ० 374)।

---

[1]—दो मूल्य नीति सिद्धान्त अर्थात स्वर्ण मान तथा सतुलित बजट के विषय में केन्ज ने पहले पर तो प्रत्यक्ष रूप में आपत्ति की, किन्तु दूसरे पर की गई आपत्ति अस्पष्ट थी, यद्यपि समस्त माग को बढाने के साधन के रूप म उन्होने ऋण व्यय का प्रबल रूप से समर्थन किया। स्वर्णमान का स्थानापन्न पहले नम्य विनिमय था, किन्तु बाद में (ब्रेटन वुड्स) उनका स्थानापन्न अन्तर्राष्ट्रीय निवेश और घरेलू पूर्ण रोजगार नीतियो से सबद्ध विनियम दर समजन और सहयोग को लाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सगठन था। सतुलित बजट के सम्बन्ध में उन्होंने ऋण व्यय की विधि के पोषण करने में हिचकिचाहट नहीं की, किन्तु उन्होंने कभी भी ऋण समस्या पर विचार नहीं किया। प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त, उन्होंने अनावर्ती पूँजी कर (capital levy) पर बल दिया और अपना हउ टु प फार द वर (How to Pay for the War) नामक पुस्तिका में उनका झुकाव अब भी इस प्रस्ताव की ओर ही था। उन्होंने न तो बढ़ते हुये सार्वजनिक ऋण के अध्य स्थ बातों पर ध्यान दिया, न ही ऋण व्यवस्था की समस्याओं पर, न ही किसी उन्नतशील आर्थिक व्यवस्था में प्रयाप्त धन परिसम्पत्ति को प्राप्त कराने के लिए सरकारी ऋण के साधन के रूप में उन के महत्वपूर्ण कार्य पर ध्यान दिया।

[2]—यह उन थोड़े से उदाहरणों में से एक है, जिसमें बिना स्पष्ट रूप से यह कहे बिना केन्ज वास्तव में त्वरण (acceleration) सिद्धान्त की सहायता लेते हैं।

उसी तरह से उनका विचार था कि पूँजी निर्माण (capital formation) से सम्बद्ध उनका विश्लेषण सम्स्थापित सिद्धान्त द्वारा प्राप्त किये गये निष्कर्षों की ओर ले जाता है। सम्स्थापकों के अनुसार बचत की उच्च प्रवृत्ति अधिक पूँजी निर्माण का साधन है, और यह माना जाता था कि बचत की उच्च मात्रा को इन दो से बढ़ावा मिलता है (1) उपभोग की निम्न प्रवृत्ति तथा (2) ब्याज की उच्च दर। केन्ज के अध्ययनानुसार इसमें विपरीत स्थिति ठीक है, क्योंकि निवेश के ऊँचे स्तर की ब्याज की निम्न दर और उपभोग की उच्च प्रवृत्ति द्वारा अभिवृद्धि होती है। निम्न तर्क आधारभूत रूप से इन विभिन्न निष्कर्षों का स्पष्टीकरण इस तथ्य में अवश्य मिल जाना चाहिये कि सम्स्थापक, पूर्ण रोजगार की अवस्थाओं पर विचार रहे थे जबकि केन्ज के मन में अपूर्ण रोजगार की अवस्था विद्यमान थी[1]।

केन्ज ने स्पष्ट रूप में कहा कि अत्यन्त प्रगतिशील वर्ग की व्यवस्था करों के उपरान्त प्रतिफल की निवल दर को इतना कम कर देगी, जिससे निवेश का स्तर निम्न हो जायगा, चाहे ब्याज की दर कम ही हो। इस परिणाम की सम्भावना बल्कि सम्भाव्यता के विषय में यह न समझा जाए कि मैं इसको नहीं मानता हूँ (पृ० 377)। अतः एक दम प्रगतिशील कर पूँजी निर्माण के अभिष्टतम परिमाण को रोक सकते हैं। यहां पर और अन्यत्र अर्थशास्त्र में भी यह दुविधा प्रस्तुत हो जाती है कि अत्यन्त प्रगतिशील कर उपभोग के उच्च स्तर के लिये अनुकूल होते हैं, (क्योंकि वे आय की अपेक्षाकृत अधिक समानता की अभिवृद्धि करते हैं)। पर वे निवेश पर हतोत्साही प्रभाव डाल सकते हैं।

केन्ज ने बलपूर्वक इस दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति की कि यदि उपभोग कार्य में कोई बड़ा भारी परिवर्तन न हो तो सतत पूर्ण रोजगार का कार्यक्रम पूँजी निर्माण की इतनी ऊँची दर की व्यवस्था कर देगा कि एक या दो पीढ़ियों में पूँजी की सीमान्त कार्यकुशलता शून्य तक पहुँच जाएगी (अर्थात् जब तक पूर्ण निवेश की स्थिति न प्राप्त हो जाए, पूँजी स्टाक बढ़ता जाएगा) इस प्रकार की स्थिति के घटित होने के लिये आवश्यक शर्तें ये हैं (1) पर्याप्त निरपेक्ष सीमान्त कार्यकुशलता अनुसूची तथा (2) अनुसूची में अपेक्षाकृत उपरिमुखी छोटे हटाव (अर्थात् सुस्त प्रौद्योगिकी तथा जनसंख्या वृद्धि की धीमी गति के कारण अपर्याप्त निवेश निकास)।

---

[1]—सम्स्थापकों की आशा असाम निवेश अवसरों की परिकल्पना पर आधारित थी। इस आधार पर जितनी ही अधिक बचत प्रवृत्ति होगी, उतनी ही अधिक पूँजी निर्माण की मात्रा होगी।

सक्रिया उद्यम की गुणो के प्रति उनकी निष्ठा (जिन्हे वे बहुधा कहा करते थे) के अनुरूप (मितव्ययता की निष्क्रीय गुणो के तुलना मे) उन्होने जब कि किराया जीवो वर्ग की शनै शनै- सुख मृत्यु को आनन्दपूर्वक पहले से देखते हुए भी उन्होंने उद्यमर्त्ता की बुद्धि, उस के निश्चय और उसकी प्रबन्ध कार्यक्षमता की प्रशसा कर डाली (पृ० 376)।

उन्हे व्यक्तिगत स्वत. प्रेरणा और निजी उद्यम मे विश्वास था। वे राज्य समाजवाद की व्यवस्था के पक्ष मे न थे, फिर भी उनका विचार था कि राज्य के कार्यों को बढाया जाना चाहिए। "राज्य को उपभोग प्रवृत्ति पर आशिक रूप से कर आरोपण की योजनाओ द्वारा, कुछ व्याज की दर निर्धारित करके, और कुछ सम्भवत दूसरे उपायो से मार्ग दर्शक प्रभाव डालना होगा" (पृ० 378)। उनका विचार था कि पूर्ण रोजगार के लिए व्याज की निम्न दर द्वारा बैंकिंग नीति ही प्रर्याप्त निवेश की व्यवस्था नही कर सकेगी। सार्वजनिक निवेश (यद्यपि केन्ज ने इस पर विस्तार से विचार नही किया) की भी आवश्यकता पडेगी। मिश्रित कम्पनियो ने—जिनमे सार्वजनिक प्राधिकारी, निजी स्वत प्रेरणा से मिल कर—बहुत से देशों मे पहिले ही महत्वपूर्ण कार्य किया है और इस प्रकार के उद्यमो का विस्तार किया जाना चाहिये।[1] सभी उन्नतशील देशों मे गृह निर्माण अर्थात् कम लागत के सार्वजनिक मकान, उधार, बीमा और गारन्टी देने वाले कार्यों के लिए निवेश पर राज्य का नियन्त्रण, एक सुनिश्चित नीति बन गई है। उपभोग कार्य को बढाने के हेतु कर-नीति के साथ पर्याप्त सार्वजनिक तथा निज निवेश को प्राप्त करने के लिए राज्य के जो कार्य हैं, ये इस प्रकार के उपाय जिनसे बहुत आशा की जा सकती है। 'उत्पत्ति के साधनो पर स्वामित्व प्राप्त करना ही राज्य के लिए कोई महत्वपूर्ण बात नही है'' (पृ० 378)। आवश्यकता तो इस बात की है कि "उपभोग प्रवृत्ति और निवेश प्रेरणा के बीच समजन स्थापित किया जाए" (पृ० 379)। उनका विचार था कि पहले की अपेक्षा अब आर्थिक जीवन का समाजीकरण करने की कोई आवश्यकता नही है।

यदि एक बार स्थिर पूर्ण रोजगार प्राप्त हो जाता है, तो सस्थापित सिद्धात शक्तिशाली हो जायेगा। पूर्ण रोजगार की अवस्था मे यह आशसा की जा सकती है कि मूल्य पद्धति मितव्ययता से और बुद्धिमता से उत्पत्ति के साधनो को ठीक दिशाओ मे लगा सकती है। कमी अपर्निदिष्ट रोजगार की नही हैं, बल्कि अपूर्ण रोजगार की

---

[1]—इस और इसके बाद आने वाले वाक्य में जो उदाहरण दिए गए हैं, वे केन्ज के नहीं हैं।

है। आर्थिक शक्तियो की स्वच्छंद क्रियाशीलता पर यह विश्वास किया जा सकता है कि यह उत्पत्ति के साधनो का कुशल उपभोग सम्भव बना देंगे (पृ० 379)। केन्ज की स्थिति के समथन मे उस चमत्कारी उत्पादिता तथा कार्यकुशलता को उद्धत किया जा सकता है जिसे समस्त माग के उच्च स्तर की उद्दीपन से 1941 से लेकर अब तक अमरीकी अर्थ व्यवस्था ने करके दिखलाया है।

केन्ज व्यक्तिवाद तथा स्वतन्त्र उद्यम के लाभो से, अर्थात् व्यक्तिगत लाभ, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा, व्यक्तिगत चुनाव, और इन सस्थाओ मे प्रोत्साहित जीवन की विवधता से भलीभाति परिचित थे। वस्तुत केन्ज की यह धारणा थी कि सरकार के उन कार्यो का विस्तार किया जाए (जो कि "उपभोग प्रवृत्ति और निवेश प्रेरणा मे समजन स्थापित करते हो) और वही 'वर्तमान आर्थिक प्रणाली को विनाश से बचाने के लिए" और 'व्यक्तिगत स्वत प्रेरणा के सफलतापूर्वक कार्य" की अभिवृद्धि का 'एक मात्र व्यवहारिक साधन है (पृ० 380)। विश्व बेरोजगार को सहन नही करता रहेगा। आवश्यकता है ठीक विश्लेपण की जो दक्षता तथा स्वतन्त्रता सुरक्षित रखते हुए इस रोग को ठीक कर दे' (पृ० 381)।

क्या केन्ज, केन्जवादी नही रहे ?

अभी हाल ही मे यह बहुधा कहा जाता है कि अपने जीवन के अन्त की ओर, नीति की बातो से सबद्ध केन्ज के विचार पर्याप्त बदल गए थे और वस्तुत बहुत हद तक सस्थापित स्थिति की ओर लौट गए थे।[1] यदि केन्ज दस या बीस वर्ष और जीवित रहते, तो इसकी बहुत ही सभावना है कि उनकी सैद्धान्तिक और नीति-विषयक सकल्पनाए नए ढग से विकसित होती। उनका मस्तिष्क स्थैतिक नही, था फिर भी यह अत्यन्त सन्देहजनक है कि उनके विचार पुरानी सकल्पनाओ की ओर लौट जाते। इधर उधर की बातो के सुनने के अतिरिक्त जो कि बहुधा परस्पर विरोधी होती हैं, और बहुत सीमा तक अविश्वसनीय भी होती है उन का एक मनोरजक लेख है जो उन की मृत्यु के बाद **(ईकनॉमिक जर्नल)**[2] के जून 1946 के

---

[1]—छोटे मोटे परिवतन करके इस परिच्छेद का एक भाग मेरे "केन्ज आन इकनामिक पालिसि" नामक अध्याय से लिया गया है, हेरिस की पुस्तक द न्यु इकनामिक्स, प्रकाशक ऐल्फ्रेड एण्ड नाफ 1947, पृ० 203 207 पर है।

[2]—द बैलस ऑव पेमेंट्स ऑव द यूनाइटिड स्टेट्स (The Balance of Payments of the United States) इकनामिक जर्नल, जून 1946।

अक मे प्रकाशित हुआ था। अमरीका मे भुगतान सन्तुलन को विवेचन करते हुये उनका लेख स्वचालित शक्तियो और सरकारी हस्तक्षेप के कार्य के सम्बन्ध मे कुछ अपेक्षाकृत बडे-बडे प्रश्न खडे कर देता है।

मैंने इस लेख को ध्यानपूर्वक पढा है किन्तु मुझे इस मत के समर्थन मे ऐसी कोई बात नही मिलती जो उनकी आधारभूत विचारधारा मे कोई परिवर्तन (कभी-कभी कहे गये "पूर्ण मत-परित्याग" की बात तो रही दूर) को सूचित करे। केन्ज ने सदा ही आर्थिक जीवन मे स्वचालित शक्तियो के महत्त्वपूर्ण कार्य पर बल दिया है। वस्तुत यह किसी और तरह से हो भी नही सकता था, क्योंकि जिस प्रकार का राज्य नियमनवाद (Interventionism) उन्होने बताया था (मुख्यतया मुद्रा और राजकोषीय नीति से सबद्ध) उसका उद्देश्य समस्त माँग को प्रभावित करना था, उसके परे, यह माना गया था कि स्वचालित शक्तियाँ नियत्रण मे रखी जायेगी।

यदि हम "पूर्ण रोजगार के अनुरूप (जितना भी सभव हो सके) निपज का समस्त परिमाण स्थापित करने मे सफल हो जाये, तो इस बात से प्राग सस्थापित सिद्धात फिर से लागू हो जाता है" (पृ० 378 तिरछे लिखे शब्द मेरे अपने हैं)। केन्ज कभी भी सत्तावादी (authoritarian) सरकार के पक्ष म नही थे। जनरल थ्योरी मे केन्ज ने यह कहा कि उनका सिद्धान्त "अपने अभिप्रायों मे कुछ थोडा-सा रूढिवादी" है (पृ० 377)। "राज्य समाजवाद का ऐसी प्रणाली के विषय मे उन्होने कोई स्पष्ट चिन्तन" नही किया जिसमे समाज के अधिकाश आर्थिक जीवन को अपने अधिकार मे ले लिया जा सकता हो (पृ० 378)। साथ ही उन्हे यह मानने का भी ऐसा कोई कारण प्रतीत नही होता कि वर्तमान प्रणाली आजकल प्रयोग मे लाय हुए उत्पत्ति के साधनो का बुरी तरह से दुरुपयोग करती है (पृ० 379)। निजी स्वत प्रेरणा तथा उत्तरदायित्व के लिये फिर भी बहुत बडा क्षेत्र बना रहेगा। इस क्षेत्र मे व्यष्टिवाद के परपरागत लाभ फिर भी बने रहगे (पृ० 380)। इन लाभो के नाम उनके अनुसार इस प्रकार हैं—"दक्षता", विकेन्द्रीकरण" (decentralization) और स्वहित की भावना (play of self-interest) (पृ० 380)। स्वहित आकर्षण के विरुद्ध प्रतिक्रिया अत्यधिक दूर चली गई होगी (पृ० 380) "व्यक्तिगत स्वतत्रता की सर्वश्रेष्ठ सुरक्षा" व्यष्टिवाद है (पृ० 380) "जीवन की विविधता की" भी यह "सर्वश्रेष्ठ सुरक्षा" है, जिसकी हानि "समाग (homogeneous) अथवा समग्रवादी (totalitarian) राज्य की महानतम हानि" है (पृ० 380)। व्यष्टिवाद उन परपराओ की रक्षा करता है, जोकि पहिली पीढियो की अत्यन्त सुरक्षित एव

सफल पसन्द है (पृ० 380)। "प्रयोग परंपरा और कल्पना की सहचरी" होने से 'यह भविष्य को सुधारने के लिये अत्यधिक शक्तिशाली साधन है" (पृ० 381)। "आज-कल की सत्तावादी राज्य प्रणालियां बेरोजगारी की समस्या को कार्यकुशलता तथा स्वतन्त्रता को खोकर हल करती प्रतीत होती है" (पृ० 381)।

यह बात अच्छी तरह ध्यान मे रहे कि इन शब्दो को मरणोपरात प्रकाशित लेख से न लेकर 1936 की जनरल थ्योरी से लिया गया है। यदि वे शब्द 1946 मे लिखे गये होते, तो बहुत से इस निष्कर्ष पर पहुच जाते कि केन्ज ने "पूर्वमत-परित्याग कर दिया है।"

1946 के लेख मे भी उन्होंने वैसी ही बाते कही, किन्तु व्यष्टिवाद अथवा स्वचालित शक्तियो के पक्ष मे निश्चय ही उससे अधिक नही कहा है, जोकि मैंने ऊपर उद्धृत किया है। इस अन्तिम प्रकाशन मे सबसे महत्त्वपूर्ण शब्द इस प्रकार है (तिरछे छपे शब्द मेरे है) —

> यदि सब ठीक ठीक चलता रहे जो दीर्घकाल मे अधिक आधारभूत शक्तियां सतुलन की ओर ले जाने मे लगी होगी।...*मैं अपने समकालीन अर्थशास्त्रियो को स्मरण कराना चाहता हूँ, और यह पहली बार नही है कि सस्थापित शिक्षण मे बडे महत्व के कुछ ऐसे स्थायी सत्य पाये जाते हैं, जिनकी हम आज इसलिये उपेक्षा कर देते है क्योकि हम उन्हे उन सिद्धान्तों से जोड देते हैं जिनको हम बिना शर्तों के स्वीकार नहीं कर सकते।* इन बातों मे ऐसी कुछ गहरी अन्तर्धारायें काम करती हैं, जिन्हे हम प्राकृतिक शक्तियाँ कह सकते है, अथवा कुछ अदृश्य कारण, जोकि सन्तुलन की ओर ले जाने का कार्य कर रहे होते है। यदि ऐसी स्थिति न होती तो हम उतना भी आगे नही चल सके होते, जितना कि गत कई दशियो मे चल पाये है।[1] ..

मेरी बात का गलत अर्थ नही लेना चाहिये। मैं नहीं मानता कि सस्थापित उपाय अपने आप ही काम करेंगे या हम उन पर भरोसा कर सकते हैं। हमें अपेक्षाकृत तेज और कम कष्टदायक सहायताओ की आवश्यकता है, जिनमे विनिमय की घट-बढ और समग्र आयात नियन्त्रण सबसे अधिक महत्वपूर्ण है...। यदि ब्रेटन वुड्ज तथा वाशिंगटन के प्रस्तावो को एक साथ लिया जाये, तो उनका सबसे बडा गुण यह है कि वे लाभदायक दीर्घकालीन सिद्धान्त का मेल,

---

[1]—वही पृ० 185।

आवश्यक कार्य साधको के प्रयोग ही करा देते हैं। इसी कारण से ही मैंने हाउस आव् लाड्ज मे बोलते हुए यह कहा था— 'कि हमने आधुनिक प्रयोग तथा आधुनिक विश्लेषण से जो सीधा है, वह यह है कि हम एडस्मिथ की बुद्धिमानी का बहिष्कार न कर उसको कार्य मे लाने का प्रयत्न कर रहे है।[1]

इन कथनो मे से किसी मे भी ऐसी कोई बात नही है जो कि जनरल थ्योरी के पूर्व मत का परित्याग करने के निकट तक भी पहुँचती हो। वस्तुत जैसा हम देख चुके हैं, जनरल थ्योरी मे पूर्ण रोजगार व्यवस्था के ढाँचे के अन्तर्गत व्यष्टिवाद के पक्ष मे और स्वचालित शक्तियो की महत्ता के सबध मे समरूप कथन है।

क्योकि विशेष रूप से यह मरणोपरान्त प्रकाशित लेख अन्तर्राष्ट्रीय विषयो का तथा बहुपक्षीय व्यापार को अधिक से अधिक सीमा तक प्रत्यावतन हेतु सयुक्त राज्य अमरीका तथा ग्रेट ब्रिट्रेन के विशेषत उन सयुक्त प्रयत्नो का विवेचन करता है, जिनको कार्यान्वित करने के लिये केन्ज ने इतना कुछ किया, अत बाद के वर्षों मे इस विशेष दिशा मे केन्ज की विचारधारा मे यथाकथित परिवर्तन के सम्बन्ध म कुछ कहना आवश्यक हो जाता है। 1941 मे वाशिंगटन और लदन मे केन्ज से मुद्रा और वित्तीय सबधो मे जो विचार विमर्श हुआ, उससे यह प्रकट होता है कि बहुपक्षीय व्यापार के प्रति उनके दृष्टिकोण मे उल्लेखनीय परिवर्तन हो रहा था। कुछ भी हो यह परिवर्तन उनके आर्थिक दर्शन मे किसी आधारभूत परिवर्तन से सबद्ध नही था, बल्कि क्रियात्मक नीति के रूप मे उस बात से सम्बन्धित था जो सभव एव वास्तविक प्रतीत होती थी। 1941 की समाप्ति के आस-पास केन्ज को अन्तत विश्वास हो गया था कि अतर्राष्ट्रीय आर्थिक तथा वित्तीय मामलो मे निश्चित कार्य करने के लिये अमरीका पर पर्याप्त भरोसा किया जा सकता है और यह कि बहुपक्षीय व्यापार करने वाले जगत की अभिवृद्धि हेतु अग्रेजी अमरीकी सहयोग के प्रोग्राम को चलाने का जोखिम उठाना उचित सिद्ध होगा। 1920 29 के मध्य, अमरीकी विविक्ति वादी टैरिफ नीति को हल (Hull) के व्यापारान्वय (trade agreement) तथा राष्ट्रपति रुज्वेल्ट के उधार-पट्टे कार्यक्रम ने विस्थित कर दिया। अमरीकी अर्थव्यवस्था के साथ बँधने के खतरे से केन्ज पहले भलिभाँति परिचित थे। ध्यान से देखिये, 1920 29 के मध्य अपेक्षी (speculative) तथा व्यग्र विदेशी निवेश, जिसके पीछे तेज उधार आकुचन (contraction of lending), तेजी, 1929 का "बस्ट" (Bust) और उसके अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिवाद आये। इस प्रकार के ससार मे उनका यह दृढ विश्वास था कि

---

[1]—वही पृ० 186।

ब्रिटेन "स्टर्लिंग क्षेत्र" और "भुगतान समझौतों" के आधार पर अपने भुगतान सतुलन को अपने आप ही सभाले, अपेक्षा इसके कि वह अपने आप को उस बहुपक्षीय विश्व बाजार मे स्वचालित शक्तियो के जोखिम को उठाये, जिसमे तीव्र और देखने के ही प्राय स्पष्ट उच्चावचन लागू होते है।

किन्तु 1941 के अन्त तक उन्हे विश्वास हो गया था कि अग्रेजी अमरीकी सहयोग मे एक ऐसी नई नीव डाली जा सकती है, जिसके ऊपर बहुपक्षीय व्यापार करने वाले जगत का निर्माण किया जा सकता है नही तो कम-से-कम यह बात तो ऐसी थी ही कि जिसके करने मे जोखिम को भी मोल ले लिया जाये। एक अवसर पर 1941 के शरद् ऋतु म जब बहुपक्षीय व्यापार की महत्ता, जोकि उन्नत औद्योगिक देशो मे रोजगार के उच्च स्तरो पर और अधिक पिछडे हुए क्षेत्रो मे विकास से सबद्ध योजनाओ पर आधारित थी व्यक्तिगत वार्त्तालाप मे उनके सामने रखी गई, तो उनका एकदम उत्तर यह था—"हा उस आधार पर तो हम सभी को बहुपक्षीय व्यापार को अपनाना चाहिये।'

ऊपर उद्धृत किये गये कथन को कठिनता से ही पूर्व-मत-परित्याग कहा जा सकता है। इससे पूर्व ही 1936 मे उन्होने जनरल थ्योरी मे इस प्रकार कहा था—

> यदि कोई देश अपनी घरेलू नीति के द्वारा पूर्ण रोजगार स्वय प्राप्त करना सीख ल तो उन महत्वपूर्ण आर्थिक शक्तियो की कोई आवश्यकता नही है, जिनके विषय मे यह सोचा जाता कि वह एक देश के हित को अपने पड़ौसी देश के हित के विरुद्ध कर देती है। अतर्राष्ट्रीय व्यापार जैसा अब है, वह वैसा नहीं रहेगा, अर्थात यह एक अन्तिम कार्य साधक है जिससे घर पर रोजगार बनाये रखने के लिये अन्तिम विदेशी बाजारो मे बिक्री करने और क्रयो को रोक देने से प्राप्त होगा 'किन्तु पारस्परिक लाभ की अवस्थाओ मे पदार्थो और सेवाओ (services) के ऐच्छिक और अबाध विनिमय होना चाहिये (पृ० 382-383)।

इसी दृष्टिकोण को उन्होने ईकनॉमिक जर्नल मे प्रकाशित 1946 के लेख मे फिर दोहराया। *बहुपक्षीय व्यापार करने वाले ससार के निर्माण हतु प्रयत्न करना* ही उचित होगा, किन्तु यह सयुक्त राज्य अमरीका के सक्रिय अतर्राष्ट्रीय सहयोग के बिना सम्भव नही हो सकता। फिर भी वे यह कहते है (तिरछे लिखे शब्द मेरे हैं।[1]—

[1]—वही।

अमरीका प्रशासन के वर्तमान दृष्टिकोण से, और जैसा मैं समझता हूँ अमरीकी जनता के दृष्टिकोण से भी कुछ अस्थायी सतुष्टि प्राप्त की जा सकता है। जैसाकि व्यापार और रोजगार पर अतर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाये जाने के विचारार्थ प्रस्तावो से स्पष्ट होता है सयक्त राज्य अमरीका की ओर से प्रस्तुत किये गये थे। वे स्पष्ट एव व्यापक प्रस्ताव हैं जिनका स्पष्ट उद्देश्य एक ऐसी प्रणाली को उत्पन्न करने का था जिसम कि सस्थापित प्रणाली अपना कार्य स्वतत्रता पूर्वक कर सके।

जहा तक 1930-39 के मध्य अमरीका के प्रति उनके दृष्टिकोण का सबध है और जिसकी ओर मेने ऊपर भी सकेत किया है, यह बात ध्यान देने की है कि वे यहा पर "इस महान वस्तुनिष्ठ उपागम" की ओर सकेत करते है, जिसपर कुछ वर्ष पूर्व हमे यह विश्वास नही होता कि यह एक अच्छी व्यवस्था प्रदान कर सकता है।

अत यहा पर ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे यह प्रतीत हो कि उनकी आधारभूत आर्थिक चिंतना मे कोई परिवर्तन हुआ हो जो कुछ भी परिवर्तन उनके दृष्टिकोण में हुआ वह तो केवल अतर्राष्ट्रीय आर्थिक मामलो मे अमरीका के कार्य के सम्बन्ध मे था।[1] उनका मत था कि अमरीकी सरकार के सरकारी प्रोग्राम के आधार पर बहुपक्षीय व्यापार करने वाला जगत सफल हो सकता है। किन्तु यदि प्रोग्राम को त्याग दिया गया, या अन्य कारणो से यह असफल हो जाये, तो "हम और अन्य सभी करने का विचार करेंगे।"[2]

अत मे, केन्ज ने बिल्कुल निस्सकोच इस प्रश्न को खडा कर दिया है कि क्या उनके प्रस्तावो की "उन प्रयोजनो मे अपर्याप्त जडे हो सकती हैं, जोकि राजनीतिक समाज के विकास को निर्धारित करने हैं" (पृ० 383)। उन्होने उत्तर जानने की कोई परवाह नही की। फिर भी उन्होंने यह विश्वास व्यक्त किया कि यदि युद्धकालीन

1—एक अनुरूप स्थिति उस टिप्पणी का है जिसके सम्बन्ध में बार बार सुना जाता है कि श्री A ने, जोकि प्रतिकारी (compensatory) राजकोषीयनीति के अनुयायी हैं, अपना मत बदल लिया है, क्योंकि वास्तव में उन्होंने 1930-39 में विस्तारवादी नीतियों का समर्थन किया था। जबकि 1947 से 1952 तक उन्होंने सरकारी व्यय पर कटौती और भारी कर नीति के लिए बल दिया था। एक व्यक्ति शरद ऋतु में ओवरकोट, और ग्रीष्म में तृण टोप (straw hat) पहन सकता है और उन पर असगति का कोई आरोप नहीं लगेगा, किन्तु बदली हुई आर्थिक स्थितियों के प्रति नीति अनुकूल के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता।

2—केन्ज इकनामिक जर्नल, जून 1946 पृ० 186।

वर्षों के विध्वसात्मक अनुभवों से उत्पन्न साहस पूर्णउद्यमो को करने की मनोवृत्ति को न सोचा जाये तो "अर्थशास्त्रिया तथा राजनीतिक दार्शनिको के विचार, उससे अधिक शक्तिशाली है जितने कि वे सामान्यतया समझे जाते हैं।" (पृ० 383)। उनका विचार था कि निहित स्वार्थो (vested insterests) की शक्ति "विचारो के धीरे धीरे अतिक्रमण' की तुलना मे बढा-चढा कर कही गई हैं (पृ० 383)। अंतिम विश्लेषण मे विचार न कि निहित स्वार्थ, सदा खतरनाक अथवा अनिष्टकारी होते है (पृ० 384)।

अतिपूर्ण रोजगार

1936 से अब समय बहुत बदल गया है। यदि केन्ज को यह पता होता कि इतिहास इतनी द्रुत गति से बदलेगा तो सम्भवत वे अपनी पुस्तक को किसी दूसरे ही ढग से समाप्त करते। द्वितीय विश्वयुद्ध इस परिमाण पर लडा गया कि जिसकी पहले कल्पना भी नही की गई थी। सैनिक कार्यो के लिये उपयोग मे लगाए साधनो की उच्च प्रतिशतता युद्धोपरान्त विशाल पुनर्संग्रह (restocking) और पुर्ननिमाण की तेजी, शीत युद्ध और उसके फलस्वरूप भारी सुरक्षा बजट, श्रमिक सरकारो की भलाई की माग—इन सबने कुछ समय के लिये अपूर्ण रोजगार की किसी भी सभावना को समाप्त कर दिया। समस्या तो बहुत से देशो मे अतिपूर्ण रोजगार की बन गई। ब्रिटेन, स्केण्डिनेविया के देशो, हालैंड और अन्यत्र भी, सरकारो ने आर्थिक जीवन पर अपना नियन्त्रण खूब बढा दिया। पूर्ण रोजगार किसी विचारपूर्वक नीतिक के फलस्वरूप न होकर मुख्यतया युद्ध और युद्धोपरात विकास के कारण उत्पन्न हुआ था। निस्सदेह यह आशका सदा बनी रहती थी कि अमरीका मे आस्थगति (deferred) माग की असतुष्टियाँ (backlogs) और विशाल सुरक्षा एव विदेशी सहायता बजट किसी न किसी दिन अत को प्राप्त होगे, जिनसे प्रधान औद्योगिक देश मदी की स्थिति म पहुँच जायेगा। किन्तु कम से-कम यूरोप की श्रमिक और समाजवादी सरकारो मे यह दृढ निश्चय किया हुआ था कि कुछ भी हो, पूर्ण रोजगार को बनाये रखा जाये और उपभोग स्तर को बढाया जाये।

1952 तक किसी भी बडे उद्योग (उदाहरणार्थ कपडा उद्योग) की माग मे शिथिलता से इग्लैंड पर कोई विशेष प्रभाव नही पडा। समस्त माग तो ऊंचा ही बनी रही, किन्तु यत्र तत्र बेरोजगारी दिखाई देने लगी। न तो इस प्रकार की समस्या को केन्ज ने पहले से सोचा था और न ही गभीरता से इसकी तुलना व्यापक

(over-all) अपर्याप्त माग की सामान्य समस्या से की जा सकती है। किन्तु फिर भी यह एक जटिल समस्या है। यदि केवल समस्त माग के विस्तार से आंशिक बेरोजगार को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया, तो इसका सीधा-सादा परिणाम स्फीति हो जाना होगा। यह सत्य है कि अधिक, न कि पर्याप्त समस्त माग बनाये रखने से और श्रम को विनिधान (re-locate) करने के हेतु किये गये पुर्नशिक्षण एव आयोजित कार्यक्रमो से (परिवहन भत्ते और नये कार्य स्थलो पर मकान के प्रबन्ध) निश्चित रूप से बहुत कुछ कर सकता है। किन्तु मानवीय स्वभाव, ह्रासोन्मुख उद्योगो को सहारा देने के लिये 'stay put'' करना होता है, तथा श्रम गतिशीलता की अभिवृद्धि करने के लिये परिश्रम करना।

अधिकाश प्रगत प्रजातन्त्रीय देशो मे पर्ण रोजगार की स्थिर नीति इतनी शीघ्र बन गई है, जितनी कि केन्ज़ ने कभी सभव न मानी थी और वस्तुत युद्धकालीन तथा युद्धोपरान्त स्थितियो के बिना सभव भी नही थी। बेरोजगारी की अपेक्षा, प्रत्येक स्थान पर राजनीतिज्ञो के सामने समस्या स्फीति दाब (inflationary pressures) की, और पूर्ण रोजगार के प्रतिरूप मे नम्य आर्थिक प्रणाली के बनाये रखने के कठिन कार्य की समस्या है।

फिर भी केन्ज़ के आलोचको ने किसी पूर्ण रोजगार वाले समाज मे स्फीति और मजदूरी नियत्रण के खतरो को सम्भवत बढा चढा कर कहा हो। सयुक्त राज्य अमरीका मे 1946-47 की मूल्य स्फीति शान्तिकालीन पूर्ण रोजगार का परीक्षण नही, बल्कि युद्ध की उपज थी। वास्तव मे जनवरी 1948 से दिसम्बर 1948 तक अमरीका मे मूल्य तथा मजदूरी नियत्रण न होते हुए भी बिना स्फीति के पूण रोजगार की स्थिति थी। जनवरी 1948 मे थोक मूल्य स्तर 166 था, दिसम्बर 1948 म केवल 162 रह गया, सपूर्ण वर्ष का औसत 165 था, जनवरी मे बेरोजगारी केवल 2,065,00 और दिसम्बर मे 1, 941,000 अथवा श्रम शक्ति (labour force) का 3 1 प्रतिशत थी। जब बेवरिज ने केवल ३ प्रतिशत बेरोजगारी के लक्ष्य का सुझाव दिया (फुल इम्पलायमेंट इन ए फ्री सोसाइटी) तो इस अक को काल्पनिक समझ कर इसका उपहास उडाने की सामान्य प्रवृत्ति थी। वास्तव म अब, जैसाकि प्रत्येक इस बात से सहमत होगा, केवल ■ प्रतिशत की लक्ष्य प्राप्ति उस देश के लिए कही अधिक कठिन है, जिसमे अमरीका की भाति उच्च मौसमी (Seasonal) बेरोजगारी और शीघ्र क्षेत्रीय समजन हो। यह ग्रेट ब्रिटेन जैसे छोटे, सघन, तथा समाँग देश के लिए इतना कठिन नही होगा। फिर भी 1948 मे वास्तव सयुक्त राज्य अमरीका ने मूल्य स्फीति तथा मूल्य नियत्रणो के बिना इस लक्ष्य को बनाये रखा। यह सत्य है कि 1941 मे और

1950 के पूर्वार्द्ध म बेरोजगारी के 5 5 प्रतिशत तक पहुच जाने के कारण स्फीति दबाव कुछ कम हो गया था। किन्तु यह भी उन अर्थशास्त्रियो द्वारा सुझाए हुए सुरक्षा की सीमा (M r_e n f safety) स बहुत नीचे है जिन्होने किसी पूर्ण रोजगार वाले समाज म मजदूरी और मूल्य स्फीति के खतरो पर बल दिया है। इस के अतिरिक्त बेरोजगारी आमत रूप स 3 प्रतिशत म बहुत नीचे होन हुए भी फरवरी 1951 स जनवरी 1953 तक के दो वर्ष के काल म थोक मूल्य 116 5 (नया सूचकाक) स गिर कर 100 हो गए।

यदि केन्ज जीवित रहते तो निश्चय ही वे अपनी चितना की सपूर्ण प्रणाली पर आलोचनात्मक दृष्टि म पुनर्निरीक्षण करत।[1] उनका ऐसा मस्तिष्क नही था जोकि अनम्य हो। वे सदा ही नए नए विचारो की खोज करने म और पुराने को तिरस्कार करने म सबस आगे थे चाहे ये पुराने विचार उनके अपने ही क्यो न हो। और विशेष कर वे किसी पूर्ण रोजगार वाले समाज की क्रियात्मक समस्याओ की ओर अपना ध्यान निश्चय ही आकृष्ट करते। जैसा स्वय ही उन्होने कहा था (पृष्ठ 383) इसके लिए विभिन्न प्रकार का एक ग्रथ जिसम केवल रूप रेखा मात्र म ही उन क्रियात्मक उपायो को दर्शाया जाय जिनमे वे धीरे धीरे परिवर्तित होते रहेगे अपेक्षित होगा।

[1]—आर्थ के स्तर पर उनके अन्तिम विचार जानने के लिये इस पुस्तक का पृ० 157 देखिये।

शब्दावली (Glossary)

हिन्दी	English
अत प्रज्ञा	intuition
अग्रिम	advances
अचल	fixed capital
अति निवेश	over investment
अधिक बचत	over savings
अधिव्यय	dissaving
अधोमुखी	downward
अनकदी	illiquidity
अनन्त	infinity
अनम्य	rigid
अनावर्ती	non recurring.
अनिश्चितता	agnostic
अनुक्रम	sequence
अनुभवाश्रित	empirical
अनुपात	ratio
अनुरूपी अवस्थाएँ	corresponding phases
अनुलोमानुपात	direct proportion
अनुसूची	shedule
अन्तर्जात	endogenous
अनिवेश	disinvestment
अपनिर्दिष्ट	misdirected
अपरिवर्तनीय	sticking
अपस्फायक	deflator
अपूर्ण रोजगार	under employment
अपूर्वग्राही	non dogmatic
अप्रगामी ,	stationary
अप्रचलन	obsolescence
अमान्य	invalid
अर्जक परिसम्पत्ति	earning cost
अर्थमिति नमूने	econometric model
अर्थमिति व्यवसाय चक्र ढाँचे	econometric business model cycles
अर्द्ध संकट विन्दु	semicritical points
अवमूल्यन	deflation
अवयव	elements
अवस्था	phase
अवास्तविक मुद्रा मूल्य	nominol monetary value
असंचय	dishoarded
असंतुष्टि	backlog
असंदिग्ध प्रस्थापन	indubitable proportional
असलाग	sticky
असंतुलन	disequilibrium
असममिति	asymmetry
आकुंचन	contraction
आत्मनिर्भता	autarchy
आत्मसीमनीय	self limiting
आदान	input
आय प्रवाह धारा	income stream
आय-वितरण वक्र	income distribution curve

आरक्षण	reserve
आरेख	diagram
आर्थिक प्रौढ़ता	economic maturity
आशा	expectation
आशासित आगम	expected proceed
आश्रित चर	dependent variable
आस्थगित	deferred
इकाई	unit
इकाई का विकल्प	choice of unit
ईक्विटी शेअर	equity shares
उच्च स्थानापन्ति सीमा	high elasticity of substitution
उच्चावचन	fluctuation
उत्पादन माल	producer's goods
उत्क्षेप	upswing
उद्यम	enterprise
उद्यम कर्ता	enterpreneur
उधार आकुंचन	contraction of lending
उपज	products
उपभोक्ता माल	consumer's goods
उभोक्ता व्यय	consumer spending
उपभोग कार्य	consumption function
उपभोग मानक	consumption standard
उपरिमुखी उत्क्रम	upward thrust
उपसिद्धान्त	corrolary
उपादान	factor
उपादान आय	factor income
ऋण पत्र	security
एकांश लागत	unit cost
ऐतिहासिक	historical
ऐहतियाती	precautionary
औद्योगिक	technological
औसत	average
औसत संख्या	mean figure
कनसोल	consol
कर्जा निधि	loan fund
कारक लागत	factor cost
कारणता	causation
कार्य साधक	expedient
कार्यात्मक सबन्ध	functional relation
काल विश्लेषण	period analysis
किरायाजीवी	rentier
कुल	gross
केन्ज के पूर्व भिन्न मतावलम्बी	Pre-Keynesian dissenters
क्षम्य	premissible
क्षरण	leakages
खगोलीय	astronomical
खड़ी रेखा	vertical line
खिंचाव	*drawing*
घर्षण	friction
घर्षण प्रतिरोध	frictional resistance
चक्रीय प्रवाह	circular flow
चर	variable
चल	moving
चलन	circulation

चालू व्यय	running
चिक्कण वक्र	smooth curve
चित्तप्रवृत्ति	disposition
चिरकालिक	secular
छटनी	cutbacks
ढलान	slope
तकनीकी	technological
तकनीकी गुणांक	technological coefficient
तटस्थ	neutral
तरलता	liquidity, fluidity
तुलनात्मक अंश	proportion
तुलनात्मक स्थैतिकी	comparative statics
तेजड़िए	bull
तेजी और मंदी का चक्र	cycle of boom and depression
त्वरक	acceleration
त्वरण	accelerator
दत्त सामग्री	data
दीर्घकालीन स्थिर अनुपात	long-run contact ratio
दीर्घकालीन आशा साओं की अवस्था	state of long-term expectation
दूषित	sophisticated
देख रेख	upkeep
दोलनाशित	oscillation perse
द्रव्य का आय वेग	income velocity of money
द्रव्य माग	money demand
द्राव्यिक दर	money rate
द्रुतगामी अवमूल्यन	racing delation
द्विभाजन	dichotomy
धारणा	conception
नकद रुपए	ready money
नकद सौर	money bargains
नकदी तरजीह	liquidity preference
नकदी संकट	liquidity crisis
नम्यता	flexibility
नव संस्थापक	new classical
नव संस्थापित	new classical
परम्परानिष्ठता	outlook
नवीन प्रत्यात्मक योजना	new conceptional scheme
निकासी	outlets
निजी व्यवसाय	private business
निपज	output
नियमनो	formulations
नियोजित साधन	employed resources
निरपेक्ष	absolute
निर्माण	manufacturing
निर्वाह सूचकांक	cost of living index
निवल	net
निवेश	input investment
निवेश व्यय	investment outlay
निवेश स्फुरण	investment sprut
निष्क्रिय शेष धन	idle balances
निष्फल	sterile
निसचय	hoarding

निहित स्वार्थ	vested interest	स्वतन्त्र प्रतियोगिता मूलक प्रणाली	freely competetive system
नूतन प्रक्रिया	innovational process	पूर्ण रोजगार	full employment
न्यूनतम	minimum	पूर्वधारणा	assumption
पड़ी रेखा	horizontal line	पूर्व विशिष्ट	carry over
पत्र मुद्रा	script money	प्रक्रिया	process
परम्परानिष्ठ सस्थापक मोर्चा	orthodox classical front	प्रणाली	mechanism
		प्रतिकारी	compensatory
परावर्तन बिन्दु	turning point	प्रतिक्रियाशील	reactionated
परास	range	प्रतिधृत कमाई	rationed earnings
परिकल्पनाएं	speculations hypothesis	प्रतिरूपी	typical
		प्रतिस्थाप्य निवेश	replacement investment
परिचालन	operation circulation	प्रतीयमान	vertual
परिमाण	magnitude	प्रभावी माग	effective demand
परिमाण सिद्धांत का उपागम	quantity theory approach	प्रयोजन	motive
		प्रवसन	migration
परिवर्तन	turn	प्रवृत्ति	trend
परिवर्तन विदरे	rate of change	प्राचल	parameter
पणकी दर	analysis	प्राप्त	realised
परिसपत्ति	asset	प्रेरित	induced
परिसमापन	liquidation	बकाया	outstanding
परेक्षण योग्य	observable	बस्ट	bust
पश्चता	lag	बहिर्जात बाण्ड	exogeneous bond
पावती पत्र	scrip	बेमियादी बाण्ड	perpetual bond
पूँजीकरण	capitalising	बैंक की साख	bank credit
पूँजीगत मूल्य	capital outlays	भाज्य	numerator
पूँजीगत व्यय	capital values	भारित माध्यम	weight average
पूँजी निर्माण	capital formation	मदड़िया	bear
पुनः पूँजीगत लागत	replacement cost	मंदी	depression down
पुनर्जीवन	recovery	मजदूरी इकाई	turn wage unit
पणत नम्य	completly flued	मजदूरी उपार्जन न करने वाले	non wage earners

मजदूरी का सीमांत उत्पादकता सिद्धांत	marginal productivity theory of wages
मजदूरी के मोल भाव	wages bargain
मजदूरी निधि सिद्धांत	wages fund theory
महाद्वीपीय विचार धारा वाले	continental school
महान मंदी	great depression
मानक	standard
माल की भरमार	glut of commodities
मुक्त विनिमय	free exchange
अर्थ व्यवस्था	economy
मुद्रांक द्रव्य	stamped money
मुद्रा इकाई	monetary unit
मुद्रा प्रणाली	monetary system
मुद्रा मान	monetary standard
मुद्रा मूल्य	monetary values
मूल उपभोग	basic consumption
मूल लागत	prime cost
मूल्य का श्रम सिद्धांत	labour theory of value
मूल्य निरपेक्ष	inelastic
मूल्य पद्धति	price system
मूल्य ह्रास	depreciation
मूल्य ह्रास प्रभार	depreciation charges
मौसमी	seasonal
योग	addition
राजकोषीय	fiscal
राज्य नियमन वाद	interventionism
रेख देख	upkeep
रेखीय	liner
लागत	cost
लेखा कार्य प्रणाली	accounting practice
लेन देन	transaction
लोचदार द्रव्य	elastic money
वक्र	curve
वलन बिन्दु	turning point
वस्तुनिष्ठ	objective
वाणिज्य संकट	commercial crisis
वास्तविक उत्पादन	realised production
विकल्प लागत	opportunity cost
विकेन्द्रीकरण	decentralization
विचलन	shift
वितरण	distribution
वित्तीय	financial
वित्तीय दूरदर्शिता	financial prudence
विनिमय	barter
विनिसंचित	dishoarded
विमिति	dimension
विशुद्ध सिद्धांत	pure theory
विश्व मात्रा	global quantity
विस्थित	offset

व्यक्तिनिष्ठ	subjective
व्यक्तिवाद	individualism
व्यष्टि सिद्धान्त	individualistic
व्यवसाय चक्र	business cycle
व्यवसायिक आय	business earnings
व्यवसायिक प्रयोजनाएं	business projects
व्यवसायिक मंदी	business depression
व्यवहार	behaviour
व्यवहार प्रकार	behaviour patterns
व्यवहारिक	pragmatic
ब्याज का नकदी सिद्धान्त	liquidity theory of interest
ब्याज की अपनी दर	own rate of interest
ब्याज मूल सापेक्ष	interest elastic
व्यापक	over all
व्युत्पन्न	derived
शून्यान्त रेखाएं	round numbers
शेष धन राशियां	balances
शोधन निधि	sinking fund
श्रम की सीमान्त तुष्टिहीनता	marginal disutility of labour
श्रम शक्ति	labour force
शृंखलित प्रतिक्रिया	chain return
संकल्पना	concept
संख्याएं	numbers
संघटक	component
संघटक भाग	component part
संचय	accumulation
संचलन	movement
संचलन वेग	velocity of circulation
संतुलन	equilibrium
संतुलन सिद्धान्त	equilibrium theory
संतृप्ति	saturation
संपूर्ति	replenishment
संबलन	reinforcing
संभरण	supply
संभाव्य	potential
संरक्षी	protectionist
संविदा	contact
संस्थानिक	institutional
संस्थापिक	classic
संस्थापित	classical
सकल योजना	masse de manoeuvre
संचालन शक्ति	active
सक्रिय	activated
संक्रियित	speculative
सट्टा	verifiable
सत्यापनीय	authoritarian
सत्तावादी	flat
सपाट	totalitarian
समग्रवादी	equality
समता	time lag
समय पश्चता	timeless analysis
समयहीन विश्लेषण	effective demand
समर्थ मांग	homogeneous
समांग	equation
समीकरण	plants
संयंत्र	spiral
सर्पिल	

सर्वसमिक	identical
सांबन्धिक	relational
सांख्यकीय	statistical
साख का आकुंचन	contraction of credit
साख की सफीति	inflation of credit
साख पद्धति	credit system
सापेक्षिक तुष्टिगण	relative utility
सामयिक	periodic
सामान्यीकरण	generalization
साराश	abstraction
सार्वजनिक सिद्धान्त	public dogma
सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति	marginal propensity to consume
सीमान्त कारक	marginal factor
लागत	cost
सुख-मृत्यु	euthanasia
सुनम्य	plastic
सुरक्षा की सीमा	margin of safety
सूचकांक	index
सूचीकृत निवेश	inventory investment
से का बाजार नियम	Say's law
सोपान धाराए	escalator clauses
स्टाक सूची	inventory
स्थिति	position
स्थिर प्रयोग	stablization experiment
स्थिर मूल्य	constant value
स्थैतिक	static
स्फीति, स्फीतिकरण	inflation
स्फीति दाव	inflationary force
स्वचालित प्रवृत्ति	automatic tendency
स्वभाव	nature
स्वतन्त्र चर	independent variable
स्वतन्त्र मूल्य निर्माता यन्त्र	free price making mechanism
स्वतन्त्र मूल्य पद्धति	free price system
स्वत प्रेरित	autonomous
स्वत समजन	automatic adjustment
स्वय सिद्ध	truism
स्वाभाविक दर	natural rates
स्वायत्त आय	disposable income
हर	denominator
हलचल	thrusts
हानिकारक पराकाष्ठा	cut throat lengths
ह्रासमान प्रतिफल	decreasing returns
ह्रासमान सीमान्त तुष्टिगण नियम	law of diminishing utilities

अनुक्रमणिका

ऊ

ए

ऐ